"ग्रामीण परिवेश में शिशु मृत्यु : एक सूक्ष्म स्तरीय समाजशास्त्रीय अध्ययन"

"बाँदा जनपद के बड़ोखर विकास खण्ड का एक प्रतीकात्मक अध्ययन"

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी
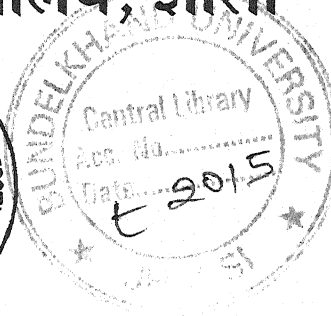
समाजशास्त्र विषय में
पी-एच0डी0 की उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

2005

निर्देशक
डा0 अवधेश चन्द्र मिश्रा
प्रवक्ता समाजशास्त्र विभाग
अतर्रा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अतर्रा

शोधार्थिनी
श्रीमती सुनन्दा पुरवार
M.S.W.
S.G.P.G.I.M.S. Lucknow

शोध केन्द्र

"जवाहर लाल नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बाँदा"

अतर्रा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अतर्रा (बाँदा)

डॉ0 अवधेश चन्द्र मिश्र
रीडर एवं विभागाध्यक्ष
समाजशास्त्र विभाग

निवास :
सृजा निकेतन,
सांसद आवास के निकट
सिविल लाइन्स, बाँदा
पिन– 210001 (उ0प्र0)
☎ : (कालेज) 05191–210204
(निवास) 05192–221506
:9415557315
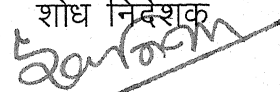
पत्रांक :

दिनांक : ....

प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती सुनन्दा पुरवार शोध पंजीकरण संख्या बु0वि0 / ए0के0 / शोध 2000–2001–1095–97 / दिनांक 12.01.2001 ने मेरे निर्देशन में ''ग्रामीण परिवेश में शिशु मृत्यु : एक सूक्ष्म स्तरीय समाजशास्त्रीय अध्ययन'' (बाँदा जनपद के बड़ोखर विकासखण्ड का एक प्रतीकात्मक अध्ययन) शीर्षक पर शोध कार्य किया है। इनका यह कार्य मौलिक है व समाजशास्त्र के क्षेत्र में आंशिक योगदान भी है। इन्होंने बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित शोध नियमों एवं प्राविधानों का परिपालन करते हुए 24 माह मेरे निर्देशन में रहकर प्रस्तुत शोध कार्य पूर्ण किया है।

मैं इनके उज्जवल भविष्य की कामना करता हूँ।

शोध निर्देशक

(डॉ0 अवधेश चन्द्र मिश्र)

घोषणा-पत्र

मैं श्रीमती सुनन्दा पुरवार, घोषणा करती हूँ समाजशास्त्र विषय के अन्तर्गत ''ग्रामीण परिवेश में शिशु मृत्यु : एक सूक्ष्म स्तरीय समाजशास्त्रीय अध्ययन'' (बांदा जनपद के बड़ोखर विकासखण्ड का एक प्रतीकात्मक अध्ययन) डाक्टर आफ फिलास्फी (पी-एच०डी०) उपाधि हेतु प्रस्तुत यह शोध प्रबन्ध मेरी स्वयं की मौलिक रचना है। इसके पूर्व यह शोध कार्य किसी अन्य के द्वारा क्षेत्र विशेष के सन्दर्भ में कहीं भी प्रस्तुत नही किया गया है।

अपना यह शोध कार्य मैनें डॉ० अवधेश चन्द्र मिश्र, रीडर एवं विभागाध्यक्ष समाजशास्त्र विभाग अतर्रा पी०जी० कालेज अतर्रा (बाँदा) के मार्ग दर्शन में किया है।

श्रीमती सुनन्दा पुरवार
शोधार्थिनी

आभार

इस शोध प्रबन्ध को प्रस्तुत करते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है। ''ग्रामीण परिवेश में शिशु मृत्यु : एक सूक्ष्म स्तरीय समाजशास्त्रीय अध्ययन'' शोध प्रबन्ध का विषय चयन करने की प्रेरणा मेरे शोध निदेशक डा० अवधेश चन्द्र मिश्रा समाजशास्त्र विभागाध्यक्ष एवं रीडर-अतर्रा स्नातकोत्तर महाविद्यालय अतर्रा (बाँदा) द्वारा दी गई जिनकी छत्रछाया तथा कुशल निर्देशन से मैं इस शोध प्रबन्ध को मूर्तरूप से दे सकी। मैं उनकी हृदय से आभारी हूँ और आशा करती हूँ कि भविष्य में भी मुझे उनका आशीर्वाद प्राप्त होगा।

मैं आभारी हूँ पं० जवाहर लाल नेहरु महाविद्यालय बांदा के समाजशास्त्रीय विभागाध्यक्ष डा० जे०पी० नाग एवं रीडर डा० एस०एस० गुप्ता की जिन्होंने शोध कार्य के लिए प्रेरित किया। संजय गांधी स्नातकोत्तर आयुर्विज्ञान संस्थान लखनऊ में कार्यरत होने के कारण शोध कार्य को पूर्ण करने में यथा सम्भव विलम्ब से बचाने में हमारे विभागाध्यक्ष डा० हेमचन्द्र पाण्डे ने कृपा पूर्वक संहयोग प्रदान किया है। इसके लिए उनका आभार प्रदर्शन करना पुनीत कर्तव्य मानती हूँ।

इसके अतिरिक्त मैं अपने पूज्य पिता श्री लक्ष्मी नारायण पुरवार व माता श्रीमती लीला देवी पुरवार को कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ क्योंकि उनके आशीर्वाद से ही यह शोध कार्य सम्पन्न हो सका।

मैं अपने जीवन साथी श्री विजय कुमार गुप्ता एवं सुपुत्री कु० सुवर्णा के प्रति हार्दिक आंभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने मुझे पारिवारिक व्यस्तताओं से मुक्त करते हुए मेरा उत्साहवर्धन एवं मनोबल बढ़ाया ।

अन्त में श्री प्रिन्टर्स, बांदा के निदेशक श्री श्रीकान्त शुक्ल को धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ जिन्होंने अल्प समय में टंकण एवं मुद्रण करके मेरे परिश्रम को साकार रूप दिया।

दिनांक :

(श्रीमती सुनन्दा पुरवार)

शोधार्थिनी

विषय सूची
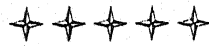
प्रस्तावना

शिशु मृत्यु एक अत्यन्त संवेदनशील सूचक है, जो किसी देश की स्वास्थ्य दशाओं की ओर संकेत करता है साथ ही शिशु मृत्यु का स्तर किसी भी राष्ट्र की समृद्धि को भी दर्शाता है। उन देशों में, जहां की जनसंख्या का अधिकांश प्रतिशत निर्धनता रेखा के नीचे जीवन यापन करता है, की तुलना में उच्च रहन-सहन के स्तर वाले देशों में शिशु मृत्यु को पर्याप्त स्तर तक नीचे ला दिया है किन्तु आज तक भी शिशु मृत्यु बहुत अधिक है।

मृत्यु दर को किसी देश की सामाजिक परिस्थितियों तथा आर्थिक विकास के अभिसूचक के रूप में देखा जा सकता है। यदि किसी देश की जनसंख्या में सामान्य वृद्धि, अत्यधिक जन्मदर अथवा अत्यधिक मृत्यु दर द्वारा होती है तो यह उस देश के आर्थिक पिछड़ेपन का परिचायक है। इसके विपरीत कम जन्म दर तथा कम मृत्यु दर राष्ट्रीय समृद्धि का अभिसूचक है। एस०एन० अग्रवाल के शब्दों में "मृत्यु दर को किसी भी राष्ट्र की सम्पन्नता का सूचक माना जाता है, जो देश आर्थिक दृष्टि से उन्नत है तथा जहां लोगों के रहन-सहन का स्तर ऊँचा होता है वहां मृत्यु दर उन देशों की तुलना में, जो आर्थिक दृष्टि से पिछड़े है, कम होती है।"[1] आज जो देश विकसित है, उनकी मृत्यु दर लगभग 150 वर्षो पूर्व 35-40 प्रति हजार थी। इन देशों को अपनी मृत्यु दर 10 प्रति हजार से भी कम घटाने में सफलता प्राप्त हुई है।

विक्टर पेट्रोव के अनुसार, "लोगों ने सदैव मृत्यु के कारणों से संघर्ष करने की आवश्यकता का अनुभव किया है, तथा वे एक लम्बे समय तक इस आवश्यकता की पूर्ति की दिशा में कोई प्रगति नहीं कर सकें है। किन्तु सामाजिक तथा वैज्ञानिक प्रगति के कारण मृत्यु से संघर्ष तथा जीवन को दीर्घायु प्रदान करने में अप्रत्याशित सफलता प्राप्त की है।"[2]

---

1. *S.N. Agrawal, India's Population, Tata Mcgraw Hill Publishing Co. New Delhi, 1985, P. 130*
2- *Victor Petrov, India, Spot light on population, Progress Publisher's Moscow, 1985. P. 145.*

ऐतिहासिक दृष्टि से वर्तमान शताब्दी के चतुर्थांश तक मृत्यु-दर अधिक थी। पिछले कुछ वर्षो में मृत्यु-दर में ह्रास देखने को मिला है। प्रति 1000 जीवित जन्म वच्चों पर 1941-1951 में मृत्यु-दर 27.4 प्रतिशत थी, जो कि 1978 में 14.2 प्रतिशत हो गयी है।[1] 1986 में मृत्यु दर 11.7 प्रतिशत एवं 1988 में 11.1 प्रतिशत तक पहुँच गई।[2] वर्ष 1990 में यह मृत्यु दर 0.7 प्रतिशत घटकर 10.4 प्रतिशत पर आ गयी। यह अनुमान किया जाता है कि यह मृत्यु दर 2000 ई0 तक पहुँचते-पहुँचते 9.0 प्रतिशत पर पहुँच जायेगी।[3] जन्म के समय जीवित रहने की संभावना 1951 में 32 से बढ़कर 1976-1981 के मध्य 52 से ऊपर पहुँच गई है।[4]

वास्तव में मृत्यु-दर में कमी अनुभव 1921 से हो गया था, परन्तु इस कमी में तीव्रता 1950 से 1970 के मध्य अधिक हुयी।[5]

---

(1) संध्या, एस0 (1986) सोशियो कल्चरल एण्ड इकोनोमिक कोरिलेट्स आफ इनफेन्ट मार्टीलिटी ए केश स्टडी आफ आन्ध्र प्रदेश : डेमोग्राफी इण्डिया वाल्यूम 15 नं0 1, पेज 86।

(2) पार्क, जे0ई0 एण्ड पार्क, के0 (1991) पार्कस टेक्स्ट बुक आफ प्रिवेन्टीव एण्ड सोशल मेडिसिन, बनारसीदास भनार पब्लिशर्स, जबलपुर (13वाँ संस्करण), पेज 270, 277।

(3) गोयल, डा0 रमेश एण्ड माथुर डा0 सरला, (1991) हेल्थ एण्ड फेमिली वेलफेयर प्रोग्राम इन सेवेन्थ फाइव ईयर प्लान, डिपार्टमेन्ट आफ पीरियाडिक, जी0एस0बी0एच0 मेडिकल कालेज, कानपुर पेज नं0 3।

(4) भाटिया : पी0एस0 एण्ड राय : एस0, (1983) प्रासपेक्टिव फार मार्टीलिटी डिक्लाइन इन इण्डिया इन दी नेक्सट टू डिकेट्स, इन पापुलेशन पालिसी प्रासपेक्टिव इन डेवलपिंग कन्ट्री एडीटेड वाई नारायन बी0 एण्ड प्रकाशन सी0पी0 बाम्बे, दि हमालयन पब्लिशिंग हाउस, पेजन नं0 299।

(5) पाठक : के0वी0 एण्ड मूर्थी पी0के0, (1985) सोशियो इकोनोमिक कोरिलेट्स आफ फर्टीलिटी एण्ड मार्टीलिटी डिक्लाइन इन इण्डिया, डेमोग्राफी इण्डिया, वाल्यूम 14 नं0 1 पेज नं0 31।

मृत्यु-दर को तुलनात्मक रूप से समझने के लिए विश्व के कुछ देशों के आंकड़े सारिणी संख्या 1.1 में प्रदर्शित किए गए है -

विश्व के कुछ देशों की मृत्यु दर (2001 में)

देश	मृत्यु दर
सियारालियोन	25
मलावी	24
खांडा/जम्बिया	22
अफगानिस्तान/अफ्रीकी देश	21
स्वीडन	10
फ्रांस	9
जर्मनी	10
ब्रिटेन	11
कनाडा	7
अमेरिका	9
श्रीलंका	6
बांग्लादेश	13
चीन	6
जापान	6
मिस्र	9
सऊदीअरब	7
विश्व	9
भारत	69

स्रोत- विश्व विकास सूचनांक- 2003

उपरोक्त सारिणी से स्पष्ट है कि यद्यपि विश्व के कुछ विकासशील देशों की तुलना में भारत में मृत्यु दर कम है, परन्तु विकसित देश.ाों से यह पर्याप्त अधिक है। साथ ही, श्रीलंका तथा सऊदीअरब जैसे विकासशील देशों में भी मृत्युदर भारत से पर्याप्त कम है। सामान्य तौर पर कहा जा सकता है कि कम आय वर्ग वाले देशों में मृत्यु दर-11 मध्यम आय वर्ग वाले देशों में 8 तथा उच्च्य आय वर्ग वाले देशों में 9 है।

भारत में मृत्यु दर से सम्बन्धित विविध वर्षो के आंकड़ों को निम्न सारिणी में दर्शाया गया है –

सारिणी संख्या- 1.2

भारत में मृत्यु दर (प्रति हजार)[1]

वर्ष	मृत्यु दर
1901–1910	426
1911–1920	472
1921–1930	363
1931–1940	312
1941–1950	274
1951–1960	228
1961–1970	190
1971–1980	148
1988	111
1990	104
2003 (विश्व विकास संकेतक 2003)	69

उपरोक्त सारिणी से स्पष्ट है कि भारत में मृत्यु दर में लगातार कमी हो रही है। मृत्यु दर में लगातार यह कमी इस बात का द्योतक है कि मृत्यु के कारणों, विशेष रूप से महामारी, चेचक, मलेरिया, कालरा, प्लेग, आदि पर नियंत्रण किया गया है। इसके साथ ही, कृषि उत्पादन पर विशेष ध्यान दिया गया जिससे उत्पादन में वृद्धि के कारण कुपोषण की समस्या हल हुई, शिक्षा स्तर ऊँचा हुआ, उत्तम प्रसव सुविधाएं और चिकित्सा तकनीकी को काफी विकसित किया गया। इसी से मृत्यु दर में आशातीत कमी आई है।

---

1. *पार्क : जे0ई0 एण्ड पार्क के0, (1991) पार्कस टेक्सट बुक आफ प्रिवेन्टीव एण्ड सोशल मेडिसिन, बनारसी दास भनार पब्लिशर्स : जबलपुर, पेज- 277.*

जहां तक शिशु मृत्यु का प्रश्न है कुछ अध्ययन इस तथ्य को प्रकट करते हैं कि 1941-45 में प्रति हजार जनसंख्या पर मृत्यु-दर 147 थी, जो घटाकर 1978 में 126 हो गई।[1] मृत्यु दर में यह ह्रास अपेक्षाकृत कम ही थी।[2] परन्तु इस सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि पिछले कुछ वर्षो से शिशु .मृत्यु में पर्याप्त ह्रास हुआ है।[3] क्योंकि भारत में यह कमी प्रति हजार शिशु के आधार पर 1989 में 91 हो गई थी। इस सम्बन्ध में यह अनुमान है कि सन् 2010 ई० तक शिशु मृत्यु-दर 60 से कम प्रति हजार जीवित बच्चे तक पहुॅच जायेगी। फिर भी सम्पूर्ण विश्व के परिप्रेक्ष्य में आज भारत उन देशों में से एक है जहां शिशु मृत्यु की उच्च्व दर पायी जाती है। जब सम्पूर्ण विश्व में शिशु मृत्यु-दर प्रति एक हजार जीवित जन्मों पर 84 है, तथा विकसित देशों में यह मात्र 09 है, भारत में यह दर 69 है।[4] पूर्व वर्षो में 1951-61 के दशक में शिशु मृत्यु-दर प्रति एक हजार जीवित जन्मों पर 146 तथा 1961-70 के दशक में यह लगभग 129 थी।[5] यद्यपि इससे स्पष्ट है कि मृत्यु-दर में कमी आयी है तथापि भारत में शिशु मृत्यु की वर्तमान दर अन्य विकसित देशों की तुलना में बहुत अधिक है। चीन और पाकिस्तान में यह दर क्रमशः 44 तथा 124 है। भारत में लगभग 50 प्रतिशत शिशु पोस्ट नियोनेटल पीरिएड मर जाते हैं।

---

1. *संध्या : एस०, (1986) सोशियो कल्चरल एड्झड इकोनोमिक कोरिलेट्स आफ इनफेन्ट मार्टीलिटी ए केश स्टडी आफ आन्ध्र प्रदेश, डेमोग्राफी इण्यिा, वाल्यूम 15 नं० 1, पेज नं० 86।*
2. *जकारिया : के०सी० एण्ड पटेल एस०, (1983) ट्रण्ड्स आफ डिटरमिनेट्स आफ इनफेन्ट एण्ड चाइल्ड मार्टीलिटी इन केरल, जनसंख्या वाल्यूम 1 नं० 2 नेज 125 ।*
3. *सक्सेना : डी०एन० एण्ड श्रीवास्तव, जे०एन०, (1980) बायो सोशल कोरिलेट्स आफ पेरीनेटल मार्टीलिटी, इक्सपीरियन्स आफ एन इण्डियन हास्पिटल, जनरल आफ बायो सोशल साइंसेज 12, 69।*
4. *आर्थिक समीक्षा गणना- 2000-01 भारत सरकार।*
5. *सेन्सस आफ इण्डिया (1961-1971) लाइफ टेबिल, आफिस आफ दि रजिस्ट्रार जनरल नई दिल्ली, एस०आर 1, इण्डिया पेपर 1 आफ 1977।*

सम्पूर्ण देश के ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों में शिशु मृत्यु-दर में पर्याप्त भिन्नतायें हैं। इसके अतिरिक्त यह भिन्नतायें विभिन्न प्रान्तों में दृष्टि गोचर होती हैं। भारत के नगरीय क्षेत्रों में शिशु मृत्यु-दर 65 है, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में यह 114 है। जहां तक प्रान्तों का प्रश्न है, केरल में यह सबसे कम (प्रति हजार जीवित जन्मों पर 30 है) राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति के आधार पर यह तय किया गया था कि शिशु मृत्यु-दर जो 1947 में प्रति एक हजार जीवित बच्चों पर 160 थी वह 1978 में 125 हो गई, 1981 में 114, 1991 में 87, उसे 2000 ई० तक 60 तक करना था और वर्तमान में यह 60 तक करना था और वर्तमान में यह 69 है। दूसरी तरफ, उत्तर प्रदेश में यह सबसे अधिक 147 है। मध्य प्रदेश एवं उड़ीसा क्रमशः दूसरे एवं तीसरे नम्बर पर हैं, क्योंकि वहां पर शिशु मृत्यु-दर प्रति हजार 134 एवं 132 है।[1]

स्वतन्त्र भारत में शिशु मृत्यु की दर को कम करने के लिए बहुत सी नीतियों का प्रतिपादन तथा क्रियान्वयन किया गया हैं फिर भी उच्च शिशु मृत्यु-दर अब भी विद्यमान हैं स्वाभाविक रूप से यह सामान्य चिन्ता का विषय है। यह समस्या इस परिप्रेक्ष्य में और भी महत्वपूर्ण हो जाती है कि जब तक शिशु मृत्यु-दर को व्यापक स्तर पर कम नहीं किया जाता, प्रजनन-दर तथा जनसंख्या वृद्धि में आशानुरूप ह्रास करना संभव नहीं है। इससे भी अधिक यह समस्या परिवार नियोजन को स्वीकार करने वाले दम्पत्तियों के दृष्टिकोण के कारण और भी जटिल हो जाती है। सामान्य तौर पर वे अपने परिवार को सीमित करने की तभी सोंचते हैं जब उनके अधिक बच्चे हो जाते हैं। इस दृष्टिकोण के पीछे कौन से कारण हैं इस पर वैज्ञानिक अनुसंधान की आवश्यकता है।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से, शिशु मृत्यु-दर में धीमी गिरावट के कारणों का गहन अध्ययन एक दिलचस्प विषय हो सकता है। यह परिकल्पित है कि जनस्वास्थ्य सेवाओं, महामारियों पर नियन्त्रण आदि की तुलना में कुछ सामाजिक सांस्कृतिक कारक शिशु मृत्यु की दर निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

---

1. *जनगणना– 2001.*

मृत्यु-दर के अन्वेषण में सांख्यकीय कारकों की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। जिन देशों में जन्म एवं मृत्यु के पंजीकरण की विकसित व्यवस्था है वहां पर शिशु मृत्यु का प्रत्यक्ष मापन करना अत्यधिक सरल है। परन्तु भारत सहित विश्व के अधिकांश विकासशील देशों में जहां पर कि पंजीकरण की विकसित व्यवस्था नहीं है, पर्याप्त तथा सही आंकड़ों का अभाव है। इस परिप्रेक्ष्य में दीर्घस्तरीय अध्ययनों की तुलना में सूक्ष्मस्तरीय अध्ययनों के अधिक सही तथा उपयोगी होने की संभावना है।

सम्बन्धित साहित्य का पुनरावलोकन :-

शिशु मृत्यु के संदर्भ में प्रायः दो प्रकार के अध्ययन प्रकाश में आए है। प्रथम शिशु मृत्यु की प्रवृत्ति के सम्बन्ध में किए गए अध्ययन, द्वितीय उन कारकों का अध्ययन जो शिशु मृत्यु का निर्धारण करते है। जबकि इसके अतिरिक्त, समाजशास्त्र के क्षेत्र में भी शिशु मृत्यु के सम्बन्ध में अध्ययन हुए है जिनमें प्रायः शिशु मृत्यु के सामाजिक कारकों को केन्द्र में रखा गया है। भारत चूंकि विकासशील देश है अतः यहां की शिशु मृत्यु दर विकसित देशों की तुलना में काफी अधिक है। विकासशील देशों में भी भारत की शिशु मृत्यु दर औसत से ज्यादा है। इसके पीछे यहां के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारक उत्तरदायी है।

चूंकि पूर्व में किए गये अध्ययन उनकी शोध की आधारशिला होते है। अतः यहां भी प्रस्तुत समस्या के संदर्भ में किए गए प्रमुख पूर्व अध्ययन के विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है :-

(1) *स्वामी, अमृतलाल एण्ड मंगोल, सुदर्शन (1961), इकोनोमिक इम्पलीकेशन आफ इन्फेन्ट मीर्टीलिटी, द जनरल आफ फेमिली वेलफेयर ने अपने अध्ययन में निम्न निष्कर्ष दिए-*

(अ) विशेष तौर पर मां के संदर्भ में जो कि शिशु-मृत्यु दर को प्रभावित करती है।

(ब) परिवार की आय ही परिवार के आहार की पौष्टिकता के स्तर को निर्धारित करती है।

(2) *वैद्यनाथन, के0ई0 (1972) ने अपने ''विकासशील देशों में शिशु मृत्यु और विभिन्नताएं'' पर अध्ययन के आधार पर स्पष्ट किया किं शिशु मृत्यु और सामाजिक-आर्थिक स्तर, परिवार की आय, मां की शिक्षा एवं पिता के व्यवसाय में विपरीत क्रम का सम्बन्ध है।*

(3) *रुजिका, एल0टी0 एण्ड कानिटकर, टी. (1973) ''इनफेन्ट मार्टीलिटी इन ग्रेटर बाम्बे'' में एक सर्वे के आधार पर निष्कर्ष दिया -*

(अ) मॉ का शैक्षिक स्तर शिशु मृत्यु को प्रमुख रूप से प्रभावित करता है।

(ब) जहां माताएं निरक्षर है वहां शिशु मृत्यु दर सर्वाधिक है।

(स) माध्यमिक एवं उच्च्य शिक्षा प्राप्त महिलाओं में यह सबसे कम एवं प्राथमिक शिक्षा प्राप्त महिलाओं में यह मध्यम है।

(द) मां का धर्म, बच्चे का जन्म स्थान और परिवार का सामाजिक आर्थिक स्तर भी शिशु मृत्यु दर को प्रभावित करता है।

(4) *सिंह, के0पी0 (1974), ''चाइल्ड मार्टीलिटी, सोशल स्टेट्स एण्ड फर्टिलिटी इन इण्डिया'' ने भी रुजिका एण्ड कानिटकर के तथ्यों को स्वीकार किया है।*

(5) *गुनाशेषरन, एस0 (1974), ''ए नोट आन इन्फेन्ट मार्टीलिटी इन अथूर ब्लाक'' ने अपने एक अध्ययन, ''प्रजननता सर्वेक्षण के आधार पर यह निष्कर्ष दिया है कि -*

(अ) नियोनेटल मार्टीलिटी ज्यादातर जन्म के प्रथम दो सप्ताह में अधिक होती है।

(ब) शिशु मृत्यु दर उन शिशुओं में जिनमें जन्म के समय मॉ की आयु 15 से 19 वर्ष से मध्य थी, सर्वाधिक पाई गई एवं सबसे कम उनमें पाई गई जिनमें शिशुओं के जन्म के समय मॉ की आयु 20-24 वर्ष के मध्य थी।

(स) जैसे-जैसे माँ की आयु बढ़ती है, शिशु मृत्यु दर भी बढ़ती है।

(6) अग्रवाल, आर०डी० (1975), इनफ्लुएन्स आफ इन्फैन्ट एण्ड चाइल्ड मार्टीलिटी इन इण्डिया इन कमेटी फार इण्टरनेशनल कोआर्डिनेशन आफ नेशनल रिसर्च इन डेमोग्राफी ने अपने अध्ययन में स्पष्ट किया है कि -

(अ) भारत में उच्च शिशु मृत्यु-दर एवं उच्च प्रजनन दर में धनात्मक सह सम्बन्ध पाया जाता है।

(ब) भारत में शिशु मृत्यु दर 1920 में गिर गई थी, यहां शिशु मृत्यु दर प्रत्येक राज्य में भिन्न-भिन्न है। यद्यपि यह अधिक है।

(स) 1960 के मध्य जब परिवार कल्याण कार्यक्रम की शुरुआत हुई जन्म दर में कमी आई किन्तु जन्म-दर पुनः उच्च हो गई। इस समयान्तराल में शिशु मृत्यु एवं जन्म दर दोनों में कमी आयी।

(7) गुप्ता, के०सी० एण्ड राव, आर०के०, ''चाइल्ड लास इक्सपीरियंस इन ए रूरल एरिया'' ने अपने अध्ययन में पाया कि -

(अ) शिशु मृत्यु का पति के शैक्षिक स्तर से ऋणात्मक सह सम्बन्ध है।

(ब) निम्न जाति के हिन्दुओं में शिशु-मृत्यु की दर उच्च जातीय हिन्दुओं की अपेक्षा ज्यादा पाई जाती है।

(स) शिशु-मृत्यु का जन्म अन्तराल से ऋणात्मक सह सम्बन्ध है। अर्थात शिशुओं का जन्म अन्तराल जैसे-जैसे घटता है शिशु मृत्यु बढ़ती जाती है तथा जैसे-जैसे अन्तराल बढ़ता जाता है शिशु मृत्यु दर घटती जाती है।

(8) चन्ना, एच0बी0, (1979), ''ए स्टडी आफ इन्फेन्ट मार्टीलिटी इन रूरल देलही'' ने मध्य दिल्ली में शिशु-मृत्यु दर की प्रवृत्ति एवं विभिन्नताओं के अध्ययन के आधार पर पाया कि -

(अ) प्रसव के समय मॉ की आयु।

(ब) बच्चे के लिंग का कारक ज्यादा महत्व के है।

(9) अग्रवाल, एस0एन0, (1981), ''इण्डियाज पापुलेशन प्राब्लम्स'' ने बताया कि भारत में शिशु मृत्यु दर कुछ विकासशील देशों की तुलना में अधिक है तथा कुछ की तुलना में कम भी है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात मात्र एक दशक के संक्षिप्त अन्तराल में श्रीलंका, बोरिया, तथा ताईवान ने मृत्यु दर पर बहुत अधिक नियंत्रण पा लिया है।

(10) करमाकर, आर0 (1982), ''टाइम सिरीज कैजुवल्टी विटवीन इनेफन्ट मार्टीलिटी एण्ड फर्टीलिटी इन लेस डेवलप्ड कन्ट्रीज'' ने बताया कि प्रजननता एवं शिशु मृत्यु दर एक दूसरे को प्रभावित करती है। विकासशील देशों में यह और भी अधिक है।

(11) गुनाशेषरन, एस0 (1983), ''डिटरमिनन्टिस आफ मार्टीलिटी इन रूरल एरिया आफ तमिलनाडु'' ने तमिलनाडु में किएं गये अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष

निकाले कि :-

(अ) कुछ कारक जैसे- रख-रखाव पर ध्यान, दुग्ध सम्बन्धी आहार की परिपूर्णता, बच्चे को रोग मुक्त होना, भोजन सामग्री पर कम खर्च, धर्म और जन्म के समय के मौसम का शिशु-मृत्यु से घनिष्ट सम्बन्ध है।

(ब) नियोनेटल मार्टीलिटी को प्रभावित करने वाले कारक जैसे- रख-रखाव पर ध्यान, गैस्टेशन पीरियड, जन्म का स्थान, प्रसव के समय कार्यकर्ता, स्वास्थ्य कर्मचारी की उपलब्धता, आहार की परिपूर्णता एवं जन्म का महीना आदि महत्वपूर्ण है। जबकि पोस्ट नियोनेटल मार्टीलिटी को जन्म का स्थान, दुग्ध सम्बन्धी आहार की पूर्णता और बच्चे का रोग मुक्त होना आदि कारक प्रभावित करते है।

(12) जकारिया, के0सी0 एण्ड पटेल, एस0 (1983), ट्रेण्डस एण्ड डिटरमिनेन्टस आफ इनफेक्ट एण्ड चाइल्ड मार्टीलिटी इन केरला" ने केरल राज्य के अध्ययन में निम्न निष्कर्ष दिए -

(अ) सामाजिक, आर्थिक कारक, शिशु-मृत्यु के संदर्भ में सूक्ष्म महत्व के है।

(ब) सामाजिक कारकों जैसे- माँ की शिक्षा अथवा उसकी जाति की तुलना में आर्थिक कारकों जैसे- भूमि स्वामित्व का अपेक्षाकृत कम महत्व है।

(13) श्रीवास्तव, जे0एन0 एण्ड सक्सेना, डी0एन, (1983), "इनफेक्ट मार्टीलिटी डिफ्रेन्सियल एन इण्डियन सेटिंग, ने अपने अध्ययन में स्पष्ट किया -

(अ) सामाजिक, आर्थिक स्तर, शिशु-मृत्यु के सम्बन्ध में अत्यधिक महत्व का है।

(ब) शिशु-मृत्यु एवं हिन्दू जाति स्तर में विपरीत क्रम का सम्बन्ध है। अर्थात्

जैसे-जैसे जाति स्तर ऊँचा होता है शिशु मृत्यु दर घटती है एवं जाति स्तर नीचा होने के साथ मृत्यु दर बढ़ती जाती है।

(स) माँ की शिक्षा, पति की आय एवं उसका व्यवसाय भी शिशु-मृत्यु को प्रभावित करता है।

(14) खान, एम0ई0 (1984), "डिटरमिनेन्टस आफ इन्फेन्ट मार्टीलिटी इन उत्तर प्रदेश" ने अपने उत्तर प्रदेश के अध्ययन में बताया कि शिशु-मृत्यु दर माँ की आयु, शिशु के जन्म का अन्तराल आदि से प्रभावित होती है साथ ही जन्म के समय प्रसव सहायक की भी भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

(15) पाठक, के0बी0 एण्ड मुर्थी, पी0के0, और परमार, एस0बी0 सिंह, (1986) आदि ने अपने अध्ययनों में पाया कि शिशु-मृत्यु तथा प्रजननता के बीच सकरात्मक सह सम्बन्ध है। उन्होंने यह निष्कर्ष भी दिया कि शिशु-मृत्यु दर तथा प्रजनन दर दोनों में ही सामाजिक एवं आर्थिक विकास के साथ ही स्वास्थ्य सुविधाओं को बढ़ाकर ही परिवर्तन लाना संभव है।

(16) संध्या, एस0 (1986), "सोशियो-कल्चरल एण्ड इकोनोमिक कोरिलेटस आफ इन्फेन्ट मार्टीलिटी' ने आन्ध्र प्रदेश के एक अध्ययन में इस तथ्य को उद्घाटित किया है कि सामाजिक-आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारक जैसे- परिवार का प्रकार, शिक्षा, माता-पिता का व्यवसाय एवं शिशु स्वास्थ्य सेवाओं आदि का शिशु मृत्यु की दर के निर्धारण में महत्वपूर्ण योगदान है। उनके अनुसार जाति कारक का शिशु मृत्यु के साथ सम्बन्ध महत्वपूर्ण नहीं है।

(17) *अरोरा, वाई०एल०, (1987), ''इन्फेन्ट मार्टीलिटी एण्ड इट्स कोरिलेट्स इन ग्रेटर बाम्बे'' ने शिशु मृत्यु का स्तर एवं प्रकृति का अध्ययन बम्बई नगर निगम के 1960-70 के आंकड़ों के आधार पर किया और पाया कि-*

(अ) विविध मृत्यु दरों में इस अन्तराल में कमी आयी, सामान्य मृत्यु दरों में गिरावट के साथ-साथ शिशु-मृत्यु दर में गिरावट नहीं आयी, यह क्रमशः बढ़ती गई और सम्पूर्ण मृत्यु की यह 22% तक हो गई।

(ब) जन्म के प्रथम 6 दिनों में पुरुष लिंग की शिशु-मृत्यु दर क्रमशः बढ़ती जाती है तथा विविध आयु समूहों में यह घटती जाती है।

(18) *मिश्र, एस०सी०, (1995), ''नगरीय परिवेश मे शिशु मृत्यु की दर : विभिन्नताएं कारण तथा निवारण'' में अपने मौदहा नगर के अध्ययन में निम्न निष्कर्ष दिए-*

(अ) नवजात शिशुओं की मृत्यु दर की तुलना में पश्च-नवजात शिशुओं की मृत्यु दर अधिक है।

(ब) जनांकिकीय कारकों जैसे कि प्रसव के समय माँ की आयु का शिशु मृत्यु से सकारात्मक सहसम्बन्ध है।

(स) प्रसव तथा शिशुओं की देख-रेख सम्बन्धी कारक, जैसे कि शिशु जन्म का स्थान प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित प्रसव सहायक, नाल काटने के लिए प्रयुक्त किए गए यंत्र का प्रकार आदि का शिशु-मृत्यु से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व :-

जैसा कि पूर्व अध्ययनों एवं 2001 की जनगणना से स्पष्ट है कि भारत में शिशु-मृत्यु विकसित एवं कई विकासशील देशों की तुलना में अधिक है। आर्थिक समीक्षा 2000-01 के अनुसार भारत में शिशु-मृत्यु दर 69 प्रति हजार है। जबकि डेनमार्क तथा अमेरिका में शिशु-मृत्यु लगभग शून्य हैं इतना अधिक अंतर भारत जैसे-विकासशील देश के लिए चिंता का विषय हैं। इस संदर्भ में भारत में अनेक अध्ययन हुए हैं जैसे कि अग्रवाल (1981) ने अपने अध्ययन में स्पष्ट किया है कि भारत में उच्च शिशु मृत्यु दर एवं उच्च प्रजनन दर में धनात्मक सह सम्बन्ध है। अरोरा (1979) ने आयु एवं लिंग के आधार पर विभिन्नताओं को स्पष्ट करते हुए कहा कि जन्म के प्रथमः छः दिनों में पुरुष लिंग की शिशु मृत्यु-दर क्रमशः बढ़ती जाती है। श्रीवास्तव एवं सक्सेना (1981) ने अपने अध्ययन में स्पष्ट किया है कि सामाजिक आर्थिक स्तर शिशु मृत्यु के सम्बन्ध में अत्यधिक महत्व का है। इसी प्रकार गुनाशेषरन (1984) ने अपने अध्ययन प्रजननता सर्वेक्षण के आधार पर यह निष्कर्ष दिया है कि नियोनेटल मार्टीलिटी ज्यादातर जन्म के प्रथम दो सप्ताह में अधिक रहती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत में शिशु मृत्यु की प्रवृत्ति से सम्बन्धित अध्ययनों की प्रचुरता रही है, परन्तु शिशु-मृत्यु की विभिन्नताओं के संदर्भ में अध्ययनों की कमी दिखलाई पड़ती है अतः वर्तमान में जब भारत ने प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति की है ऐसे में मृत्यु-दर अधिक होने के प्रकाश में प्रस्तुत अध्ययन की आवश्यकता प्रतीत होती है।

भारत में चूंकि 70 प्रतिशत आबादी गॉवों में निवास करती है और गॉवों में नगरों की तुलना में शिशु-मृत्यु दर अधिक है। अतः ग्रामीण परिवेश में शिशु मृत्यु की विभिन्नताओं के संदर्भ में अध्ययनों की महती आवश्यकता प्रतीत होती है।

भारत में शिशु मृत्यु-दर बहुत धीरे-धीरे कम हो रही है। कहने की आवश्यकता नहीं कि जब तक शिशु मृत्यु-दर में तीव्र गति से ह्रास नहीं होगा तक तक प्रजनन दर तथा जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित कर पाना संभव न हो सकेगा। शिशु मृत्यु की अधिक दर, अधिक प्रजनन दर के लिए उत्तरदायी है क्योंकि दम्पत्ति शिशुओं के जीवित रहने की कम

सम्भावनाओं के कारण अधिक बच्चे पैदा करना चाहते हैं। अतः उक्त तथ्यों का अध्ययन अपेक्षित है।

भारत में अब तक किये गये अधिकांश अध्ययन देश के विकसित क्षेत्रों में किये गये हैं, वर्तमान अध्ययन देश के अत्यधिक पिछड़े तथा उपेक्षित क्षेत्र में किया जायेगा। इसके अतिरिक्त, भारत जैसे देश में जहां पर कि क्षेत्रीय तथा सांस्कृतिक विविधितायें हैं, इस प्रकार का सूक्ष्म स्तरीय तथा भिन्न सांस्कृतिक समूहों में तुलनात्मक अध्ययन योजना निर्माताओं तथा जनसंख्या नियंत्रण के क्षेत्र में कार्य करने वाले लोगों के लिए अत्यधिक महत्व का होगा।

विश्व में चीन के पश्चात भारत ही दूसरा देश है जो कि जनसंख्या की तीव्र वृद्धि से ग्रसित है। 1991 की जनगणना के अनुसार देश की जनसंख्या 85 करोड़ से भी अधिक है, इससे और अधिक वृद्धि से सम्बन्धित जितने भी कारक सुझाये गये हैं उनमें शिशु-मृत्यु, जैसा कि हम अनुभव करते हैं, जनसंख्या वृद्धि को समझने में विशेष सहायक हो सकता है।

नीति निर्धारण के महत्वपूर्ण कार्य में भी वर्तमान अध्ययन सहायक होगा। क्योंकि इसके द्वारा सूक्ष्म स्तर पर शिशु मृत्यु के वास्तविक स्तर की जानकारी प्राप्त होगी तथा इसके निर्धारक कारकों का भी पता चल सकेगा।

समस्या का चयन :-

भारत ज्ञान के विकास में मृत्यु ने बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। चिकित्सा शास्त्र का विकास मृत्यु पर विजय पाने के लिए किये गये परिश्रम का परिणाम है। नीतिशास्त्र एवं धर्मशास्त्र मृत्यु के भय एवं सत्य को उजागर करते हैं तथा अनैतिक आचरण से सचेत करते हैं। दर्शनशास्त्र मृत्यु के द्वारा पीड़ा मुक्त हो जाते हैं किन्तु यह प्रत्येक शरीर का अन्त है। यद्यपि मृत्यु एक जीव की आयु की समाप्ति की स्वाभाविक प्रक्रिया है तथा यह जीवन की एक अनिवार्य घटना भी है किन्तु दीर्घायु के उपरान्त ही देहावसान स्वाभाविक लगता है। मृत्यु यद्यपि सत्य है तथा अपरिहार्य है किन्तु इसका समय निश्चित होते हुए भी अनिश्चत होता है तथा हर क्षण मृत्यु की संभावना बनी रहती है। यही कारण है कि जनांकिकी ने मृत्यु को एक रहस्य, ईश्वरीय अंकुश आदि के रूप में नहीं-देखा वरन् इसे एक जनांकिकीय घटना

माना तथा इसे प्रजनन की भांति जनसंख्या निर्धारण का एक घटक मात्र माना है।

प्रायः यह देखा जा रहा है कि मृत्यु क्रम न केवल जनसंख्या के परिणाम को प्रभावित करता है वरन् उसके गठन एवं स्वरूप तथा रीति-रिवाजों तक को प्रभावित करता रहता हैं

जनांकिकी विषय की सर्वाधिक विकसित शाखा मृत्यु-दर को मापने की विधियां है। यह एक ऐसा विषय है जिस पर पर्याप्त अध्ययन हो चुका है, क्योंकि यह विषय व्यवहारिक उपादेयता की दृष्टि में महत्वपूर्ण है। व्यापारिक कम्पनियां विशेषकर बीमा कम्पनी का समस्त व्यवसाय मृत्यु सम्बन्धी समंक ही है। बीमे के प्रीमियम की किस्त मृत्यु की संभाविता पर निर्भर करती है जैसे-जैसे मृत्यु-दर घटती है या तो प्रीमियम की दर घटती है या बोनस की दर बढ़ती है।

मृत्यु सम्बन्धी सूचनायें जीवन प्रत्याशा को प्रभावित करती हैं या मृत्यु-दर की भूत-कालीन मृत्यु सम्बन्धी प्रवृत्तियों को बताती है। वर्तमान एवं भूतकालीन मृत्यु सम्बन्धी सूचनाओं के आधार पर भविष्य की दर का अनुमान लगाया जा सकता है। जिससे भविष्य की जनसंख्या का प्रक्षेपण किया जा सकता है।

मृत्यु सम्बन्धी सूचनायें किसी समाज में उपलब्ध स्वास्थ्य सेवाओं पर प्रकाश डालते हैं, ये मृत्यु के कारणों का भी पंजीकरण करते हैं। अतः स्वास्थ्य विभाग इनसे लाभ उठाकर उस दिशा में विशेष कदम उठा सकता है। जिन कारणों से मृत्यु अधिक हो रही है, जैसे-मलेरिया के कारण मृत्यु, चेचक, हैजा आदि से मृत्यु की घटनायें बढ़ने पर स्वास्थ्य विभाग उनके रोक-थाम के लिए विशेष कदम उठा सकता है।

मृत्यु-दर किसी देश या समाज की जन्म-दर को भी प्रभावित करती है। मृत्यु-दर ऊँची होने का एक प्रमुख कारण ऊँची शिशु मृत्यु-दर भी है। शिशु-मृत्यु दर, मृत्यु का एक महत्वपूर्ण सूचक है।

प्रस्तुत अध्ययन में जो समस्या चुनी गई है। वह एक महत्वपूर्ण समस्या है। चूंकि भारत के ग्रामीण परिवेश में शिशु मृत्यु दर बहुत अधिक है इसलिए प्रस्तुत समस्या को चुना गया है।

समस्या का परिभाषीकरण :-

हिवेटन के अनुसार :- ''परिभाषीकरण का तात्पर्य अध्ययन की समस्या को चिन्तन द्वारा समस्या क्षेत्र के बाहर निकालकर स्पष्ट करना है।''

प्रस्तुत अध्ययन का विषय, ''ग्रामीण परिवेश में शिशु-मृत्यु : एक सूक्ष्म स्तरीय समाजशास्त्रीय अध्ययन'' बाँदा जनपद के बड़ोखर विकास खण्ड का एक प्रतीकात्मक अध्ययन है।

तकनीकी शब्दों का अर्थ एवं परिभाषा :-

समस्या चयन, परिभाषीकरण के उपरान्त यह आवश्यक है कि समस्या से सम्बन्धित तकनीकी शब्दों के अर्थ को स्पष्ट कर लिया जाय।

शिशु-मृत्यु :-

मृत्यु सम्बन्धी ऑकड़ों का पंजीकरण वैज्ञानिक औपचारिकताओं को पूरा करने के लिए किया जाता है। जबकि जनगणना के आकार सम्बन्धी सूचनाओं को केवल सांख्यकीय उद्देश्य के लिए एकत्र किया जाता है। मृत्यु सम्बन्धी सूचना देना सम्पत्ति एवं उत्तराधिकार की दृष्टि से बहुत आवश्यक हो जाता है। अतः मृत्यु का प्रमाण-पत्र एक सांख्यकीय प्रपत्र की अपेक्षा एक विधि प्रपत्र अधिक होता है। अतः इस प्रपत्र को निर्गमित करने से पूर्व अनेक सूचनायें एकत्र की जाती हैं लेकिन प्रश्न मृत्यु एवं शिशु मृत्यु को परिभाषित करने का है।

अधिकांशतः मृत्यु उस शरीर का अंत है जिसका जन्म हुआ था। किन्तु जीवित प्रसव के सम्बन्ध में मतभेद है। स्पेन, क्यूबा, इक्वाडोर तथा होन्डरास में एक नवजात शिशु जो 24 घण्टे से अधिक जीवित नहीं रहता है, को गर्भ समापन में शामिल किया जाता है। अतः न वह जीवित प्रसव में शामिल किया जाता है तथा उन उसकी मृत्यु को शामिल किया जाता है। कुछ देशों में जीवित जन्म उन्हीं बच्चों को माना जाता है जो पंजीकरण के दिन जीवित थे। पंजीकरण जन्म से बहुत दिन बाद तक भी किया जा सकता है। जो बच्चे पंजीकरण के पूर्व

मर जाते हैं उनहें भ्रूण-मृत्यु की संज्ञा दी जाती है।[1] विश्व स्वास्थ्य संगठन ने अन्तर्राष्ट्रीय उपयोग के लिए जीवित प्रसव की परिभाषा देते हुए कहा है कि जब किसी गर्भाधान के फलस्वरूप कोई शिशु जन्म लेता है तथा उसमें जीवन होता है, जीवन का प्रमाण उस शिशु के स्वांस लेने, हृदय गति अथवा नाड़ियां अथवा शरीर के किसी अंग की हरकत से मिलता है। ऐसे शिशु की गर्भावधि चाहे कितनी ही कम हो, चाहे उसकी नाल काटी गई हो अथवा नहीं, ऐसे प्रसव को जीवित प्रसव कहा जाता है।[2] इस जीवित प्रसव को आधार मानकर विश्व स्वास्थ्य संगठन ने मृत्यु को परिभाषित करते हुए कहा है कि यदि जीवित पैदा हुआ बच्चा पंजीकृत कर लिया गया है, उसके बाद ही उसकी मृत्यु क्यों न हो जाय वह मृत्यु की श्रेणी में रखा जायेगा।[3]

विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा दी गई परिभाषा को सभी देशों द्वारा अपनाये जाने में समय लगेगा क्योंकि देशों को अपने विधान में परिवर्तन करना होगा। चूंकि भ्रूण-मृत्यु की परिभाषा के सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है, अतः मृत्यु के पंजीकरण के आंकड़े तुलनीय नहीं हो पाते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने सभी प्रकार के भ्रूण मृत्युओं को मृत्यु-क्रम से बाहर माना है।[4]

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने यह विचार व्यक्त किया है कि जब तक जीवित प्रसव एवं भ्रूण-मृत्यु की एक ही परिभाषा विश्व के सभी देशों द्वारा नहीं अपनाई जायेगी, मृत्यु सम्बन्धी सूचनायें तुलनीय नहीं हो सकेगी।

---

1. *यूनाइटेड नेशन (1953), दि हिस्ट्री ऑफ पापुलेशन थियरी, न्यूयार्क, पेज 531।*
2. *ब्रोकिंगठन, सी0 एफ0, (1967) वर्ड हेल्थ चर्चिल, लन्दन, पेज 18।*
3. *हाउजर, फिलिप एम0 एण्ड डंकन, ओरिस डूडले, दि स्टडी ऑफ पापुलेशन (1959), पेज 442।*
4. *हाउजर, फिलिप एण्ड डंकन, 1959, 442।*

अपने प्रयोजन के लिए हमारा शिशु मृत्यु से आशय उन जीवित जन्मों के समापन से है जो अपनी पहली वर्षगांठ मनाने से वंचित रह जाते हैं अर्थात अपने जीवन का पहला वर्ष पूरा करने से पूर्व ही काल के मुँह में चले जाते हैं।

मृत्यु-दर :-

मृत्यु-दर का मापन इस बात पर निर्भर करता है कि मृत्यु किस घटना से सम्बन्धित है इसका आंकलन मृत्यु पंजीकरण कार्यालय से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर किया जाता है। इस कार्यालय में जीवन के अंतिम संस्कार पूर्ण होने से पूर्व सूचना दे दी जाती है। जहां सम्बन्धित अधिकारी मृत्यु का पंजीकरण करके उसे प्रमाण-पत्र प्रस्तुत करता है इन आंकड़ों के आधार पर मृत्यु सम्बन्धी घटनाओं के प्रमाणन के लिए विभिन्न मृत्यु-दरों की स्थापना की जाती है। जिस समय मृत्यु-दर निकालने की प्रक्रिया शुरु की जाती है उस समय निम्नांकित बातों पर विशेष रूप से ध्यान देना आवश्यक होता है।

(1) मृत्यु सम्बन्धी घटनाओं को किसी निश्चित क्षेत्र की समग्र जनसंख्या के समस्त अनुपात में देखा जाता है।

(2) मृत्यु की घटनायें कुछ विर्शिष्ट आयु समूहों से विशेष प्रकार से सम्बन्धित होती है। इसलिए मृत्यु-दरों के निर्धारण में आयु-समूहों का भी ध्यान रखा जाता है।

(3) विभिन्न समाजों अथवा समूहों की मृत्यु सम्बन्धी घटनाओं की तुलना के लिए किसी एक प्रमाणित जनसंख्या की कल्पना की जाती है तथा इसी के अनुरूप, आयु, लिंग, वैवाहिक स्थिति, शैक्षिक स्थिति आदि के संदर्भ में निर्धारित मृत्यु-दर तुलनात्मक अध्ययन के लिए ठोस आधार प्रदान करती है।

(4) मृत्यु की घटनायें कुछ विशिष्ट आयु-समूहों में कुछ विशिष्ट कारणों अथवा बीमारियों के माध्यम से घटित होती है। इसलिए मृत्यु-दर के निर्धारण में ऐसे कारणों पर भी ध्यान देना होता है।

मृत्यु का जनसंख्या पर दबाव मापने के लिए मृत्यु-दरों का प्रयोग किया जाता है। मृत्यु-दरें अथवा दो से अधिक देशों, स्थानों, शहरों अथवा समयों के बीच मृत्यु के दबाव का तुलनात्मक अध्ययन करती है। ये मृत्यु-दरें, मृत्यु सम्बन्धी घटनाओं के प्रमापन के लिए अनेक प्रकार से निकाली जाती हैं।

(1) अशोधित अथवा अपरिष्कृत मृत्यु-दर।

(2) आयु विशिष्ट मृत्यु-दर।

(3) प्रमाणित अथवा मानकीकृत मृत्यु-दर।

(4) विशिष्ट मृत्यु-दर।

(5) शिशु मृत्यु-दर।

यहां पर हमारा प्रयोजन केवल शिशु मृत्यु से है अतः केवल उसी की मापन दर को लिया जा रहा है।

शिशु मृत्यु-दर :-

शिशु मृत्यु-दर को ज्ञात करने के लिए एक वर्ष की आयु अवधि में मृतक शिशुओं की संख्या तथा उसी वर्ष की सम्पूर्ण सजीव जन्म लिये बच्चों की संख्या के साथ स्थापित प्रति हजार के अनुपात का आधार मानते हैं।

अर्थात एक वर्ष की आयु अवधि के अन्दर मरने वाले शिशुओं की सम्पूर्ण संख्या को उस वर्ष की सम्पूर्ण जन्म सम्बन्धी घटनाओं से भाग देकर और उसमें (1000) से गुणा करके इस दर को प्रति हजार व्यक्तियों के आधार पर ज्ञात करते हैं।

यही आधार गर्सिया वाई गारमा ने भी अपनाया है।[1]

$$\text{शिशु मृत्यु-दर} = \frac{\text{एक वर्ष में शिशु मृत्यु की कुल संख्या}}{\text{एक वर्ष में नवजातों की कुल संख्या}} \times 1000$$

---

1. *गार्सिया, वाई, गारमा एण्ड इरमा, ओलाया, (1983) सम फैक्ट्स एसोसिएटेड विथ इन्फेन्ट मार्टीलिटी इन दि वर्ड, पेजन 98.*

शिशु मृत्यु को भी दो भागों में विभक्त किया गया है। यह विभाजन सामान्यतः मृत्यु के कारणों पर ही आधारित है। कुछ बच्चे जन्म से ही शारीरिक रूप से अपरिपक्व होते हैं। अतः उनकी मृत्यु अतिशीघ्र हो जाती है। दूसरी तरफ कुछ बच्चे शारीरिक रूप से पुष्ट होकर जन्म तो लेते हैं परन्तु सामाजिक परिवेश में विकृति के कारण नाना प्रकार की व्याधियों से ग्रस्त होकर मर जाते हैं। शिशु मृत्यु के इन दोनों प्रकारों की जो परिभाषा इस अध्ययन में स्वीकार की गई है, वह निम्न है :-

नियोनेटल मृत्यु :-

जन्म के प्रथम दिन से चार सप्ताह तक हुई मृत्यु नियोनेटल कहलाती है।

पोस्ट-नियोनेटल मृत्यु :-

चौथे सप्ताह के उपरान्त एवं 365 दिन के अन्दर हुई मृत्यु को पोस्ट-नियोनेटल मृत्यु कहते हैं।

सामाजिक-आर्थिक प्रस्थिति :-

सामाजिक-आर्थिक प्रस्थिति का शिशु मृत्यु से निकट का सम्बन्ध है। ऐसा परिकल्पित है कि उच्च सामाजिक आर्थिक प्रस्थिति वाले व्यक्तियों में शिशु मृत्यु-दर कम तथा निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के लोगों में यह अपेक्षाकृत उच्च होती हैं।

सामाजिक-आर्थिक प्रस्थिति अनुमाप के लिए संख्या[1] द्वारा प्रयुक्त प्रमापक का उपयोग किया गया है। इस प्रमापक में समाहित सामाजिक तथा आर्थिक पक्षों तथा प्रत्येक को दिये गये अंकों का विवरण सारिणी 1.3 में प्रस्तुत है।

---

1. *संख्या, एस0, 1986, सोशियो-कल्चरल एण्ड इकोनामिक कोरिलेट्स आफ इनफेन्ट मारटेलिटी, ए केश स्टडी आफ आन्ध्र प्रदेश, डेमोग्राफी इण्डिया, वाल्यूम 15 नं0 1 पेज 89.*

सारिणी 1.3

सामाजिक -आर्थिक प्रस्थिति में सामाजिक-आर्थिक दरों का समूहीकरण

परिवार की	जाति	मकान का स्वरूप	कच्चा/कोई मकान नहीं			मिश्रित			पक्का		
		शिक्षा का स्तर	निम्न	मध्यम	उच्च	निम्न	मध्यम	उच्च	निम्न	मध्यम	उच्च
0-10000	निम्न	1	1	2	1	2	3	2	3	4	
	मध्यम	1	2	3	2	3	4	3	4	5	
	उच्च	2	3	4	3	4	5	4	5	6	
10,000-	निम्न	1	2	3	2	3	4	3	4	5	
20000	मध्यम	2	3	4	3	4	5	4	5	6	
	उच्च	3	4	5	4	5	6	5	6	7	
20000-	निम्न	4	5	6	5	6	7	6	7	8	
अधिक	मध्यम	5	6	7	6	7	8	7	8	9	
	उच्च	7	8	9	8	9	10	9	10	11	

विविध दरों और उन्हें दिये गये अंकों के आधार पर कुल पॉच वर्ग प्राप्त हुए जिनका विवरण सारिणी 1.4 में प्रस्तुत है :-

सारिणी संख्या 1.4

प्राप्तांक के आधार पर स्त्रियों के वर्ग प्रतिशत में

वर्ग	प्राप्तांक	स्त्रियां
1. उच्च्च वर्ग	9, 10, 11	4.25
2. उच्च्च मध्यम वर्ग	7,8	11.25
3. निम्न मध्यम वर्ग	5, 6	24.25
4. निम्न वर्ग	3,4	28.5
5. अतिनिम्न वर्ग	1, 2	31.75

सांख्यकीय दृष्टि से शिशु मृत्यु के साथ सम्बन्ध देखने के लिए केवल तीन वर्ग रखे गये हैं।

(1) उच्च्व वर्ग को उच्च्व वर्ग का ही नाम दिया गया है।

(2) उच्च्व मध्यम एवं निम्न मध्यम को एक साथ मिलाकर उसे मध्यम वर्ग कहा गया है।

(3) निम्न और अति निम्न को एक साथ मिलाकर निम्न वर्ग कहा गया है। इस प्रकार सुविधा जनक विश्लेषण के लिए तीन वर्ग श्रेणियां रह गयीं। उच्च्व, मध्यम एवं निम्न वर्ग इन्हें सारिणी 1.5 में दर्शाया गया है।

सारिणी संख्या 1.5

स्त्रियों की वर्ग-श्रेणी प्रतिशत में

वर्ग- श्रेणी	स्त्रियों का अनुपात
1. उच्च्व वर्ग	4.25
2. मध्यम वर्ग	35.5
3. निम्न वर्ग	60.25

अध्ययन के उद्देश्य :-

अध्ययन लक्ष्य केन्द्रित हो इसलिए किसी भी अध्ययन में उद्देश्यों का निर्धारण अति महत्वपूर्ण चरण होता है, इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए प्रस्तुत अध्ययन के भी कुछ प्रमुख उद्देश्य निर्मित किए गए है जो निम्न है :-

(1) तीन क्रमिक वर्षो में जीवित जन्मों के आधार पर शिशु मृत्यु के स्तर का आंकलन करना।

(2) लोगों की सामाजिक स्थिति के आधार पर शिशु मृत्यु की विभिन्नताओं को ज्ञात करना।

(3) शिशु मृत्यु के स्तर को प्रभावित तथा निर्धारित करने वाले सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक कारकों को ज्ञात करना।

(4) विभिन्न परिस्थितियों की आवश्यकतानुसार शिशु मृत्यु पर नियंत्रण पाने के लिए कारगर सुझाव प्रस्तुत करना।

उपकल्पनाएं :-

उद्देश्यों एवं पूर्व अध्ययनों के निष्कर्षो तथा शिशु मृत्यु की प्रचलित दर के आधार पर प्रस्तुत अध्ययन की निम्नलिखित उपकल्पनाएं निर्मित की गई है :-

(1) शिशु मृत्यु दर ह्रास की ओर उन्मुख है परन्तु फिर भी यह अधिक है।

(2) चार सप्ताह तक के शिशुओं की मृत्यु नियोनेटल मार्टीलिटी दर की तुलना में चार सप्ताह से एक वर्ष तक के शिशुओं की मृत्यु दर पोस्ट नियोनेटल मार्टीलिटी दर अधिक है।

(3) जनांकिकीय कारकों, जैसे कि स्त्रियों की प्रजनन दर तथा प्रसव के समय मॉ की आयु का शिशु मृत्यु से सकारात्मक सह-सम्बन्ध है।

(4) सामाजिक-सांस्कृतिक कारक जैसे कि माता-पिता का साक्षरता स्तर, उनकी जाति, परिवार का स्वरूप तथा सामाजिक-आर्थिक स्तर शिशु मृत्यु के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है।

(5) प्रसव के समय शिशुओं की देख-रेख सम्बन्धी कारक जैसे शिशु जन्म का स्थान, प्रशिक्षित तथा अप्रशिक्षित प्रसव सहायक, नाल काटने के लिए प्रयुक्त किए गए यंत्र का प्रकार तथा लड़कियों की तुलना में लड़कों को अधिक तथा शीघ्र औषधीय सुविधा प्रदान करना, शिशु मृत्यु से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है।

समस्या का परिसीमन :-

समस्या का क्षेत्र विशाल होने से अत्यधिक धन व समय का व्यय होता है साथ ही समस्या का गहन अध्ययन भी संभव नहीं हो पाता है। इसलिए समस्या का परिसीमन एक महत्वपूर्ण चरण है। प्रस्तुत अध्ययन का उत्तर प्रदेश के बांदा जनपद में स्थित बड़ोखर विकास खण्ड के अन्तर्गत आने वाले ग्रामीण परिवेश में आयोजित किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन का सीमांकन निम्न बिन्दुओं के आधार पर किया गया है :-

(1) प्रस्तुत अध्यन में हिन्दू जातियों (उच्च, मध्यम एवं निम्न) में शिशु मृत्यु का तुलनात्मक रूप प्रस्तुत किया गया है।

(2) बड़ोखर विकास खण्ड की 73 ग्राम सभाओं में 10% अर्थात 7 ग्रामों का चयन प्रस्तुत अध्ययन के लिए किया गया है ये ग्राम निम्न है :-

(1) चहितारा (2) पिपरी (3) अरबई (4) गुरेह (5) पल्हरी
(6) भवानीपुरवा (7) बड़ोखर खुर्द

(3) उपरोक्त चयनित ग्रामों के कुल परिवारों की संख्या में से उच्च, मध्यम एवं निम्न जाति के 10% परिवारों का चयन करके उनमें से प्रत्येक परिवार की 15 से 45 आयु वर्ग की वे विवाहित महिलाएं शामिल है जिनके वर्तमान में बच्चे पैदा हो रहे है।

(4) शिशु मृत्यु का आंकलन 1997, 1998 एवं 1999 में होने वाली जीवित जन्मों के आधार पर किया गया है।

अध्याय-द्वितीय

(1) शोध अभिकल्प :

योजनानुसार कार्य करना सम्पूर्ण प्रक्रिया पर नियंत्रण प्रदान करता है। यही योजना अभिकल्प है। अभिकल्प में पहले से ही उन निर्णयों को लिया जाता है जिनके लिए बाद में उपयुक्त वातावरण जुटाया जाता है और जिनका तथ्यात्मक परीक्षण किया जाता है।

रीति विधान, अभिकल्प से अधिक व्यापक प्रत्यय है। शोध के निर्णयों (उपकल्पनायें) का पूर्ण मूल्यांकन अभिकल्प की कथा वस्तु है। रीति विधान में निर्णयों का पूर्ण मूल्यांकन तो होता ही है साथ ही उन विधियों का भी मूल्यांकन होता है जिनसे शोध की सामग्री एकत्रित की गयी है। शोध का 'कैसे' अभिकल्प है तथा शोध का 'क्यों' रीति विधान है। गृह निर्माण से पूर्व नीला नक्शा अभिकल्प है, किन्तु नीले नक्शे का आवश्यकताओं के अनुसार मूल्यांकन करना तथा निर्माण योजना की परीक्षा करना रीति-विधान है।[1]

अभिकल्प तथा रीति विधान शोध के प्राण हैं। अच्छे अभिकल्प तथा रीति विधान के अभाव में वैज्ञानिक मूल्य के परिणाम पा लेना असम्भव बात है। अभिकल्प तथा रीति विधान में आशातीत उन्नति होने से ही आज मन का विज्ञान जिसे पहले विज्ञान का स्तर प्रदान करने में संकोच होता था, विज्ञान हो चला है। विज्ञान के निरन्तर एवं तीव्र विकास ने, विशेषकर सांख्यिकीय विधियों ने अभिकल्प तथा रीति विधान को विकसित करने में बड़ी सहायता की है।[2]

शोध अभिकल्प के चरण :-

(अ) आदर्श पक्ष :-

शोध की समस्या निश्चित होने पर शोधकर्ता इस स्थिति में आ जाता है कि समस्याध्ययन का उचित मार्ग खोज निकाले। खोज के इस लम्बे किन्तु स्पष्ट मार्ग में, समस्या निर्धारण के पश्चात आदर्श, अभिकल्प निश्चित करना होता है। आदर्श अभिकल्प शोध के

1. *चैपिन, एफ०एस० (1974), इक्सपेरीमेन्टल डिजाइन इन सोशियोलाजिकल रिसर्च, न्यूयार्क, हारपर एवं रा पब्लिशर्स, पेज-39।*
2. *चैपिन, 1947 : 39।*

भव्यतम् रूप के विषय में शोध कार्य का सुनहरा स्वप्न होता है। इसमें शोधकर्ता को यह अवसर मिलता है कि यदि वह एकदम मुक्त तथा समर्थ रहा होता तो शोध का कौन सा भव्यतम् रूप उसके आगे होता। किस प्रकार का शोध करके परमानन्द आता? इसे बाल कल्पना नहीं मानना चाहिए वरन् शोध प्रक्रिया का यह महत्वपूर्ण गुणात्मक मानदण्ड है। इसे आधार तथा उद्देश्यमान कर शोध की व्यावहारिक प्रक्रिया का मूल्यांकन हो सकता है और उसे अधिक से अधिक भव्यतम् बनाने का यत्न हो सकता है। इससे कार्यात्मक पक्ष जा सकता है।[1]

आदर्श अभिकल्प में, शोध की परम प्रभावकारी परिस्थितियों, प्राविधियां, व्यक्ति तथा व्यवहार लिये जा सकते हैं। जो शोध को सुन्दरतम् स्तर पर ले जाने में समर्थ हो, इसलिए इस अभिकल्प में चार बातों पर पर्याप्त बल दिया जाता है।[2]

1. अवलोकनीय व्यक्ति।
2. अवलोकनीय परिस्थितियाँ।
3. अवलोकनीय उत्तेजना।
4. अवलोकनीय प्रतिक्रियायें।

इन चारों में से प्रथम तीन (व्यक्ति, परिस्थितियाँ तथा उत्तेजना) मुक्तचर हैं तथा चौथा (प्रतिक्रियायें) आश्रित चर है।

आदर्श अभिकल्प शोध की एक प्रतीकात्मक संरचना है। शोध के सभी तत्व इसमें बीज के रूप में अवस्थित रहते हैं। सारा कार्य इसमें प्रत्ययों के माध्यम से चलता है। अतः उपयुक्त प्रत्ययों का चयन अत्यन्त ही आवश्यक है। शोध के प्रसंग में हमें जिन व्यक्तियों, घटनाओं तथा लक्षणों का प्रत्यय चाहिए, इसे निश्चित करने के उपरान्त आवश्यक है कि इन प्रत्ययों की परिभाषा दी जाय। इस प्रकार दो वस्तुयें आवश्यक होती हैं।[3]

---

1. *गुडे, डब्ल्यू0जे0, एण्ड हाट, पी0एफ0, (1952) मेथड इन सोशल रिसर्च, न्यूयार्क, मैकग्रा-हिल पब्लिसिंग कम्पनी, पेज 69-132।*
2. *गुडे एण्ड हाट, 1952 : 69-132।*
3. *ग्रानउड़ : अर्नेस्ट, 1945, इक्सपेरीमेन्टल सोशियोलाजी, ए स्टड़ी इन मैथड, न्यूयार्क, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, पेज 103।*

1. प्रत्यय चयन के लिए उचित कसौटी।

2. सिद्धान्त जो वैज्ञानिक परिभाषा देने में निर्देशन प्रदान कर सके।

प्रत्यय चयन उन्हीं वस्तुओं के लिए उपयोगी रहता है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शोध की मूल समस्या के समाधान पर प्रभावक रहते दिखायी देते हैं। प्रत्ययों के चयन में गत शोध का अनुभव, साहित्य व गाहन, आदि पर्याप्त सहयोग प्रदान करते हैं, प्रत्ययों के उपयुक्त चयन में वास्तविक सहायक पुस्तकालय ही है फिर भी व्यक्ति की अपनी सीमायें हैं, हो सकता है समस्या के बारे में बड़े महत्व की बातें अन्य ज्ञान क्षेत्रों में उपलब्ध हो। ऐसी बातें कभी-कभी तब मिल जाती हैं जब शोध प्रकाशित होती है तथा उसकी समालोचना बाहर के व्यक्ति करते हैं। यदि यही समालोचनायें शोध के प्रारम्भ में विशेषकर, अभिकल्प, निर्माण के समय उपलब्ध हो जाया करें तो बड़ा काम बन सकता है। ऐसा तभी हो सकता है जब ज्ञान सीमाओं को ढ़ीला किया जाय और दो प्रकार का सहयोग मिलता रहे।[1]

1. अन्र्तक्षेत्रीय सहयोग।

2. परस्पर क्षेत्रीय सहयोग।

प्रत्यय चयन के पश्चात दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि उनकी परिभाषा प्रस्तुत करना। प्रत्यय का उचित अर्थ प्राप्त करना आवश्यक है। पुराने प्रत्ययों के विषय में विशेष कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता। नये प्रत्ययों में कठिनाई रहा करती है। दुर्भाग्य से सामाजिक विषयों में अधिकांश प्रयुक्त प्रत्यय स्पष्ट परिभाषित नहीं है। परिभाषा प्रसंग पर इस प्रकार ध्यान देना चाहिए।[2]

(1) सभी प्राप्त प्रत्ययों का विश्लेषण किया जाय और व्याख्या की जाय। मस्तिष्क में प्रत्ययों की परिभाषाओं का ऐतिहासिक क्रम बना रहे।

(2) अर्थ की तह में जाने का प्रयत्न किया जाय।

---

1. फिशर आर0, 1951, दि डिजाइन आफ इक्सपेरीमेन्ट, हाफनर, पेज 30।

2. फिशर, 1951, 32।

(3) काम चलाऊ परिभाषा को निरन्तर सोउद्‌देश्य बनाते रहना चाहिए।

(4) परिभाषाओं की बहुमुखी आलोचनायें आवश्यक हैं।

(5) परिभाषा संरचनात्मक तथा कार्यात्मक दोनों ही प्रकार की होनी चाहिए।

वैज्ञानिक परिभाषा ही काम की वस्तु है। उसके लिए चार बातों का होना आवश्यक है। इन्हें 'ना' 'रा' 'य' 'ण' शब्द से जानते हैं।[1]

ना - वस्तु जिसमें लक्षण सम्बन्धित है।

रा - वातावरण जिसमें ना का अवलोकन किया जाय।

य - वे उत्तेजक जिनके सम्मुख 'ना' का वातावरण 'रा' में उपस्थित होना चाहिए।

ण - उत्तेजनों 'य' के प्रति 'ना' की वातावरण 'रा' में प्रतिक्रिया।

लक्षणों की परिभाषा में वस्तुओं, घटनाओं की परिभाषायें भिन्न होती है। परिभाषा क्रम की समाप्ति पर तीसरा चरण है, यह तय करना कि आदर्श, अभिकल्प की सीमा में किन चरों को स्थिर तथा किन्हें बदलने देना है। इस दिशा में उचित निदर्शन शोध के उद्‌देश्यों तथा उपकल्पनाओं से मिल सकता है।

शोध में लक्षणों या चरों के पारस्परिक सम्बन्धों को महत्व दिया जाता है। यह सम्बन्ध तीन प्रकार के हो सकते हैं।[2]

(1) कार्य कारण।

(2) उत्पादन उत्पाद्य।

(3) सह गुणकत्व।

(1) कार्य कारण :-

कार्य कारण सम्बन्ध में 'ख' की उत्पत्ति में क पर्याप्त होता है अर्थात जब भी क होगा तो ख अवश्य ही होगा। दोनों में निश्चित सम्बन्ध है। किन्तु सभी सम्बन्ध वातावरण

---

1. *लिण्ड क्वीस्ट. जी0, 1953 डिजाइन एण्ड एनालिसिस आफ एक्सपेरीमेन्ट इन साइकोलोजी एण्ड एजूकेशन, हंगसन, पेज 16-18।*

(2) *लिण्ड क्वीस्ट, 1953 : 21।*

पर आश्रित हैं अतः कारण कभी भी कार्य के लिए पर्याप्त नहीं होता।[1]

(2) उत्पादक उत्पाद्य :

उत्पादन उत्पाद्य सम्बन्ध में जैसे घण्टा पीटा जाय तो ध्वनि होगी। पीटना ध्वनि के लिए आवश्यक है। उत्पादन के लिए दो बातें अवश्य ही होनी चाहिए।[2]

(1) ऐसा वातावरण (रा) हो कि जब उसमें (क) को रखा जाय तो (ख) उसका अनुसरण करें। ऐसा वातावरण हो जहां शिक्षा प्राप्ति में उन्नति होने पर आय-वृद्धि दिखाई दे।

(2) वातावरण (रा) ऐसा हो कि यदि उसमें (क) का अभाव हो तो (ख) भी लुप्त बना रहे।

(3) सह गुणकत्व :

सह गुणकत्व में चरों का पारस्परिक सम्बन्धित होना तो दिखाई देता है किन्तु यह सम्बन्ध न तो कारण कार्य का होता हे और न ही उत्पादक-उत्पाद्य का।[3]

आदर्श, अभिकल्प में प्रयुक्त चर के मूल्यों को निश्चित करना एक बड़ी समस्या है। यदि चर मूल्य को स्थिर रखना है तो उसका एक ही मूल्य होना चाहिए। यदि चर के मूल्यों को बदलना है तो निर्देश स्पष्ट होना चाहिए।

जहां तक चरों की गुणात्मकता, मात्रात्मकता का सवाल है, वहां यह नही भूलना चाहिए कि समस्या जितनी अधिक विशिष्ट होगी, उसे उतना ही अधिक मात्रात्मक होना होगा। वैज्ञानिक मात्रात्मकता के अन्तर्गत चर को मात्रा प्रदान करने के पीछे एक तर्क हुआ करता है और पाये जाने वाले परिणामों में उपयोगिता वर्तमान रहा करती है। इससे प्रयोग में प्रवीणता का समारम्भ होता है और मात्रात्मकता सही-सही रहा करती है।

---

1. *सोलेमन : आर0, 1949, एन एक्सटेन्सन आफ कन्ट्रोल ग्रुप डिजाइन, साइक्लोजिकल बुलेटिन, पेज 91।*
2. *सोलेमन, 1949, 93।*
3. *सोलेमन, 1949 ; 95*

गुणात्मकता वस्तु के गुणों, लक्षणों के वर्गीकरण से सम्बन्धित है यथा संगठित असंगठित, होड़, सहयोग। शोध के आदर्श, अभिकल्प में गुणात्मक चरों का वर्गीकरण एकदम स्पष्ट होना चाहिए। वर्गीकरण जहां पर क्रमिक विकास का संकेत करता है जैसे-बहुत कम, कम, साधारण, अधिक, बहुत अधिक। ऐसे वर्गीकरण को स्तरित कहा जाता है। स्तरण, चर की संरचना तथा उसके कार्यो के बारे में होना चाहिए।

(ब) अवलोकन पक्ष :-

शोध का प्रारम्भ करने पर शीघ्र ही यह अनुभव करना पड़ता है कि आदर्श अभिकल्प का ब्यूह ज्यों का त्यों नहीं चल सकता। परिस्थितियों की वास्तविकतायें शोध के सपनों में सही नहीं उतर पाती और परिणामस्वरुप आदर्श अभिकल्प में यत्र-तत्र कुछ परिवर्तन करने होते हैं। शोध का यह नया स्तर है और इसे अवलोकन पक्ष कहते हैं।[1]

अवलोकन करते समय कुछ व्यक्ति अपेक्षित सहयोग नहीं प्रदान करते। कुछ मिलते नहीं, कुछ मनाकर देते हैं तब उनसे सहयोग कैसे प्राप्त किया जाय, सहयोग की समस्या व्यक्तियों, वातावरण तथा उत्तेजना के प्रसंग में उठा करती है।

व्यक्तियों का अहसयोग तीन रूप लेता है।

(1) अप्राप्त होना।

(2) असहयोग।

(3) त्रुटिपूर्ण उत्तर।

इन्हें एक बड़ी सीमा तक दूर भी किया जा सकता है। जैसे पहले समय निश्चित कर लेना, प्रशिक्षित व्यक्तियों को तथ्य संकलन के लिए भेजना। बार-बार मिलने का यत्न करना आदि। यदि बिल्कुल ही अप्राप्य हो तो अन्य समीप के व्यक्तियों से सूचना प्राप्त की जाय। असहयोग दूर करने में योजना का पहले प्रकाशन तथा सहयोग की अपील प्रकाशित करना अच्छा रहता है।

---

1. *कार्ल, एन0 लेलवेनि, (1953), लीगल ट्रेडीसन एण्ड सोशल साइंस मैथड इन बुकिंग इन्स्टीट्यूट कमेटी आन ट्रेनिंग एसाइन रिसर्च, मैथड इन दि सोसल साइंस, पेज 113, 114।*

त्रुटिपूर्ण उत्तरों के लिए आवश्यक है कि उन्हें खोज निकाला जाय साथ ही मिलान करना आवश्यक है। यदि उत्तरों में समानता दिखाई दे तो उसे अच्छा मानना चाहिए। वातावरण तथा उत्तेजनों के बारे में दोषों का निराकरण के लिए आवश्यक है कि सूचना-पत्री बड़ी सावधानी से बनायी जाय। उसमें विश्वसनीयता तथा वैधता हो।[1]

(स) कार्यात्मक पक्ष :-

इस पक्ष का उद्देश्य होता है कि जो बातें विशेष रूप से प्रतिदर्श सांख्यिकी तथा अवालेकन पक्षों में रखी गई हैं उन्हें आगे बढ़ाया जाय। शोध के कार्यो, निर्देशों तथा उपकरणों में समाविष्ट विशेष बातों को कार्य रूप से परिणित किया जाय। कार्यात्मक पक्ष में व्यवहृत सावधानियों से शोध योजना पर वास्तविक नियन्त्रण प्राप्त होता है।

वास्तविक शोध कार्य से पहले उसे परिस्थितियों से सटा देने के लिए तीन प्रकार की कार्य योजनायें महत्वपूर्ण होती हैं।

(1) मार्गदर्शी अध्ययन।

(2) पूर्व परीक्षण।

(3) योजना परीक्षण।

(1) मार्गदर्शी अध्ययन :-

मार्गदर्शी अध्ययन स्वभाव से वर्णनात्मक होता है। उसका उद्देश्य होता है शोधकर्ता के सम्मुख उन परिस्थितियों का ज्ञान रखना जो शोध के दौरान विरोध के रूप में रुकावटों के रूप में आ सकती हैं।

(2) पूर्व परीक्षण :-

पूर्ण परीक्षण मूल्यांकन होता है। उसमें शोध के एक या अनेक कार्यात्मक विधियों का परीक्षण होना होता है। इससे उस विधि विशेष के उपयोगी होने का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है।

---

1. *मार्टन, आर0के0, 1949, सोशल थियरी एण्ड सोशल स्ट्रक्चर, टू वर्ड कोडिफिकेशन आफ थियरी एण्ड रिसर्च, कोलम्बिया यूनीवर्सिटी प्रेस, पेज 55।*

(3) योजना परीक्षण :-

योजना परीक्षण में समूची कार्यात्मक योजना का मूल्यांकन होना होता है जिससे साफ-साफ पता चल जाता है कि कार्यात्मक योजनाओं में से कौन-कौन सी आगे बढ़ने योग्य है।

शोध अभिकल्प के प्रकार -

सभी प्रकार के शोधों का उद्देश्य ज्ञान प्राप्त करना होता है, किन्तु उद्देश्यों की पूर्ति विभिन्न प्रकार से हो सकती है इसी प्रकार शोध अभिकल्प भी अलग-अलग हो सकते है। शोध अभिकल्प चार प्रकार की होती है।

(1) अन्वेषणात्मक अथवा निरुपणात्मक शोध अभिकल्प -

जब किसी शोध कार्य का उद्देश्य किन्हीं सामाजिक घटना में अन्तर्निहित कारणों को खोज निकालना होता है तो सम्बन्धित रूपरेखा को अन्वेषणात्मक शोध अभिकल्प कहते हैं। इस प्रकार के शोध अभिकल्प में शोध कार्य की रूपरेखा इस प्रकार प्रस्तुत की जाती है कि घटना की प्रकृति व उसकी वास्तविकताओं को खोज निकाला जा सके। अध्ययन विषय के चुनाव के पश्चात उपकल्पनाओं का सफलतापूर्वक निर्माण करने के लिए इस प्रकार के शोध अभिकल्प का अत्यधिक महत्व होता है क्योंकि इसकी सहायता से अध्ययन विषय या समस्या का कार्य कारण सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है अर्थात अन्वेषणात्मक शोध अभिकल्प कारकों के खोज निकालने की एक योजना हैं। यह उन आधारों को प्रस्तुत करता है जो कि एक सफल शोध कार्य के लिए महत्वपूर्ण होते हैं।

(2) वर्णनात्मक शोध अभिकल्प -

किसी विषय या समस्या के संदर्भ में वास्तविक तथ्यों के आधार पर वर्णनात्मक विवरण प्रस्तुत करना वर्णनात्मक शोध अभिकल्प कहलाता है। इसकी आवश्यक शर्त है कि विषय के सम्बन्ध में यथार्थ तथा पूर्ण सूचनायें प्राप्त हो, क्योंकि इनके बिना अध्ययन विषय या समस्या के सम्बन्ध में जो भी वर्णनात्मक विवरण प्रस्तुत किया जायेगा वह वैज्ञानिक न होकर दार्शनिक होगा। क्योंकि वैज्ञानिकता का आधार वास्तविक एवं विश्वसनीय तथ्य ही

होते हैं। इस प्रकार के शोध अभिकल्प में तथ्यों का संकलन वैज्ञानिक प्रविधियों के द्वारा किया जाता है।

(3) निदानात्मक शोध अभिकल्प :

जब किसी शोध कार्य का उद्देश्य किसी समस्या के कारणों के सम्बन्ध में वास्तविक ज्ञान प्राप्त करके उस समस्या के समाधानों को प्रस्तुत करना हो तो इस प्रकार के शोध अभिकल्प को निदानात्मक शोध अभिकल्प कहते हैं। इस प्रकार के शोध में शोधकर्ता, समस्या का हल प्रस्तुत करता है, न कि स्वयं समस्या को हल करने का प्रयत्न करता है। शोधकर्ता, वैज्ञानिक पद्धतियों के माध्यम से समस्या के कारणों को ज्ञात करने के बाद यह जानने का प्रयास करता है कि समस्या का समाधान किस तरीके से हो सकता है। इसलिए निदानात्मक शोध कार्य में समस्या का पूर्ण एवं विस्तृत अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से करके समस्या की गहराई में पहुंचने का प्रयास किया जाता है।

(4) परीक्षणात्मक शोध अभिकल्प :-

समाजशास्त्र भी भौतिक विज्ञान की भॉति अपने शोध कार्यो में परीक्षण का प्रयोग कर अधिकाधिक यथार्थता लाने का प्रयत्न कर रहा है, भौतिक विज्ञान में विषयों का अध्ययन नियंत्रित अवस्थाओं में रखकर किया जाता है। समाजशास्त्र में सामाजिक घटनाओं का व्यवस्थित अध्यन नियंत्रित दशाओं में रखकर निरीक्षण परीक्षण के द्वारा करने की रूपरेखा को परीक्षणात्मक शोध अभिकल्प कहते हैं चैपिन ने लिखा है ''समाजशास्त्रीय शोध में परीक्षणात्मक-प्ररचना की अवधारणा नियंत्रण की दशाओं के अन्तर्गत निरीक्षण द्वारा मानवीय सम्बन्धों के व्यवस्थित अध्ययन की ओर संकेत करती है।''[1] अर्थात अति संक्षेप में कह सकते हैं कि प्रयोगशाला पद्धति के द्वारा विषय का अध्ययन परीक्षणात्मक शोध का दूसरा नाम है।

---

1. चैपिन : एक्सपेरीमेन्टल डिजाइन इन सोशिलाजिकल रिसर्च, पेज नं० 28।

परीक्षणात्मक शोध तीन प्रकार का होता है :-

1. पश्चात परीक्षण
2. पूर्व-पश्चात परीक्षण
3. कार्यान्तर तथ्य परीक्षण

1. पश्चात परीक्षण :-

इसके अन्तर्गत समान विशेषताओं व प्रकृति वाले दो समूहों को चुन लिया जाता है। जिनमें से एक नियंत्रित समूह एवं दूसरा परीक्षणात्मक समूह कहलाता है। नियंत्रित समूह में किसी प्रकार का परिवर्तन नही लाया जाता जबकि परीक्षणात्मक समूह में किसी एक कारक के द्वारा परिवर्तन लाने का प्रयत्न किया जाता है, इस प्रकार प्रथम समूह दूसरे समूह से भिन्न हो जाता है तो उसी कारक को परिवर्तन का कारण मान लिया जाता है।

2. पूर्व-पश्चात परीक्षण :

इसमें अध्ययन के लिए केवल एक ही समूह का चुनाव किया जाता है और उसी का अध्ययन एक अवस्था विशेष के पहले और बाद में किया जाता है। इन दोनों अध्ययनों के अन्तर को देखा जाता है और उसे ही परिवर्तन परिस्थिति का परिणाम मान लिया जाता है।

3. कार्यान्तर तथ्य परीक्षण :-

इस प्रकार का परीक्षण किसी ऐतिहासिक घटना का अध्ययन करने के लिए किया जाता है चूंकि ऐतिहासिक घटनाओं को दोहराना शोधकर्ता के वश में नहीं होता है अतः दो समूहों का चुनाव किया जाता है जिनमें से एक में वह घटना घटित हो चुकी हो जबकि दूसरे में नहीं। दोनों समूहों की पुरानी परिस्थितियों का तुलनात्मक अध्ययन करके यह पता लगाने का प्रयत्न किया जाता है कि जिस समूह में वह घटना घटित हुई है वह किन कारणों से हुई

है। संक्षेप में ऐतिहासिक घटनाक्रमों का परीक्षण कर वर्तमान घटनाओं या अवस्थाओं के कारणों की खोज कार्यान्तर तथ्य परीक्षण कहलाता है।

प्रस्तुत शोध का अभिकल्प :-

उपर्युक्त विवरण के संदर्भ में प्रस्तुत शोध का अभिकल्प अन्वेषणात्मक, वर्णनात्मक तथ्य निदानात्मक है। इसका मुख्य उद्देश्य ग्रामीण परिवेश में शिशु मृत्यु के स्तर तथा विभिन्नताओं का अन्वेषणात्मक अध्ययन करना है। साथ ही कुछ परिकल्पनाओं, जिनका कि निर्माण भारतीय समाज में प्रचलित दशाओं तथा उपलब्ध अनुसंधान सामग्री पर आधारित है, का परीक्षण करना भी है। इसके अतिरिक्त, अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षो के आधार पर समस्या के समाधान के लिए सुझाव प्रस्तुत करना भी वर्तमान अध्ययन का उद्देश्य है।

अध्ययन में प्रयुक्त विधियाँ -

किसी भी अध्ययन को वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान करने के लिए कुछ अनुसंधान विधियों का सहारा लेना पड़ता है। जिससे अध्ययन की तार्किकता एवं वैधता प्रमाणित हो सके, अतः प्रस्तुत अध्ययन में भी कुछ प्रमुख वैज्ञानिक विधियों का सहारा लिया गया है जो निम्नलिखित है -

(1) अवलोकन या निरीक्षण

(2) साक्षात्कार

(3) अनुसूची

(4) प्रतिचयन या प्रतिदर्श

(1) अवलोकन या निरीक्षण :-

अवलोकन, तथ्यों व घटनाओं के याथार्थ अवबोध के लिए वैज्ञानिक अनुसंधान की मौलिक प्रविधि है। विलियम जे० गुडे तथा पाल के हाट के अनुसार, ''विज्ञान का प्रारम्भ

अवलोकन से होता है तथा इसके अन्तिम वैधीकरण के लिए अन्ततोगत्वा अवलोकन पर ही लौटकर आना पड़ता है।''

अवलोकन की कतिपय परिभाषाएं निम्नलिखित हैं-

पी०वी० यंग के अनुसार- ''अवलोकन को अवलोकित प्रघटना के विचार के साथ युग्मित व्यवस्थित पर्यवेक्षण के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।''

सी०ए० मोजर तथा जी० काल्टन के शब्दों में, ''दृढ़ अर्थ में अवलोकन में कानों तथा वाणी की अपेक्षा चक्षुओं का प्रयोग समाविष्ट है।'८

उपर्युक्त परिभाषाओं के प्रकाश में यह कहा जा सकता है कि अवलोकन किसी तथ्य व प्रघटना के यथार्थ स्वरूप के अवबोधन हेतु उद्देश्यपूर्ण एवं सुव्यवस्थित पर्यवेक्षण है।

अवलोकन की विशेषताएँ -

अवलोकन की कतिपय प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

(1) सामाजिक अनुसंधान एवं सर्वेक्षण में अवलोकन का प्रयोग सूचनाओं के संग्रहण के एक स्वतन्त्र शोध प्रविधि के रूप में किया जाता है।

(2) इसका प्रयोग विशेष रूप से उस समय किया जाता है, जबकि व्यवहार तथा वह परिस्थिति जिसमें व्यवहार घटित होता है दोनों का वर्णन आवश्यक होता है।

(3) यह एक व्यवस्थित तथा जानबूझकर नेत्रों द्वारा किया जाने वाला निरीक्षण है।

(4) इसके अन्तर्गत स्वतः घटित होने वाली घटनाओं को उसी रूप में अवलोकित किया जाता है जिस रूप में वे घटित होती हैं।

(5) अवलोकन का प्रयोग किसी समूह व समुदाय के जीवन का अध्ययन करने अथवा किसी विशिष्ट क्रिया की खोजबीन करने या उसके कारण तथा परिणाम के पारस्परिक सम्बन्धों का पता लगाने के संदर्भ में किया जाता है।

अवलोकन के प्रकार :-

सामाजिक अनुसंधान तथा सर्वेक्षण में विविध प्रकार के क्षेत्रीय अवलोकन उपयोगी पाए गये हैं। विवेचनागत अध्ययन की सुगमता हेतु यहां हम अनुसंधानकर्ता के अपने विषय से सम्बद्ध दृष्टिकोण के अनुसार इसके प्रमुख प्रकारों का निम्नलिखित रूप से विवेचना प्रस्तुत करेंगे -

(अ) अनियंत्रित अवलोकन

(1) सहभागी अवलोकन

(2) असहभागी अवलोकन

(3) अर्द्धसहभागी अवलोकन

(ब) नियंत्रित अवलोकन

असहभागी अवलोकन के गुण :-

असहभागी अवलोकन के प्रमुख गुण निम्नलिंखित है-

(1) वैषयिक अध्ययन :-

असहभागी अवलोकन में चूंकि अवलोकनार्थ अवलोकित समूह के कार्यो में अपने को सम्मिलित नहीं करता है बल्कि समूह का अवलोकन बाहर से करता है अतएव वह पूर्णतया निष्पक्ष होकर घटनाओं का अवलोकन करता है।

(2) विश्वसनीय सूचनाओं का संकलन -

असहभागीय अवलोकन के अन्तर्गत जहां एक ओर प्रश्न पूछकर सूचनाओं का संकलन करने में सूचनादाताओं का भ्रमपूर्ण सूचनाओं से बचाव होता है वहां दूसरी ओर से सूचनाएं भी संकलित की जा सकती है जो प्रश्न पूछकर संकलित नहीं की जा सकती।

(3) समूह की भावनाओं से अप्रभावित -

इसके अन्तर्गत अवलोकनकर्ता समूह की भावनाओं, पक्षपातों, पूर्व धारणाओं तथा उद्देश्यों से प्रभावित नहीं होता है।

अर्द्ध-सहगामी अवलोकन-

अनियन्त्रित अवलोकन प्रविधि का तृतीय उप-प्रकार अर्द्ध-सहगामी अवलोकन है। यह प्रविधि सहगामी तथा असहगामी अवलोकन के मध्य की है। वास्तविकता तो यह है कि यह दोनों प्रविधियों सहगामी तथा असहगामी अवलोकन की शुष्क परिसीमाओं से बचने के लिए हम इस मध्यवर्ती मार्ग का अनुशीलन करते है। जिसे अर्द्ध-सहगामी अवलोकन प्रविधि कहते हैं। गुटे तथा हाट के अनुसार-"दोनों भूमिकाओं (सहभागी तथा असहभागी) को कार्यान्वित करना स्वयं पूर्णरूपेण प्रच्छन्न रूप से प्रयास करने की अपेक्षा सरलतर है।"

अन्य प्रविधियों की भाँति इस प्रविधि की भी अपनी परिसीमाएं है। इसका प्रयोग केवल सीमित प्रकार की प्रक्रियाओं तथा घटनाओं के अध्ययन में ही प्रयुक्त किया जा सकता है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि यदि इस प्रविधि का उचित रीति से अनुशीलन किया जाय तो इसके द्वारा सहभागी तथा असहभागी दोनों ही प्रविधियों के लाभ प्राप्त हो सकते हैं।

साक्षात्कार का उद्देश्य व्यक्ति के विचारों, विश्वासों, मूल्यों, भावनाओं, अतीत के अनुभवों तथा भविष्य के इरादों को ज्ञात करना है। साक्षात्कार लोगों के बारे में ज्ञान एवं अनुभव में वृद्धि करता है तथा साक्षात्कार के अतिरिक्त अन्य प्रविधियों द्वारा संकलित सामग्री के सत्यापन एवं नियंत्रण में सहायता करता है।

सी०ए० मोजर के अनुसार, "एक सर्वेक्षण साक्षात्कार, साक्षात्कारकर्ता तथा उत्तरदाता के मध्य एक वार्तालाप है, जिसका उद्देश्य उत्तरदाता से निश्चित सूचना प्राप्त करना होता है।"

पी०वी० यंग के शब्दों में, "साक्षात्कार को एक ऐसी व्यवस्थित पद्धति है जिसमें दो या दो से अधिक व्यक्ति किसी विशिष्ट उद्देश्य को सामने रखकर परस्पर आमने-सामने होकर संवाद, बार्तालाप एवं उत्तर प्रतिउत्तर करते हैं। यह एक मनोवैज्ञानिक विधि है जिसमें साक्षात्कारकर्ता उत्तरदाता की भावनाओं, विचारों, मनोवृत्तियों एवं आन्तरिक जीवन का अध्ययन करता है। यह एक सामाजिक प्रक्रिया भी है।

प्रस्तुत अध्यन में अर्द्धसहभागी अवलोकन विधि का सहारा लिया गया है। गुणात्मक तथ्यों के संकलन हेतु शोधकर्ती ने अध्ययन क्षेत्र का सर्वेक्षण किया। साक्षात्कार के दौरान शोधकर्ता ने उत्तरदात्रियों से प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के साथ-साथ उनके पारिवारिक वातावरण, सामाजिक, आर्थिक स्थिति एवं स्तर का आंकलन अवलोकन विधि के माध्यम से किया है।

साक्षात्कार की विशेषताएं :-

विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर साक्षात्कार की निम्न विशेषताएं प्रकट होती हैं :

(1) साक्षात्कार के लिए दो या दो से अधिक व्यक्तियों का होना आवश्यक है जो परस्पर सम्पर्क, वार्तालाप एवं अन्तःक्रिया करते हैं।

(2) इन व्यक्तियों में एक साक्षात्कार लेने वाला होता है और दूसरा उत्तरदाता।

(3) साक्षात्कार एक सामाजिक प्रक्रिया है।

(4) साक्षात्कार एवं उद्देश्यपूर्ण वार्तालाप है।

(5) यह एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया भी है।

(6) साक्षात्कार में दोनों पक्षों के बीच आमने-सामने के और प्राथमिक सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं।

(7) साक्षात्कार में अनुसंधानकर्ता अध्ययन विषय से सम्बन्धित सूचनाओं तथा तथ्यों का संकलन किया जाता है।

(8) साक्षात्कार सूचना संकलन की एक मौखिक विधि है।

साक्षात्कार के उद्देश्य -

साक्षात्कार के प्रमुख उद्देश्य निम्नांकित है :-

(1) प्रत्यक्ष सम्पर्क द्वारा सूचनाएं -

साक्षात्कार में दो या दो से अधिक व्यक्तियों के मध्य आमने-सामने के प्रत्यक्ष एवं

प्राथमिक सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं और इस स्थिति में अनुसंधानकर्ता सूचनादाता से विषय से सम्बन्धित महत्वपूर्ण सूचनाओं का संकलन करता है।

(2) उपकल्पनाओं का स्रोत -

साक्षात्कार का एक उद्देश्य उपकल्पनाओं के निर्माण के लिए आवश्यक सामग्री प्राप्त करना है। साक्षात्कार के दौरान व्यक्ति और समूहों के बारे में नवीन ज्ञान का उद्घाटन होता है, नये क्षेत्रों का पता लगता है, लोगों की भावनाओं, मनोवृत्तियों, विचारों एवं आकांक्षाओं के बारे में जानकारी प्राप्त होती है, व्यक्ति एवं सामूहिक जीवन के सम्बन्ध में उपयोगी अनुभव प्राप्त होते हैं। जिनका प्रयोग नवीन उपकल्पनाओं के निर्माण हेतु किया जा सकता है।

(3) व्यक्तिगत तथ्यों की प्राप्ति-

साक्षात्कार का उद्देश्य लोगों के जीवन से सम्बन्धित व्यक्तिगत एवं आन्तरिक सूचनाएं प्रापत करना भी है। ऐसी सूचनाएं जिन्हें पी०वी० यंग 'मानव व्यक्तित्व का एक चित्र' कहकर पुकारती है और जो वैयक्तिक अध्ययनों की दृष्टि होती है, भी साक्षात्कार द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है।

(4) गुणात्मक तथ्यों के लिए -

मानव जीवन से सम्बन्धित ऐसे गुणात्मक तथ्य है जैसे भावनाएं मनोवृत्तियां, उद्वेग आकांक्षाएं, विचार, लोक विश्वास, प्रवृत्तियां, मूल्य, आदर्श रुचियां आदि जिनका अध्ययन केवल साक्षात्कार द्वारा ही संभव है।

(5) अवलोकन का अवसर -

साक्षात्कार से व्यक्तिगत तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने के साथ-साथ व्यक्ति के व्यवहार, और जीवन की बहुत सी बातों का अवलोकन करने का अवसर भी प्राप्त होता है। इस प्रकार साक्षात्कार में अवलोकन एवं साक्षात्कार दोनों के गुण पाये जाते हैं।

(6) अन्य विधियों से प्राप्त सामग्री का सत्यापन -

साक्षात्कार का एक उद्देश्य प्रश्नावली, अवलोकन एवं अन्य विधियों द्वारा प्राप्त

सामग्री की विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता ज्ञात करना भी है।

(7) साक्षात्कार के द्वारा किसी घटना के लिए उत्तरदायी कारकों की खोज की जाती है। उन कारकों के सह-सम्बन्धों एवं प्रभावक कारकों को भी ज्ञात किया जाता है।

साक्षात्कार के प्रकार -

विद्वानों ने उद्देश्य अवधि, क्षेत्र, आदि के आधार पर साक्षात्कार के प्रकारों का उल्लेख किया है, साक्षात्कार के प्रकार निम्नलिखित है -

(अ)	उद्देश्य के आधार पर -	1.	निदानात्मक साक्षात्कार
		2.	उपचारात्मक साक्षात्कार
		3.	अनुसंधानात्मक साक्षात्कार
(ब)	संख्या के आधार पर	1.	व्यक्तिगत साक्षात्कार
		2.	सामूहिक साक्षात्कार
(स)	अवधि के आधार पर	1.	अल्पकालिक साक्षात्कार
		2.	दीर्घकालिक साक्षात्कार
(द)	संरचना के आधार पर	1.	संरचित साक्षात्कार
		2.	असंरचित साक्षात्कार
		3.	अर्द्धसंरचित साक्षात्कार

प्रस्तुत अध्ययन में व्यक्तिगत साक्षात्कार के माध्यम से तथ्यों का संकलन किया गया है। इस प्रकार के साक्षात्कार में एक समय में एक साक्षात्कार लेने वाला एवं एक सूचनादाता परस्पर विषय से सम्बन्धित वार्तालाप करते हैं। प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्त्री ने सर्वप्रथम उत्तरदात्रियां का विश्वास प्राप्त किया जिससे वास्तविक तथ्यों की प्राप्ति हो सके। चूंकि अधिकांश उत्तरदात्रियां अनपढ़ अथवा बहुत कम पढ़ी लिखी थी। अतः साक्षात्कार के दौरान शोधकत्री ने सर्वप्रथम अध्ययन से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं को जानकारियां उत्तरदात्रियों को दी जिससे उन्हें उत्तर देने में सहायता महसूस हुई।

अनुसूची :-

सामाजिक अनुसंधान तथा सर्वेक्षण में पर्याप्त विश्वसनीयता तथा वैध आवश्यक दत्तों के आंकलन हेतु एक चमत्कारिक अविष्कार हुआ है : अनुसूची उपकरण का निर्माण। इस उपकरण की प्रमुख विशेषता यह है कि यह साक्षात्कार तथा अवलोकन पर नियन्त्रण करती है। वस्तुतः अनुसूची दत्त-संकलन का एक ऐसा उपकरण है जिसमें प्रस्तावित अध्ययन के सम्बन्ध में कतिपय नए तथ्यों, अन्वेषण करने तथा जानकारी प्राप्त करने हेतु लेखबद्ध प्रश्नों का एक आयोजित तथा व्यवस्थित अभिकल्प अथवा प्रपत्र का उपयोग किया जाता है। इसे अनुसंधानकर्ता अथवा परिगणक स्वयं ही सूचनादाताओं से पूंछतांछ करके भरता हैं इसके माध्यम से वैयक्ति अधिमानों, सामाजिक अभिवृत्तियों, विश्वासों, विचारों, व्यवहार प्रतिमानों, समूह व्यवहारों तथा आदतों और इसी प्रकार के अन्य दत्तों का संकलन किया जाता है। सभी समाजवैज्ञानिक अनुसंधानों तथा सर्वेक्षणों में आज अनुसूची का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। इसका एक प्रबल कारण यह है कि इसके द्वारा संग्रहीत दत्तों में एकरूपता लाकर मात्रात्मक व संख्यात्मक मापन करना सम्भव है।

इमोरी एस० बोगार्डस के शब्दो में – ''अनुसूची तथ्यों को वैषयिक स्वरूप में है तथा आसानी से अनुभव के योग्य हैं, के उपलब्ध करने के लिए एक औपचारिक पद्धति का प्रतिनिधित्व करती है.............। अनुसूची स्वयं अनुसंधानकर्ता द्वारा भरी जाती है।''

विलियम जे. गुडे तथा पाल के. हाट के अनुसार- ''अनुसूची सामान्यतः प्रश्नों के एक समूह के लिए प्रयुक्त होने वाला नाम है जो साक्षात्कारकर्ता द्वारा दूसरे व्यक्ति से आमने-सामने की स्थिति में पूछे एवं भरे जाते हैं।''

उपर्युक्त परिभाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अनुसूची दत्त-संकलन हेतु लेखबद्ध प्रश्नों की एक नियोजित, विस्तृत वर्गीकृत तथा व्यवस्थित अभिकल्प सूची है जो एक अनुसंधानकर्ता अथवा परिगणक द्वारा स्वयं ही सूचनादाताओं से आमने-सामने की स्थिति में पूछी तथा भरी जाती है।

अनुसूची की विशेषताएं -

अनुसूची की निम्नलिखित विशेषताओं का संकेत दिया जा सकता है-

(1) सामाजिक अनुसंधान एवं सर्वेक्षण के अन्तर्गत अनुसंधान समस्या के समाधन हेतु अनुसूची वांछित सूचनाओं के संग्रहण के लिए प्रयोग में लाया गया एक उपकरण है।

(2) अनुसूची प्रश्नों की एक व्यवस्थित सूची है।

(3) ये प्रश्न प्रायः अनुसंधाता द्वारा उत्तरदाताओं के आमने-सामने की स्थिति में पूंछे जाते हैं।

(4) अनुसूची स्वयं अनुसंधानकर्ता द्वारा भरी जाती है।

(5) अनुसूची के प्रश्नों को पूंछते समय अनुसंधाता कुछ सामान्य शोध सिद्धान्तों एवं प्रविधि के मार्गदर्शन का प्रयोग करता है।

अनुसूची की सीमाएं -

सामाजिक अनुसंधान तथा सर्वेक्षण में यद्यपि अनुसूची उपकरण की महत्वपूर्ण भूमिका हैं।

अनुसूची के प्रकार -

अनुसूची की व्यापक विविधता को अनेक रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है। विचेनागत अध्ययन की सुगमता हेतु यहां हम उसके कुछ महत्वपूर्ण स्वरूपों की चर्चा करेंगे।

(1) साक्षात्कार अनुसूची -

इस प्रकार की अनुसूची का प्रयोग मुख्यतः व्यक्तिगत साक्षात्कार में किया जाता है। जिसका प्रमुख उद्देश्य सूचनादाताओं से व्यक्तिगत रूप से मिलकर समस्या से सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तरों को प्राप्त करना होता है। अनुसंधानकर्ता साक्षात्कार अनुसूची में अंकित प्रश्नों के उत्तरों को सूचनादाता से प्राप्त करके अनुसूची में यथास्थान पर अंकित करता है।

(2) अवलोकन अनुसूची -

ऐसी अनुसूची का प्रयोग अनुसंधान में अवलोकन प्रविधि के आधार पर दत्तों का संकलन करने की दशा में किया जाता है। प्रायः अवलोकन कार्य की व्यवस्थित व क्रमबद्ध बनाने एवं साथ ही वैध तथा विश्वसनीय दत्तों के संकलन हेतु अवलोकन अनुसूची का प्रयोग किया जाता है।

(3) मूल्यांकन अनुसूची -

इस प्रकार की अनुसूची का उपयोग किसी सामाजिक समस्या अथवा घटना के बारे में सूचनादाताओं की अभिवृत्तियों, अभिरुचियों आदि का पता लगाने के लिए होता है। सपष्टतः सामाजिक समस्याओं तथा घटनाओं के मूल्यांकन, गुण-निर्धारण अथवा उनकी तुलनात्मक क्षमता निर्धारण करने में मूल्यांकन, अनुसूचियों का प्रयोग किया जाता है। इस अनुसूची की विशेषता यह है कि इसमें प्रश्नों के साथ-साथ उत्तरों की विभिन्न सम्भावनाओं की श्रेणियां भी दी जाती है।

(4) प्रलेख अनुसूची -

अनुसूची के इस प्रकार के प्रयोग प्रलेखों, वैयक्तिक इतिहासों तथा अन्य सामग्रियों से प्राप्त दत्तों को अभिलेखित करने के लिए किया जाता है। यह ऐतिहासिक विकासात्मक अनुसंधान व सर्वेक्षण में अधिक उपयोगी होती है।

(5) सांस्थानिक सर्वेक्षण अनुसूची अथवा मूल्यांकन अनुसूची -

इस प्रकार की अनुसूची का प्रयोग किसी संस्था की समस्याओं अथवा अन्तर्निहित परिस्थितियों का अवलोकन करने के लिए किया।

प्रस्तुत अध्ययन में चूंकि उत्तरदात्रियां निरक्षर अथवा कम पढ़ी-लिखी थी अतः वांछित सूचना प्राप्ति हेतु साक्षात्कार अनुसूची प्रविधि का उपयोग किया गया है। साक्षात्कार अनुसूची में समस्या के सभी पक्षों से सम्बन्धित प्रश्नों का समावेश किया गया है। जिसके अन्तर्गत उत्तरदात्रियों के सम्बन्ध में सामान्य सूचनाओं परिवार के जीवन स्तर से सम्बन्धित सूचनाओं, उत्तरदात्रियों के सभी से सम्बन्धित सूचनाओं एवं अन्य पक्षों से सम्बन्धित सूचनाओं से सम्बन्धित प्रश्नों का समावेश किया गया है। सर्वप्रथम अनुसूची का प्रयोग 20 माताओं पर किया गया तत्पश्चात अनुसूची में आवश्यक सुधार कर सभी उत्तरदाता स्त्रियों पर प्रयुक्त कर वांछनीय सूचनाएं एकत्र की गई है।

प्रतिचयन या प्रतिदर्श -

जनसंख्या की समस्त इकाइयों का अध्ययन करना अधिक खर्चीली जटिल एवं कष्ट साध्य है इस कारण जनसंख्या की इकाइयों का चयन प्रतिदर्श के आधार पर किया जाता है जिस प्रकार के गोदाम मे रखे बोरों में भरे चावलों में से ही कुछ चावलो को देख कर बताया जाता है कि बोरों में भरे चावल अच्छी किस्म व खराब किस्म के है। उसी प्रकार से जनसंख्या की समस्त इकाइयों में से कुछ इकाईयों का अध्यन करके सम्पूर्ण इकाईयों का निष्कर्ष निकाला जाता है। अर्थात "प्रतिदर्श एक समष्टि का वह अंश होता है जिसमें अपनी समष्टि की समस्त विशेषताओं का स्पष्ट प्रतिबिम्ब रहता है।"

पी०वी० यंग के शब्दों में -

"एक प्रतिदर्श अपने समस्त का एक लघु चित्र होता है।"

मोहसिन के अनुसार -

"विशेष प्रकार की वस्तुओं के सम्पूर्ण के एक अंश को प्रतिदर्श कहते है।"

एटकिंशन, स्मिथ, बेम एवं हिलगार्ड के अनुसार-प्रतिदर्श का तात्पर्य प्राप्तांकों के सम्पूर्ण सेट जिसे जनसंख्या कहते है से लिये गये प्राप्तांकों के एक अंश से है।

इन दोनों परिषाभाओं में अति व्याप्ति का दोष है इन परिभाषाओं के अनुसार जनसंख्या का कोई भी एक अंश प्रतिदर्श हो सकता है जो वास्तविक अर्थ में सही नहीं है। चैपलिन ने इस दोष से बचते हुए प्रतिदर्श की परिभाषा दी है कि प्रतिदर्श वह चुना हुआ अंश है जो पूर्ण का प्रतिनिधि होता है।''

रेवर के अनुसार दी गयी परिभाषा- प्रतिदर्श किसी जनसंख्या का वह भाग है जिसका चयन कुछ इस तरह किया जाता है कि उसे जनसंख्या का सामूहिक रूप से प्रतिनिधिक समझा जा सके।''

प्रतिदर्श चयन की विधियाँ :-

प्रतिदर्श चयन की मुख्यतः दो विधियाँ होती हैं।

1. सम्भाव्यता
2. असम्भाव्यता

सम्भाव्यता प्रतिचयन के प्रकार

1- यादृच्छिक प्रतिचयन

2- स्तरित प्रतिचयन

3- गुच्छा प्रतिचयन

असम्भाव्यता प्रतिचयन के प्रकार

1- उद्देश्यानुसार प्रतिचयन

2- आकस्मिक प्रतिचयन

3- कोटा प्रतिचयन

यादृच्छिक प्रतिचयन :-

यादृच्छिक प्रतिदर्श वह प्रतिदर्श है जिसका निर्माण इस ढंग से किया जाता है कि जनसंख्या की प्रत्येक इकाई को प्रतिदर्श में शामिल होने की समाज सम्भावना रहती है।

चैपलिन ने यादृच्छिक प्रतिदर्श की परिभाषा देते हुये कहा है कि " यादृच्छिक प्रतिदर्श वह प्रतिदर्श है जिसका निर्माण व्यक्तियों, मूल्यों, प्राप्तॉको आदि की जनसंख्या में से इकाइयों को चुनकर इस प्रकार किया जाता कि प्रत्येक इकाई के चयन की सम्भावना समान रहती है और प्रतिदर्श सम्पूर्ण जनसंख्या का वैध प्रतिनिधि होता है।"

रेवर के अनुसार :-

यादृच्छिक प्रतिदर्श वह प्रतिदर्श है जिसका निर्माण इस ढंग से किया जाता है कि जनसंख्या के प्रत्येक सदस्य या वस्तु के प्रतिदर्श में शामिल होने की समान सम्भावना रहती है।

करलिंगर के अनुसार :-

" यादृच्छिक प्रतियचन वह विधि है जिसके द्वारा जनसंख्या या समष्टि की प्रत्येक इकाई के चयन किये जाने का समान संयोग रहता है।"

यादृच्छिक प्रतिचयन निम्नलिखित विधियों द्वारा किया जाता है।

1- लाटरी विधि

2- ड्रम चक्र विधि

3- टिपिट की संयोगिक संख्या

प्रस्तुत अध्ययन की प्रतिदर्श :-

प्रस्तुत अध्ययन बांदा जनपद में बड़ोखर विकास खंड में आयोजित किया गया है। अध्ययन क्षेत्र में 73 सभाओं में कुल 21789 परिवार निवास करते है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टिकोण से अध्ययन क्षेत्र के 10 प्रतिशत गांवों का दैव निदर्शन विधि से चयन

किया गया जिसके अन्तर्गत निम्न 7 गांवो का चयन हुआ -

(1) चहितारा	(2) पिपरी	(3) गुरेह
(4) अरबई	(5) पल्हरी	(6) भवानीपुरवा
(7) बडोखर खुर्द		

चयनित गॉवों के कुल परिवारों की संख्या में से उच्च, मध्यम एवं निम्न जाति के 10 प्रतिशत परिवारों का सुविधापूर्ण निदर्शन के माध्यम से चयन कर उनमें से प्रत्येक परिवार में पाई जाने वाली 15 से 45 आयु वर्ग की वे विवाहित महिलाएं जिनके बच्चे पैदा हो रहे है का अध्ययन 1997, 1998 व 1999 में होने वाले जीवित जन्मों के आधार पर शिशु मृत्यु का आंकलन किया गया है।

अध्याय-तृतीय
उत्तरदाताओं की पृष्ठभूमि

प्रस्तावित अध्ययन उत्तर प्रदेश के बाँदा जिले में स्थित बड़ोखर विकास खण्ड के अन्तर्गत, आने वाले 7 गॉवों में आयोजित किया गया है।

बाँदा जनपद का नाम वामदेव ऋषि के नाम पर पड़ा है। बाँदा जनपद से सम्बन्धित तथ्यों को निम्न सारिणी में प्रदर्शित किया गया है।

बाँदा जनपद : एक दृष्टि में

कुल क्षेत्रफल	4212 वर्ग किमी०	सिनेमा घर	07
जनसंख्या	800592	पशु चिकित्सालय	19
तहसीलें	04	पशुधन सेवा केन्द्र	21
विकास खण्ड	08	कुल आबाद गॉव	718
न्याय पंचायतें	72	विधान सभा	04
ग्राम पंचायतें	450	लोकसभा	01
ग्राम सभायें	540	औद्योगिक संस्था	03
नगरपालिका	02	पालीटेक्निक	01
पुलिस स्टेशन	18	राष्ट्रकृत बैंक शाखाएं	28
रेलवे स्टेशन	08	ग्रामीण बैंक	54
डाकघर	210	सहकारी बैंक शाखाएं	11
उ०मा० विद्यालय	54	भूमि विकास बैंक शाखाएं	03
महाविद्यालय	07	राष्ट्रीय चिकित्सालय	110

परिवार तथा शिशु कल्याण केन्द्र - 111

स्रोत- जिला सांख्यिकी कार्या०. बाँदा

बाँदा
(भौतिक मानचित्र)
जसपुरा
तिन्दवारी
बाँदा
बिसण्डा
अतर्रा
नरैनी
करतल
कालिंजर
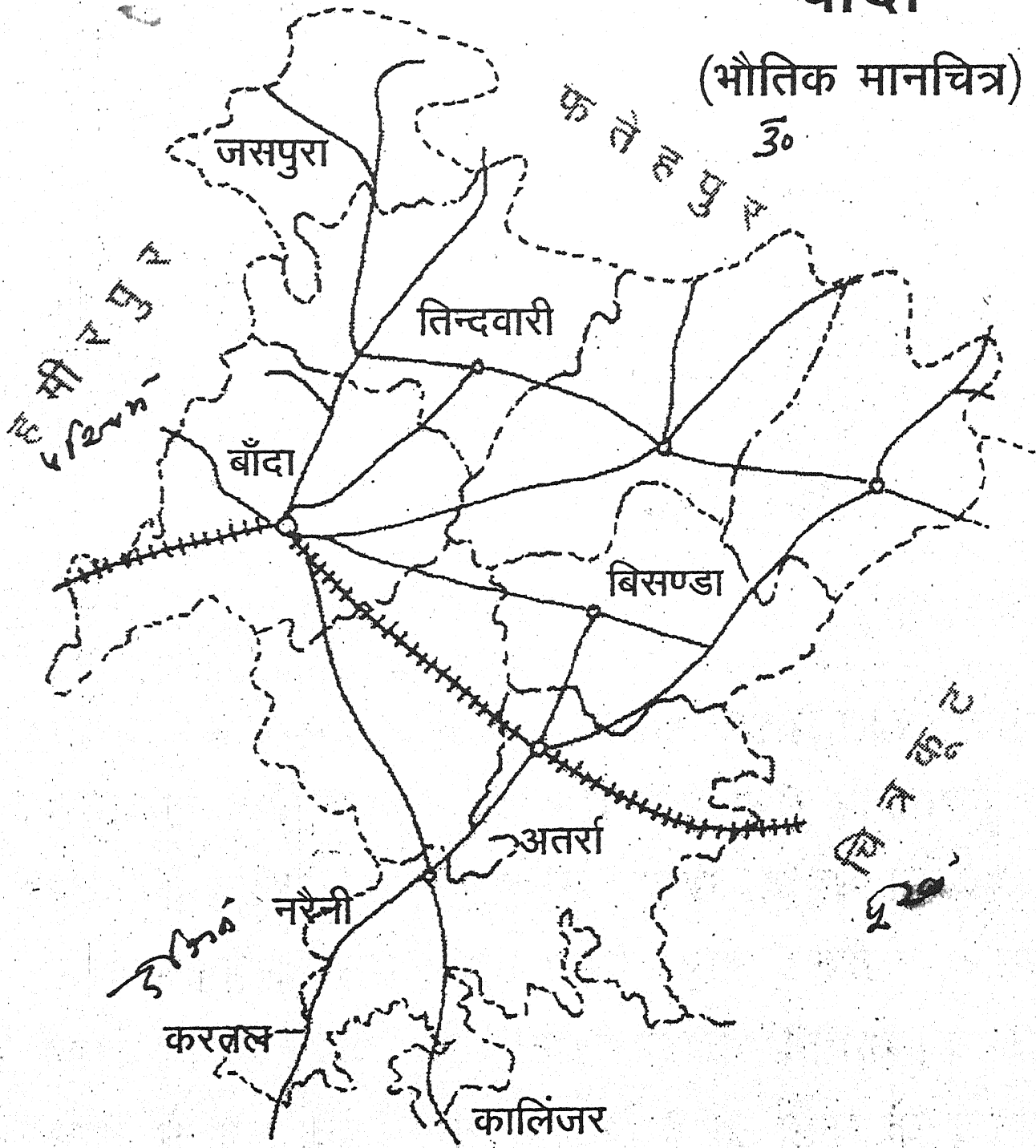
विकास खण्ड- बाँदा जनपद में निम्न 8 विकास खण्ड है -

(1) बड़ोखर खुर्द	(2) बिसण्डा
(3) तिन्दवारी	(4) नरैनी
(5) जसपुरा	(6) कमासिन
(7) बबेरू	(8) महुआ

बडोखर खुर्द विकास खण्ड :-

प्रस्तुत अध्ययन में बडोखर विकास खण्ड के 10% गॉव अर्थात 7 गॉवों का अध्ययन किया गया है। अतः आवश्यक है कि बडोखर विकास खण्ड की संक्षिप्त जानकारी प्रस्तुत की जाय।

बडोखर विकास खण्ड, बाँदा से 5 किमी0 की दूरी पर बाँदा-इलाहाबाद मार्ग पर स्थित है। साथ ही शहर से निकट होने के कारण आवागमन की अच्छी सुविधा है। 2001 की जनगणना के अनुसार बडोखर विकास खण्ड के कुल क्षेत्रफल 6.7 वर्ग किमी0 तथा जनसंख्या 132949 है। जिसमें से 74117 पुरुष एवं 58832 स्त्रियां है। यहां अनुसूचित जातियों की कुल जनसंख्या 30047 है। जिसमें 16439 पुरुष एवं 13608 स्त्रियां है। यहां की कुल साक्षारता प्रतिशत 47.3 है।

यहां लगभग सभी जातियों के लोग निवास करते है। यहां वर्तमान में प्राथमिक विद्यालयों की संख्या 93 तथा सीनियर प्राथमिक विद्यालयों की संख्या 22 है। जिसमें 5 बालिका विद्यालय हैं इसके अतिरिक्त 2 हायर सेकेण्डरी स्कूल हैं। ब्लाक मुख्यालय से 5 किमी0 दूरी पर विकास खण्ड में सस्ते गल्ले की 73 दुकानें है। विकास खण्ड के अन्तर्गत 6 एलोपैथिक चिकित्सालय, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र तथा 2 परिवार एवं मातृ शिशु कल्याण केन्द्र व 22 उपकेन्द्र है। इसके अतिरिक्त बैंक, डाकखाना एवं पुलिस केन्द्र भी है।
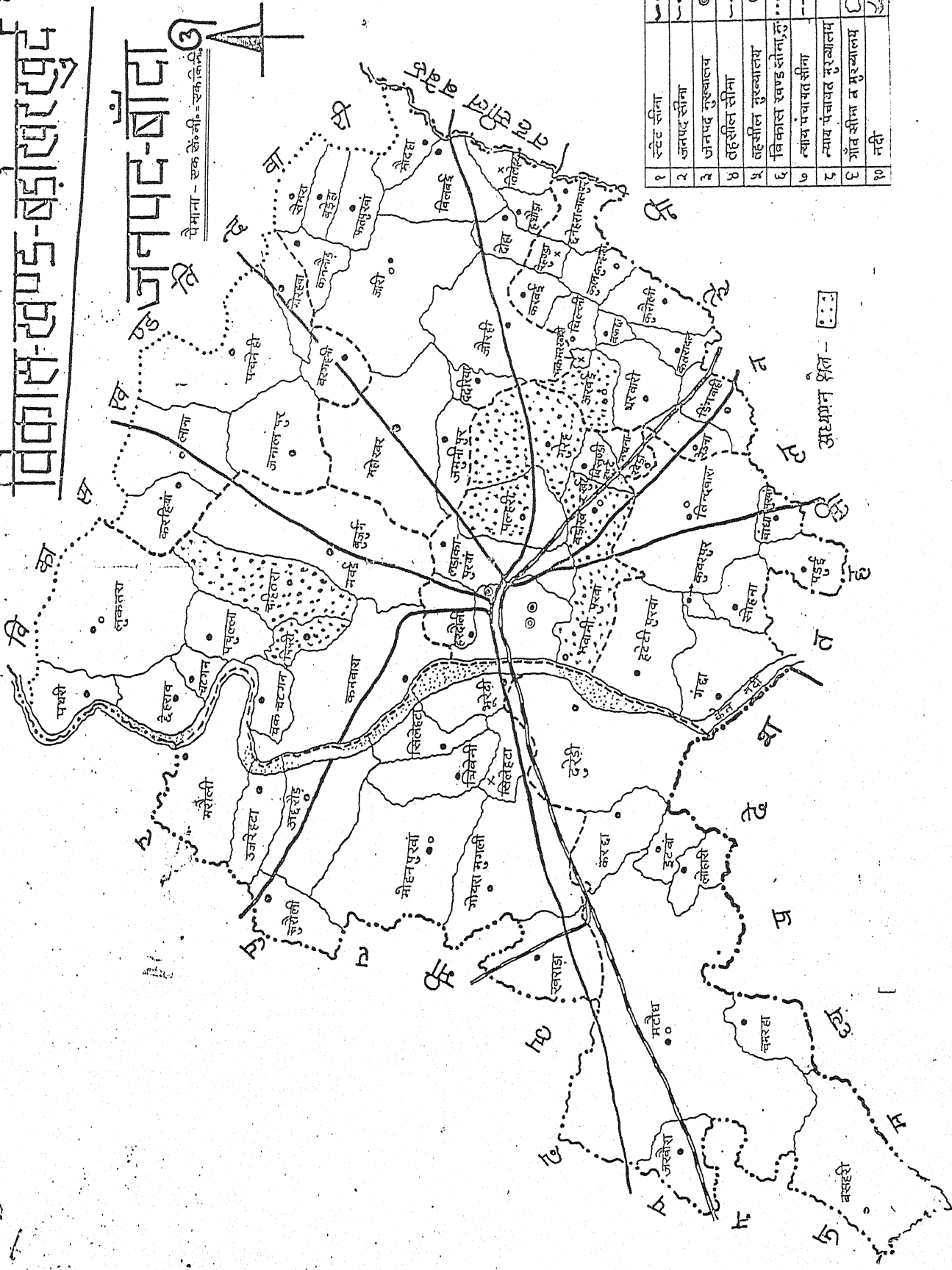
विकास-खण्ड-बड़ोखरखुर्द
जनपद-बाँदा
पैमाना - एक सें०मी० = एक किमी०
१ स्टेट सीमा
२ जनपद सीमा
३ जनपद मुख्यालय
४ तहसील सीमा
५ तहसील मुख्यालय
६ विकास खण्ड सीमा,मु०
७ न्याय पंचायत सीमा
८ न्याय पंचायत मुख्यालय
९ गाँव सीमा व मुख्यालय
१० नदी
अध्ययन क्षेत्र -
पथरी
लुकतरा
करहियां
लाना
पचनेही
जनाल पुर
महोखर
जरी
बरगहनी
बड़ेहा
फतपुरवां
मौदहा
बिलबई
दुरेड़ी
मरौली
उजरेहटा
कनवारा
मोहनपुरवां
गोयरा मुगली
खुरौली
सिलेहटा
त्रिवेनी
भूरेंदी
हरदौली
जमुनी पुर
ददरिया
जौरही
पल्हरी
भवानी पुरवा
हटेटी पुरवां
कुवरपुर
तिन्दवारा
डिंगवाही
भरवारी
करौली
चिल्ला
पड़ुई
सोहना
गंछा
करछा
इटवां
लोहारी
मटौध
खराड़ा
जरवौरा
चमरहा
बसहरी

अध्ययन की सुविधा की दृष्टिकोण से बडोखर विकास खण्ड की 73 ग्राम सभाओं के 10 प्रतिशत ग्राम अर्थात 7 ग्रामों का चयन सुविधापूर्ण निदर्शन के माध्यम से किया गया है। प्रस्तुत है। उक्त ग्रामों का संक्षिप्त विवरण-

(ए0डी0ओ0 कार्यालय से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर)
वर्ष-2001 की जनगणना के आधार पर

1. चहितारा-

भौगोलिक क्षेत्रफल (हे0)		-	1217.414
मजरे की संख्या			02
कुल जनसंख्या		-	2785
	पुरुष	-	1543
	महिला	-	1242
अनुसूचित जाति		-	399
	पुरुष	-	239
	स्त्री	-	160
साक्षर व्यक्ति		-	1187
	पुरुष	-	900
	स्त्री	-	287
साक्षरता प्रतिशत		-	42.65
	पुरुष	-	58.32
	स्त्री	-	23.14
कृषक		-	629
कृषि श्रमिक		-	175
पारिवारिक उद्योग		-	10
अन्य कर्मकार		-	160

2- पिपरी -

भौगोलिक क्षेत्रफल (हे0)	-	308.610
मजरे की संख्या		00
कुल जनसंख्या	-	1035
पुरुष	-	579
महिला	-	456
अनुसूचित जाति	-	66
पुरुष	-	446
स्त्री	-	322
साक्षर व्यक्ति	-	124
पुरुष	-	43.09
स्त्री	-	55.61
साक्षरता प्रतिशत	-	43.09
पुरुष	-	55.61
स्त्री	-	27.19
कृषक	-	184
कृषि श्रमिक	-	148
कुल जोतों की संख्या	-	327.228
जूनियर बेसिक स्कूल	-	01

3. अरबई

भौगोत्रिक क्षेत्रफल	-	422.37 (हे0)
मजरों की संख्या-		00

कुल जनसंख्या		-	1558
	पुरुष	-	395
	महिला	-	161
साक्षर व्यक्ति		-	606
	पुरुष	-	395
	महिला	-	161
साक्षरता प्रतिशत		-	38.89
	पुरुष	-	47.99
	महिला	-	21.93
कृषक		-	168
कृषि श्रमिक		-	209
पारिवारिक उद्योग		-	03
जोतों की संख्या		-	306
जूनियर बेसिक स्कूल		-	02
सीनियर बेसिक स्कूल		-	01

4. पल्हरी

भौगोत्रिक क्षेत्रफल		-	620.19 (हे0)
	मजरों की संख्या	-	06
कुल जनसंख्या		-	2211
	पुरुष	-	1197
	महिला	-	1014
साक्षर व्यक्ति		-	466
	पुरुष	-	236
	महिला	-	230

साक्षरता व्यक्ति		-	773
	पुरुष	-	569
	महिला	-	204
कृषक		-	361
कृषि श्रमिक		-	61
कुल जोतों की संख्या		-	302
जूनियर बेसिक स्कूल		-	02

5. गुरेह -

भौगोलिक क्षेत्रफल		-	1701.68 (हे0)
मजरों की संख्या		-	07
कुल जनसंख्या		-	4802
	पुरुष	-	2262
	स्त्री	-	2540
अनुसूचित जाति		-	1918
	पुरुष	-	1118
	स्त्री	-	800
साक्षर व्यक्ति		-	2216
	पुरुष	-	1220
	स्त्री	-	996
कृषकं		-	848
कृषि श्रमिक		-	339
पारिवारिक उद्योग		-	37
कुल जोतों की संख्या		-	795

जूनियर बेसिक स्कूल	-	03
सीनियर बेसिक स्कूल	-	02

6. बडोखर खुर्द-

भौगोत्रिक क्षेत्रफल	-	512.264 (हे0)
मजरों की संख्या	-	03
कुल जनसंख्या	-	2601
पुरुष	-	1316
महिला	-	1285
साक्षर व्यक्ति	-	1360
पुरुष	-	879
महिला	-	481
साक्षरता प्रतिशत	-	52
कृषक	-	524
कृषि श्रमिक	-	165
पारिवारिक उद्योग	-	09
जोतों की संख्या	-	175
जूनियर बेसिक स्कूल	-	01
सीनियर बेसिक स्कूल	-	01

7. भवानीपुरवा

भौगोत्रिक क्षेत्रफल	-	471 (हे0)
मजरों की संख्या	-	03
कुल जनसंख्या	-	1400
पुरुष	-	786
महिला	-	614

अनुसूचित जाति		-	305
	पुरुष	-	303
	स्त्री	-	202
साक्षर व्यक्ति		-	767
	पुरुष	-	503
	स्त्री	-	264
साक्षरता प्रतिशत		-	54
कृषक		-	147
कृषि श्रमिक		-	17
पारिवारिक उद्योग		-	14
जूनियर बेसिक स्कूल		-	01

सामाजिक पृष्ठभूमि

सामाजिक पृष्ठभूमि -

बुन्देलखण्ड के अन्य क्षेत्रों की तरह बाँदा जनपद की सामाजिक संरचना है। इसमें जाति व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान है। यहां प्रमुख रूप से दो समुदाय हिन्दू तथा मुसलमान है। दोनों समुदायों में जाति व्यवस्था का आधार अलग-अलग ढंग से है

हिन्दू जाति व्यवस्था

हिन्दू जाति व्यवस्था का आधार वर्ण व्यवस्था ही है। वर्ण एवं जाति में अन्तर है। वर्ण रंग एवं वृत्तिपरक सामाजिक स्थिति का बोध कराता है, जाति व्यक्ति के जन्म के आधार पर उसकी सामाजिक स्थिति का परिचय कराती है।

ऋग्वेद के दशम् मण्डल के अन्तर्गत ही रूपक का आश्रय लेकर इन आर्य इकाइयों तथा अनार्य समुदायों को चार प्रमुख इकाइयों में विभिक्ति एवं चित्रित किया गया है।[1] यह इकाइयां वर्णो के नाम से जानी जाती हैं तथा ये वर्ण थे- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र। ब्रम्हा के मुख से ब्राह्मणों की उत्पत्ति, बाहुओं से क्षत्रिय का प्रादुर्भाव, कटि प्रदेश अथवा जंघाओं से वैश्य की उत्पत्ति तथा पैरों से शूद्रों का जन्म हुआ ऐसा माना गया है। सम्पूर्ण समाज का यह व्यक्ति परक रूपक इस और संकेत करता है कि व्यवसायों की श्रेष्ठता के आधार पर इन चारों वर्णो को समाज रूपी शरीर के अवययों के रूप में स्वीकारा गया हैं धर्मशास्त्रों की यह मान्यता है कि वर्णो के सम्मिश्रण के फलस्वरूप अनेक व्यवसायिक सामाजिक इकाइयों का जन्म हुआ। इस सम्मिश्रण के मूल में अनुलोम-प्रतिलोम तथा वर्ण-संकरता के कारकों को ही प्रमुख गिना गया।

आदिकालीन वर्ण व्यवस्था हमें मुक्त सामाजिक वर्गो अथवा स्थितियों का परिचय कराती

---

1. मैकडोनल एवं कीथ : (1935) वैदिक इण्डेक्स, वाल्यूम 1, लन्दन, अध्याय XXIII, पृष्ठ 202।

है। यही मुक्त वर्ग कालान्तर में बन्द वर्ग अथवा जाति के रूप में उदित हुये। परवर्ती युगों में वर्णो के अन्तमिश्रण में न केवल नये सामाजिक समूहों को जन्म दिया, वरन् नये व्यवसायों का भी प्रादुर्भाव हुआ। सामाजिक स्थिति का निर्धारण व्यक्ति के जन्म तथा समूह के परम्परागत व्यवसाय के साथ अभिन्न रूप से जुड़ गया। प्रत्येक जाति जहां जन्म तथा व्यवसाय के आधार पर व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का निर्धारण करने लगी, वहीं अन्तर्विवाह, खान-पान विषयक प्रतिबन्ध एवं सामाजिक तथा धार्मिक विशेषाधिकारों एवं नियोक्ताओं ने भी इन जातियों के सामाजिक दृढ़ीकरण में अपना योगदान दिया। समाज का खण्डात्मक विभाजन एवं संस्तरीकरण इन उभय प्रक्रियाओं ने जाति व्यवस्था को एक बन्द वर्ग वाली सामाजिक व्यवस्था के रूप में विकसित कर दिया है।[1]

बड़ोखर विकास खण्ड की जाति व्यवस्था -

(क) हिन्दू जाति व्यवस्था :-

वर्ण व्यवस्था तथा जाति व्यवस्थाके इन अखिल भारतीय आधारभूत तथा संरचनात्मक सिद्धान्तों पर ही बडोखर विकास खण्ड की समाज व्यवस्था अवस्थित है। प्रत्येक वर्ण का प्रतिनिधित्व करने वाली अनेक जातियां, उपजातियां अथवा जाति समूह यहां के निवासियों में पाये जाते हैं। इनमें से कुछ यहां के मूल निवासी हैं, तथा कुछ अन्य क्षेत्रों से आकर सुदूर भूतकाल में यहां बसे होंगे। चारों प्रमुख वर्ण के अन्तर्गत सम्मिलित की जाने वाली इन जातियों में कुछ के नाम नीचे दिये गये हैं। हिन्दू सम्प्रदाय की सभी जातियां हमारे उत्तरदाताओं में सम्मिलित है।

वर्ण	जातियां, उपजातियां
ब्राह्मण	भार्गव, सरयूपारी, कान्यबुब्ज, जुझौतिया, सनाढ्य इत्यादि।
क्षत्रिय	ठाकुर, लोधी, ढॉगी, बुन्देला, परिहार, चन्देल, पटेल इत्यादि

1. शास्त्रा, राम, (1940) इवोल्यूशन आफ कास्ट, लन्दन, पृष्ठ 13-14।

धुरिये, जी०एस० (1957), कास्ट एण्ड क्लास इन इण्डिया, पापुलर प्रकाशन, बम्बई पेज-93

वैश्य	नेमा, अग्रवाल, गहोई इत्यादि।
शूद्र (स्पृश्य)	नाई, धोबी, कुम्हार, ढीमर, अहीर इत्यादि।
(अस्पृश्य)	भागी, खंगार, बसोर, चमार, चढ़ार इत्यादि।

इस वैदिक सामाजिक व्यवस्था के आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय को उच्च जाति, वैश्य को मध्यम जाति एवं शूद्र को निम्न जाति की कोटि में रखा गया है। उच्च, मध्यम एवं निम्न जातियों में आर्थिक आधार पर कुछ के स्तर ऊँचे पाये गये, कुछ मध्यम किस्म के थे तो कुछ निम्न कोटि के श्रेणी में आ रहे थे। इस आधार पर प्रत्येक जाति में आर्थिक स्तर को लेते हुए जब विभाजन किया गया तो पॉच वर्ग पाये गये।

1. उच्च स्तर
2. उच्च मध्य
3. मध्य
4. निम्न एवं
5. अति निम्न

(ख) मुस्लिम जाति व्यवस्था :-

भारतीय मुस्लिम समाज में जातिगत संस्तरण की विशेषताओं का अध्ययन एक नवीन घटना है। यद्यपि ब्रिटिशकाल में हिन्दू जातियों या मुस्लिम समाज के अध्ययनों एवं जनगणना रिर्पोटों में मुस्लिम जनसंख्या के जातिगत विभाजन का कुछ प्रारम्भिक विवरण प्राप्त है।[3]

तथापि इन अध्ययनों में सामाजिक प्रस्थिति विभाजन का यह स्वरूप प्रारम्भिक मुसलमान शासकों एवं अभिजात्य वर्ग, की उस मनोवृत्ति का प्रतीत था कि वे अपने को भारतीय मूल के मुस्लिम अन्य सम्प्रदायों की तुलना में श्रेष्ठ और पृथक मानते थे। कालान्तर

---

3. कुक डब्लू 1986 एण्ड कास्टस आफ नार्थ, वेस्टर्न प्राविन्सेज आफ आगरा एण्ड अवध लन्दन। इस्लाम इन इण्डिया 1921 आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी बलण्ट, इ०ए०आर० 1931 दि कास्ट सिस्टम आफ नार्दन इण्डिया, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, बेबन-जोन्स, बी०आर० इत्यादि।
1914, वीमेन इन इस्लाम, लखनऊ पब्लिसिंग हाउस।
बे०स०ए० 1912 इथनोग्राफी आफ इण्डिया स्टावर्ग चर्लाग, कार्लट्रन्नर।
अशंरफ, के०एम० 1932 लाइफ एण्ड कंडीशन आफ दि पीपुल्स आफ हिन्दुस्तान, लंदन-107।

में यह विभाजन अन्तः विवाह की अधिकता एवं धर्म परिवर्तन की प्रक्रिया के विस्तार के साथ-साथ अधिक जटिल एवं विस्तृत होता गया। इस प्रकार मुस्लिम समाज अनेक जातियों, समूहों में बंटता चला गया। व्यवसायों की बढ़ती हुयी विभिन्नता और राजनीतिक सत्ता के वितरण की प्रक्रिया ने भी इसको बढ़ावा दिया। इस आधार पर इन उत्तरदाताओं की जातियों/उपजातियों को सामाजिक स्तर के आधार पर रखा गया है। जिनके नाम निम्नवत् है :-

इस्लाम के आधार पर	मुस्लिम जातियां/उपजातियां
अशरफ	सैय्यद, शेख, पठान।
अजलफ	आतिशवाज, भॉड, भटियारा, डफाली, घोसी, जुलाहा, कस्साद।
प्रथम वर्ग	
द्वितीय वर्ग	जुड़िहारा, दर्जी, धुनिया, कुँजड़ा, रंगरेज
स्पृश्य	
तृतीय वर्ग	धोबी, मिरासी, मेहतर, हलालखोर, बंजारा
अस्पृश्य	

इस इस्लाम धर्म की सामाजिक व्यवस्था के आधार पर अशरफ को उच्च जाति में रखा गया है, अजलफ के प्रथम वर्ग को मध्य जाति में एक अजलफ के द्वितीय एवं तृतीय वर्ग को निम्न वर्ग में रखा गया है।

बडोखर विकास खण्ड की अर्थ व्यवस्था :-

बडोखर विकास खण्ड की अर्थ-व्यवस्था में कृषि का प्रमुख स्थान है। यहां के अधिकतर लोग कृषि व्यवसाय से सम्बन्धित है। यहां की धरती अत्यन्त उपजाऊ एवं तीनों फसलें पैदा करने के लिए उपयुक्त है। इसके अतिरिक्त यहां विभिन्न प्रकार के व्यापार एवं गृह उद्योगों को भी अपना महत्वपूर्ण स्थान है। पुरुष अपने अवकाश के समय में गृह उद्योगों में स्त्रियों को सहयोग प्रदान करते हैं। इनके प्रमुख गृह एवं लघु उद्योगीय कार्य हैं- चक्की

चलाना, घास काटना, जंगल से जलाऊ लकड़ी लाना, जंगली फल लाकर शहरों में या अपने नगर के बाजार में बेंचना।

यहां पुरुषों का प्रमुख गृह उद्योगीय कार्य सूत कार्य कातना, उसकी रस्सियां बनाकर बाजार में बेंचना है जो उनके जीविकोपार्जन में सहायक हैं। कृषि कार्य में भी ये रस्सियां विविध रूपों में उपयोगी होती हैं। खाट बुनना भी एक कला है, महुवा बीनना, घास काटना, लकड़ी काटना, गाय, भैंस, बकरी पालना एवं मुर्गी पालन, मिट्टी के बर्तन बनाकर बाजार में बेंचना पुरुषों के लघु उद्योगीय कार्य हैं। प्लास्टिक के जूते चप्पल बनाना भी यहां का प्रमुख उद्योग है।

बडोखर विकास खण्ड की सांस्कृतिक संरचना :-

यहां के परिवारों में माता-पिता को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। माता-पिता को सर्वोच्च मानकर उनकी सेवा करना कर्तव्य समझा जाता है। बिना पुत्र को जन्म दिये पितृ-ऋण से कोई भी मुक्त नहीं हो सकता है, ऐसा लोगों का विश्वास है। पुत्र का महत्व इस लोकोक्ति से स्पष्ट हे- ''कुल को दीपक पुत्र है, धड़ को दीपक प्रान''। पुत्र का महत्व केवल यहां के परिवारों में ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड एवं भारत मे स्वीकार गया है। पुत्र ही परिवार का भावी कर्ता-धर्ता है। परिवार में परम्परा एवं मर्यादा के अन्दर रहकर चलना पड़ता है। बुन्देली भाषा में ''कुल में दाग लगाने वाले पुत्र को 'कपूत' व कुल की मर्यादा रखने वाले पुत्र को 'नाम कमाऊ' कहा जाता है।''

बड़े भाई को परिवार में पिता तुल्य स्थान प्राप्त है। पिता की मृत्यु के बाद ही वह घर की देख-रेख करता है। बड़े पुत्र की पित्रवत् प्रतिष्ठा के कारण ही ''बड़ी बहू के बड़े भाग'' कहा जाता है। यह जनश्रुति है कि भाई जैसा मित्र व भाई जैसा शत्रु संसार में नहीं होता। ''बिन घरनी घर भूत का डेरा'' लोकोक्ति से स्पष्ट है कि नारी का महत्व फैला हुआ है। बुन्देली समाज में भी पत्नी के रूप में उसका महत्व अधिक है जो कि रीति-रिवाज के अनुसार स्पष्ट प्रकट होता है।

विकास खण्ड में स्त्री का कार्य क्षेत्र घर तो है ही, साथ ही पुरुषों के साथ भी वह कार्य करती हैं। यहां की स्त्री के लिए केवल दो कार्य वर्जित हैं- हल जोतना व छप्पर छाना। कृषि प्रधान इस क्षेत्र में बाकी सभी कार्यों में वह पुरुषों की सहायता करती है। वह पति के लिए केवल भोग्या मात्र नहीं वरन् एक अच्छे मित्र के रूप में भी सामने आती है। मॉ के रूप में ही उसका पूर्ण विकास माना जाता है, सास-ससुर की सेवा उससे अपेक्षित है। विधवा होना नारी जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है। बुन्देली समाज में उसे विरक्त जीवन व्यतीत करना पड़ता है। कुछ उच्च्य जातियों में तो उसका पुनर्विवाह अकल्पनीय है।

जब पुत्र जन्म होता है तब थाली बजाकर शोर किया जाता है, जिसका आशय है कि हर्षोल्लास की अभिव्यक्ति। किन्तु जब पुत्री पैदा होती है तब एक निराशा सी छा जाती है। उच्च्य वर्ग में कन्या को 'हुण्डी' समझा जाता है जो कि पिता को 10 से 24 वर्ष के मध्य भुगतान करनी पड़ती है। कन्या का पिता जीवन पर्यन्त उसके भार से मुक्त नहीं हो पाता। प्रायः कहा जाता है कि कन्या की मृत्यु यद्यपि तत्काल दुःखकारी होती है किन्तु भविश्य में वह सुख को जन्म देती है। विवाह के बाद कन्या किसी का उतार तो किसी का श्रृंगार बन जाती है। अतः पत्नी के रूप में उसके महत्व को वर्णित नहीं किया जा सकता।

यहां स्त्रियों की वेष-भूषा भिन्न-भिन्न देखने को मिलती है। स्त्रियां आधी बॉह का झुलौंवा तथा पूरी बॉह का सलूका पहनती है। कुछ स्त्रियां लहंगा व ओढ़नी पहनती हैं। मुसलमान स्त्रियां ज्यादातर सलवार कुर्ता पहनती पहनती हैं। शरीर पर आभूषण के रूप में पैजना, बिछिया, हाथों में पछिलवा तथा हरैयापहनती हैं। पैरों में महावर लगाती हैं।

ज्यादातर पुरुष धोती-कुर्ता, सर पर साफ तथा पाग, अंगरखा, दुपट्टा, सराई और पादुका पहनते हैं। किन्तु यह वस्त्र मात्र विवाह आदि के अवसरों पर ही प्रयोग में लाया जाता है। पढ़े-लिखे लोग पैन्ट-शर्ट, कुर्ता-पायजामा आदि भी पहनते हैं।

धार्मिक स्थानों में यहां पर भगवान राम, शिव एवं कृष्ण के मन्दिर हैं। सावन के महीनें में कजलियों का जुलूस, कंस मेला प्रसिद्ध है।

बुन्देली लोकगीतों में यहां के खान-पान का उल्लेख मिलता है। इन लोक गीतों के

अनुसार यहां तीन समय के भोजन का उल्लेख है। प्रातः कालीन कलेऊ, दोपहर का भोजन और रात्रि की ब्यारी। तरह-तरह के व्यंजन प्रायः विशेष अवसरों पर बनाये जाते हैं। दूध, घी, दही आदि का प्रयोग अधिक किया जाता है।

यहां का लोक संगीत ज्यादातर बुन्देली बोली में गाया जाता है। साथ ही, कुछ अवधी तथा कुछ ब्रजभाषा का मिश्रण लिए हुये संगीत भी प्रचलन में है। यहां की बोली मुख्यतः बुन्देली हैं, परन्तु कुछ लोग खड़ी बोली भी बोलते हैं।

प्रस्तावित अध्ययन क्षेत्र में 73 ग्राम सभाओं में कुल 21789 परिवार निवास करते है। अध्ययन की सुविधा के दृष्टिकोण से अध्ययन क्षेत्र के 10 प्रतिशत गांवो का चयन किया गया। जिसके अन्तर्गत बड़ोखर विकास खण्ड के 7 गांवो क्रमशः चहितारा, पल्हरी, गुरेह, बड़ोखर अरबई भवानीपुरवा, पिपरी का चयन सुविधानुसार किया गया। चयनित गांवो के कुल परिवारों की संख्या में से उच्च मध्यम एवं निम्न जाति के 10 प्रतिशत परिवारों का चयन करके उनमें से प्रत्येक परिवार में पायी जाने वाली 15 से 45 आयु वर्ग की विवाहित महिलाओं, जिनके कि बच्चे पैदा हो रहे है, का अध्ययन 1997, 1998 व 1999 में होने वाले जीवित जन्मों के आधार पर किया गया।

इस प्रकार अध्ययन के लिए कुल 740 उत्तरदात्रियों का चयन किया गया। उत्तरदात्रियों से संबंधित विवरण को विभिन्न परिवृत्यों के क्रम में प्रस्तुत किया जा रहा है-

धर्म-

धर्म	संख्या	प्रतिशत
हिन्दू	504	68
इस्लाम	236	32
योग	740	100

अध्ययन क्षेत्र में हिन्दू धर्म को मानने वालो की बहुलता है फिर भी इस्लाम धर्म अर्थात मुस्लिम जाति भी कुछ प्रतिशत पाई जाती है उत्तरदातियों में 68 प्रतिशत हिन्दू धर्म से संबंधित है जबकि शेष इस्लाम धर्म से। इस्लाम धर्म या मुस्लिम जाति में जीवित बच्चों की संख्या आनुपतिक क्रम में हिन्दू जाति से अधिक है क्योंकि मुस्लिम जाति में परिवार नियोजन को नहीं अपनाया जाता है।

उत्तरदात्रियों के धर्म के आधार पर शिशु मृत्यु दर

धर्म
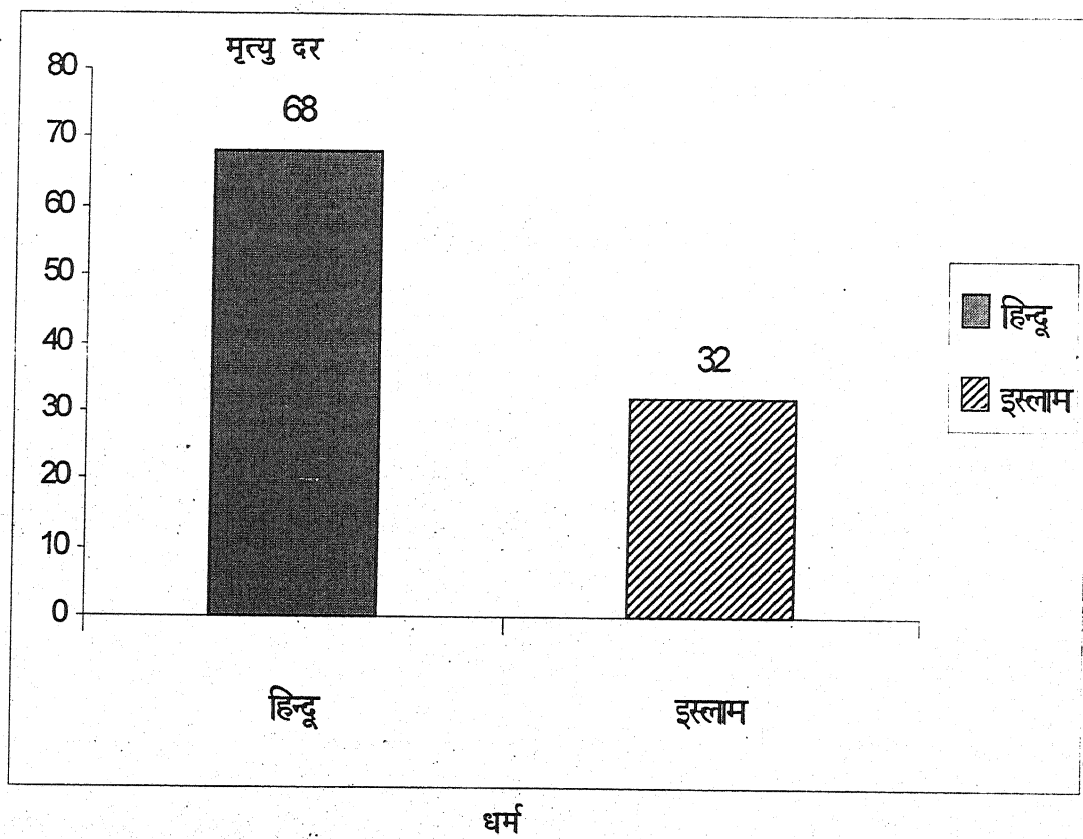
(2) आयु

आयु वर्ग	संख्या	प्रतिशत
15-20	121	1635
21-30	375	50.6
31-40	201	27.16
41-45	43	5.8
योग	740	100

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि सर्वाधिक उत्तरदतियां 21-30 आयु वर्ग की है इसका कारण इस आयु वर्ग की उच्च्व प्रजनन क्षमता का होता हो सकता है 31-40 है इस आयु की उत्तरदातियों का प्रतिशत भी काफी अर्थात 27.16 है इस आयु वर्ग में भी महिलाओं की प्रजनन क्षमता अधिक होती है जबकि 15-20 आयु वर्ग तथा 41-45 आयु वर्ग की उत्तरदातियों का प्रतिशत काफी कम है। जो कि क्रमशः 16.35 तथा 5•8 इसका कारण कम उम्र में आने वाले बच्चो की अधिकांशतया मृत्यु हो जाती है तथा 40 वर्ष के ऊपर प्रजनन क्षमता घटने लगती है।

उत्तरदात्रियों की आयु के आधार पर शिशु मृत्यु दर
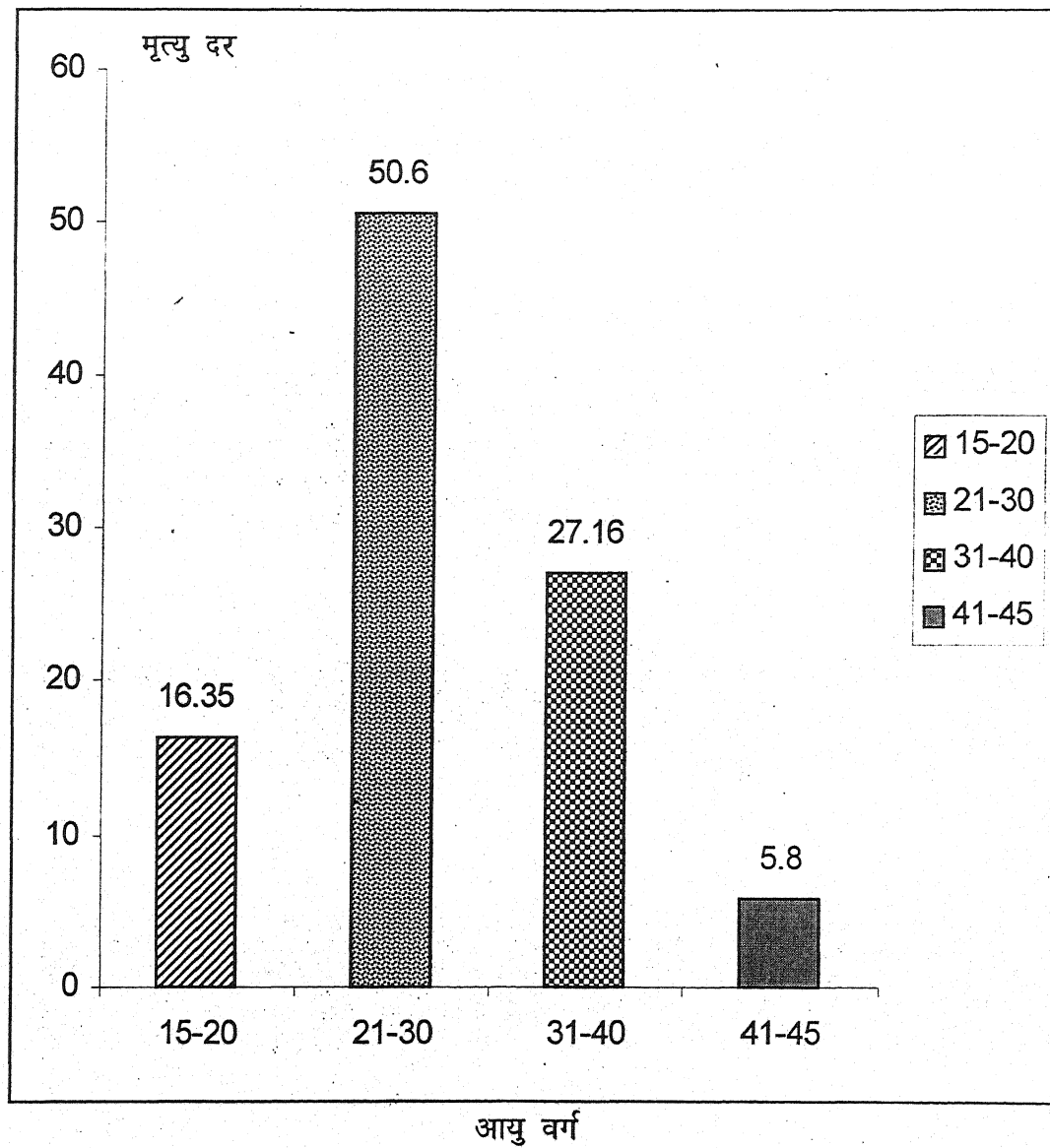
शिक्षा -

शिक्षा	संख्या	प्रतिशत
निरक्षर	294	39.72
हाईस्कूल तक	264	35.67
इण्टर तक	103	13.91
ग्रेजुएट या अन्य	79	10.07
योग	740	100

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में शिक्षा का प्रसार अत्यन्त कम है खासतौर पर महिला साक्षरता की दर अत्यन्त कम है कमोवश यही स्थित बांदा जनपद की भी है अध्ययन क्षेत्र में भी महिलाओं की साक्षरता अत्यंत निम्न है यही कारण है कि लगभग एक तिहाई महिलाएं निरक्षर है जिनका प्रतिशत 39.62 है जबकि हाईस्कूल तक पढ़ी महिलाओं का प्रतिशत भी 35.62 है अर्थात महिलाए शिक्षित भी है तो हाईस्कूल स्तर तक ही पढी है इण्टर तक पढ़ी महिलाओं का प्रतिशत 13.91 जबकि ग्रेजुएट या स्तर तक शिक्षित उत्तरदातियों का प्रतिशत 10.07 है यो कि अत्यंत कम है।

उत्तरदात्रियों की शिक्षा के आधार पर शिशु मृत्यु दर

शिक्षा
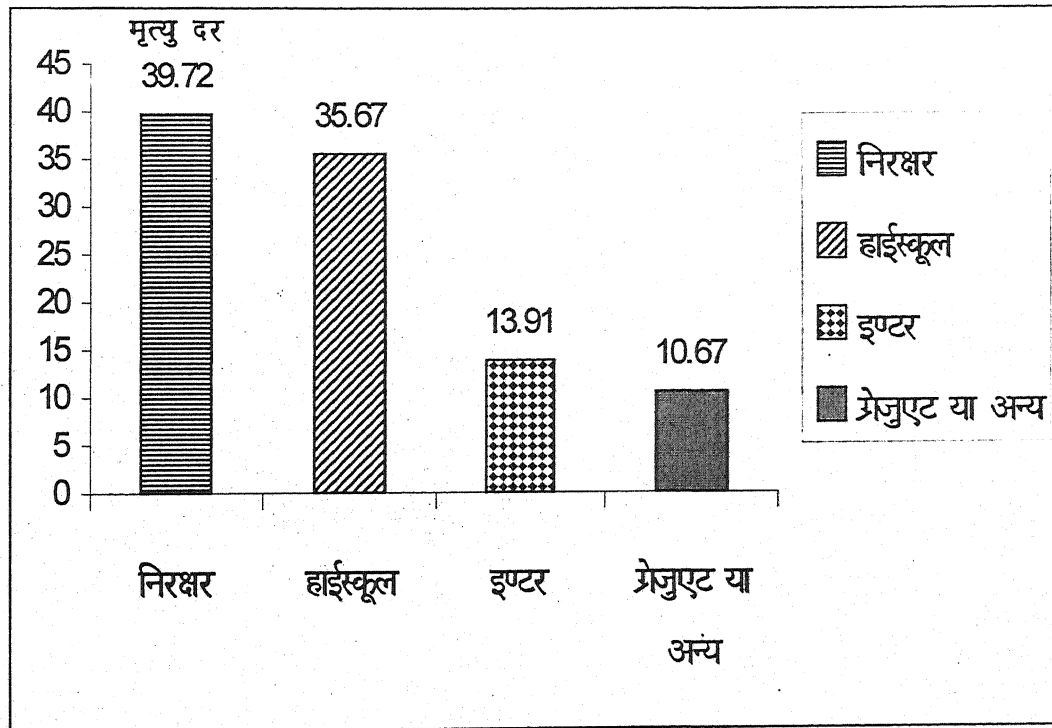
4. परिवार का स्वरुप

स्वरुप	संख्या	प्रतिशत
संयुक्त	525	70.94
एकाकी	215	29.06
योग	740	100

बुन्देलखण्ड क्षेत्र खासकार बांदा जनपद में संयुक्त परिवार प्रणाली प्रचलित है यहां प्रथायें जो गहरे तक जड़ जमायें है अभी भी आधुनिक प्रवृत्तियों को बावजूद यहां अधिकांश लोग संयुक्त परिवार प्रणाली में जीवनयापन कर रहे है। स्वार्थवादिता, नगरीकरण आदि के कारण हालंकि परिवार टूट रहे है परन्तु जनपद के घरों मे अभी भी संयुक्त परिवार प्रणाली प्रचलित है यही कारण है कि 70.94 प्रतिशत उत्तरदातियां संयुक्त परिवार प्रणाली में रह रही है जो कि अत्यंत कम अर्थात 29.8 प्रतिशत उत्तरदातियां एकाकी परिवारों से संबंधित है।

उत्तरदात्रियों के परिवार के स्वरूप के आधार पर शिशु मृत्यु दर
मृत्यु दर
80
70
60
50
40
30
20
10
0
70.94
29.06
संयुक्त
एकल
संयुक्त
एकल
परिवार का स्वरूप
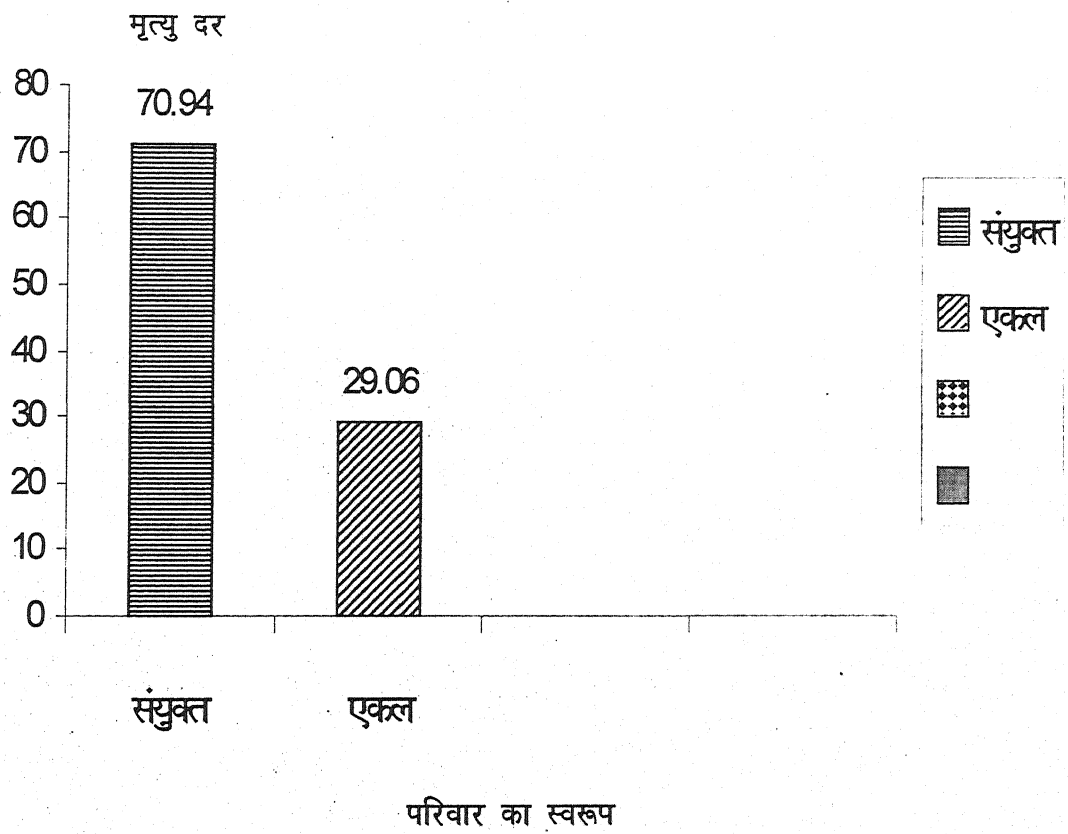
5. विवाह की आयु

आयु	संख्या	प्रतिशत
15-20	268	36.21
21-30	337	50.94
31-40	95	12.8

बांदा जनपद के पूर्व में कम उम्र की लड़कियों की शादी करने का प्रचलन रहा है। आधुनिकीकारण नगरीकरण के कारण यह प्रवृत्ति बदली है इस कारण अब लड़कियों की शादी वयस्क होने के बाद होने लगी है अन्यथा पूर्व में अधिकांश लड़कियों की शादी नाबालिग उम्र में ही कर दी जाती थी। फिर भी कही-कहीं आज भी नाबालिग उम्र में ही कर दी जाती है। यही कारण है कि 36.21 प्रतिशत उत्तरदात्रियां ऐसी है जिनकी शादी 15-20 वर्ष की उम्र के बीच में हो गई जब कि 21-30 वर्ष के भीतर शादी होने वाली उत्तरदातियों का प्रतिशत सर्वाधिक 5094 है इसका कारण आधुनिक प्रवृत्ति और शिक्षा का बिस्तार हो सकता है जबकि 31-40 वर्ष के भीतर विवाहित उत्तरदातियां का प्रतिशत अल्प अर्थात 12.8 है इसका कारण यहां अधिक उम्र में शादी न करने का प्रयत्न हो सकता है।

उत्तरदात्रियों के विवाह की आयु के आधार पर शिशु मृत्यु दर

विवाह की आयु
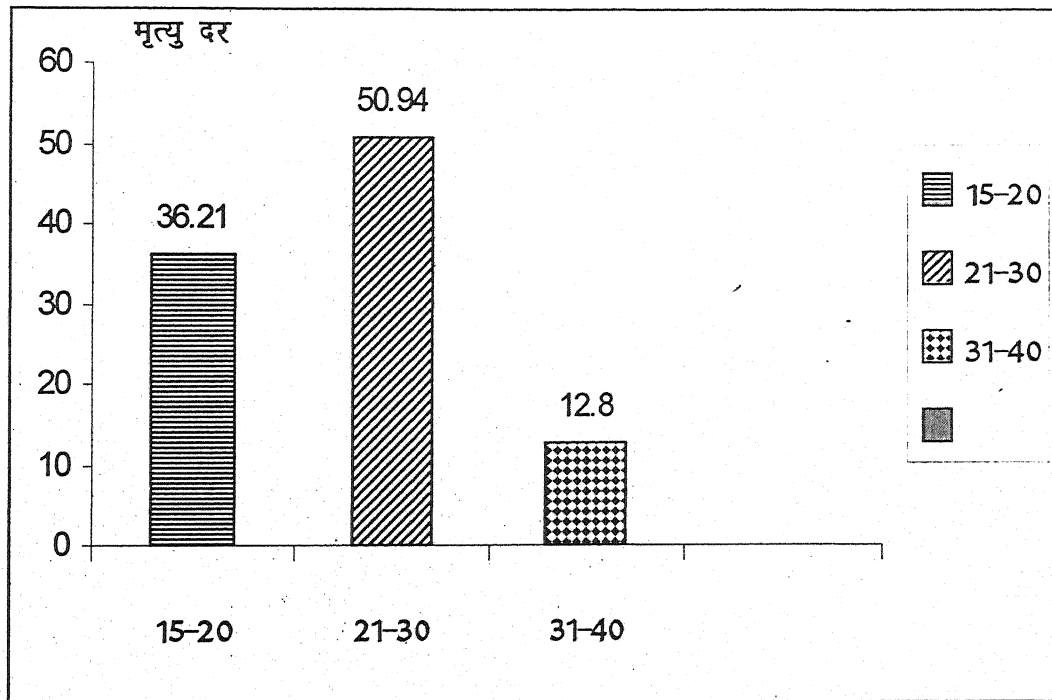
अध्याय-चतुर्थ
शिशु मृत्यु

मृत्यु सम्बन्धी घटनाओं का अध्ययन करने पर पता चलता है कि मृत्यु का दबाव समाज के सभी वर्गो में समान नहीं होता है। किसी आयु वर्ग में मरण-दर अधिक होती है तो किसी आयु-वर्ग में मरण दर कम होती है। मृत्यु का दबाव जन्म के प्रारम्भिक वर्षो में अधिक होता है। फिर आयु बढ़ने के साथ घटता जाता है। किन्तु 50-55 की उम्र के पार होने के बाद फिर मृत्यु की बारम्बारता बढ़ने लगती है। इसी को यदि चित्र से प्रकट किया जाये तो मृत्यु के दबाव का वक्र U बनाता है।

चूंकि वृद्धावस्था में होने वाली मृत्यु को स्वाभाविक कहा जा सकता है किन्तु शैशव की मृत्यु एक अस्वाभाविक मृत्यु एक अस्वाभाविक मृत्यु है तथा इस आयु में मृत्यु का दबाव ऊँचा होना समाज के लिए घातक हैं यही कारण है कि जनांकिकी वेत्ताओं ने शिशु मरण-दर का प्रारम्भ से ही गम्भीरता पूर्वक अध्ययन कया है।

शिशु-मरण से आशय उन बच्चों की मृत्यु से है जिनकी मृत्यु प्रथम जन्म दिवस से पूर्व हो जाती है। इसको निकालने की विधि निम्न है :-

शिशु मरण-दर (I.M.R.) = $\frac{d_0}{births} x1,000$

d_0 = जीवन का प्रथम वर्ष पूरा होने से पूर्व मरने वाले बच्चों की संख्या,

births = उसी वर्ष में कुल जीवित प्रसवों की संख्या।

जनसंख्या के आंकड़ों के सम्बन्ध में, जैसा कि ऊपर व्यक्त किया जा चुका है मृत्यु का दबाव प्रारम्भिक वर्षो में अत्यधिक होता है अतः बच्चों की मृत्यु-दर बहुत अधिक होती हैं प्रो० बोग का अनुमान है कि शिशु मरण-दर प्रायः 65 वर्ष से ऊपर के व्यक्तियों की भी मरण-दर से अधिक होती है। यह ऊँची मरण-दर जीवन प्रत्याशा को बहुत घटा देती हैं

यद्यपि विश्व ने मृत्यु दर को पर्याप्त स्तर तक नीचे ला दिया है किन्तु आज तक भी

शिशु मृत्यु दर बहुत अधिक बनी हुई है। उन्नत देशों में शिशु मृत्यु दर 10-33 प्रति हजार के बीच है तो कम विकसित देशों में यह दर 45-135 के बीच है। शिशु मरण-दर को चिकित्सालय में दो भागों में बॉटा जाता है। प्रथम नवजात शैशव- इस अवधि में जन्म से लेकर प्रथम चार सप्ताह शामिल किये जाते हैं। द्वितीय काल- चार हफ्ते के बाद एक वर्ष तक के 48 सप्ताह है। प्रो0 बोग ने लिखा है कि यह दूसरा काल नवजातोत्तर काल शैशव मृत्यु की दृष्टि से अधिक घातक है। नवजात शिशु जन्म के प्रथम चार सप्ताह तक मॉ के दूध पर पलता है। अतः पर्यावरण के प्रदूषण का उस पर प्रभाव नहीं पड़ता है। सामान्यतया इतने छोटे बच्चे को दूषित वातावरण से बचाने का हर सम्भव प्रयत्न किया जाता है। अतः जन्म से ही शिशु को कोई रोग न हो, तो इस काल में मृत्यु की सम्भावनायें उतनी अधिक नहीं होती है जितनी कि द्वितीय काल (प्रथम चार सप्ताह के उपरान्त) में होती है।

जब शिशु वास्तविक वातावरण की कठोरता, पर्यावरण का प्रदूषण, भोजन सामग्री की अशुद्धता, आदि से वास्तविक सम्बन्ध स्थापित करता है, साथ ही उसकी देखभाल भी कम होने लगती है तो मृत्यु की सम्भावना बढ़ने लगती है। विकसित देशों में सुविधायें उपलब्ध होने के कारण नवजातोत्तर-मृत्यु-दर पर बहुत हद तक अंकुश लगाया जा चुका है। किन्तु विकासशील देशों में शिशु चिकित्सा का नितान्त अभाव है, जघन्य दरिद्रता के कारण पर्याप्त भोजन ही उपलब्ध नहीं हो पाता और सन्तुलित भोजन एक दिवास्वप्न है तथा पर्यावरण प्रदूषण खतरे के निशान तक पहुँच गया है। अतः इस प्रकार की मृत्यु-दर ऊँची है।

नवजात शिशु की प्रथम चार सप्ताह में मृत्यु की सम्भावनायें तभी अधिक होती है जब प्रसव, पूर्ण अवधि से पूर्व हो गया हो, प्रसवकालीन कोई आघात हो, शिशु का अपूर्ण अथवा एकांगी विकास अथवा शिशु की आकृति विकृति हो, आदि। जिन देशों में शिशु मरण-दर कम हो गयी है वहां केवल नवजातोत्तर मृत्यु-दर घटी है। नवजात-मृत्यु-दर तो प्रायः सभी देशों में समान होती है, क्योंकि नवजात मृत्यु का कारण अधिकांशतः अन्तर्गर्भाशीय, आनुवांशिक तथा विकासीय तत्व होते हैं। इन तत्वों पर अभी तक आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान कोई विशेष

प्रभाव नहीं डाल सका है। यद्यपि इस बात के प्रमाण मिलने लगे हैं कि प्रसव सम्बन्धी विकृतियों का प्रमुख कारण गर्भवती स्त्री द्वारा स्वास्थ्य एवं भोजन सम्बन्धी लापरवाही है। किन्तु न तो प्रसव से पूर्व इनकी जानकारी हो पाती है और न उनका उपचार ही किया जा सकता है।

शिशु-मरण-दर को परकलित करने के लिए जिन ऑकड़ों की आवश्यकता होती है उनकी शुद्धता सन्देहास्पद होती है। कुछ समाजों में ऐसे नवजात शिशु की मृत्यु को पंजीकृत करने की परम्परा नहीं है। कुछ समाजों में एक अवधि के उपरान्त ही जन्म-पंजीकरण किया जाता है। यदि इस काल में शिशु की मृत्यु हो जाती है तो उस शिशु के संरक्षक पंजीकरण ही नहीं कराते हैं। अतः न ऐसे एक जन्म का पंजीकरण हो पाता है तथा न एक मृत्यु का पंजीकरण। वास्तव में यह उचित भी प्रतीत नहीं होता है कि एक शिशु जो जन्म के पहले घण्टे से पूर्व ही मर गया हो उसके लिए पहले जन्म का प्रमाण-पत्र बनाया जाये फिर मृत्यु का प्रमाण-पत्र, जितने देर में कागजात तैयार होते हैं कि वह जन्म लेकर मर भी जाता है।

भारत में शिशु-मृत्यु-दर

शिशु मृत्यु-दर एक अत्यनत संवेदनशील सूचक है, जो किसी देश की स्वास्थ्य की दशाओं की ओर संकेत करता है। भारत मे शिशु मृत्यु-दर अभी भी बहुत अधिक है जैसा कि निम्न सारिणी के अंकों से स्पष्ट होता है :

अवधि	शिशु-मृत्यु दर		
	लड़का	लड़की	संयुक्त
1881-1891	272.6	239.6	257
1901-1911	290.0	284.6	287
1921-1931	248.7	232.3	241
1941-1951	190.0	175.0	183
1961-1971	130.1	128.4	129
1971-1981	86.0	82.0	84
2001-02	–	–	69

उपर्युक्त सारिणी से स्पष्ट है कि 1941 के बाद भारत में शिशु मृत्यु-दर में तेजी से कमी आई, और 2001 में यह घटकर 69 प्रति हजार हो गई है। यदि विश्व के विकसित देशों में भारत की शिशु मृत्यु-दर की तुलना में जाए तो आज भी भारत की शिशु-मृत्यु-दर बहुत अधिक है। विश्व के प्रमुख विकसित देशों में शिशु मृत्यु-दर निम्नानुसार है :-

कुछ चुने हुए देशों में शिशु मृत्यु-दर (प्रति हजार)

देश	दर	देश	दर
1. इंग्लैण्ड	6	5. जापान	3.3
2. फ्रांस	6	6. इटली	7
3. अमरीका	0-3	7. स्विट्जरलैण्ड	5
4. कनाड़ा	4	8. भारत	69

स्रोत- वर्ड डेवलेपमेन्ट रिपोर्ट-2001

ग्रामीण एवं शहरी शिशु-मरण-दर -

यदि ग्रामीण एवं शहरी आधार पर शिशु-मरण-दर का विश्लेषण किया जाये तो हम पाते हैं कि शहरों में इस प्रकार की मृत्यु का दबाव गॉवों की अपेक्षा आधा है। सन् 1970 में ग्रामीण क्षेत्र के लिए शिशु मरण-दर 136 थी तो उसी वर्ष में नगरीय क्षेत्र के लिए शिशु मरण दर 90 थी। सन् 1973 में ग्रामीण क्षेत्र में मृत्यु-दर 143 थी तो शहरी क्षेत्र में मृत्यु-दर 89 थी। सन् 2000-01 के अध्यनानुसार गॉवो में यह दर 126 है व शहरों में 60 है।

गॉवों में शिशु-मरण-दर अधिक होना स्वाभाविक है क्योंकि गॉवो में स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव है, स्वास्थ्य सम्बन्धी सामान्य ज्ञान बहुत कम है। शिक्षा का स्तर बहुत नींचा है। विवाह की आयु कम है अतः कम उम्र में ही मॉ बनने से दुर्बल बच्चे का जन्म होता है, जिसकी मृत्यु की सम्भावना अधिक होती है। दूषित आहार, पोषण का अभाव, दोषपूर्ण प्रसव पद्धति आदि अनेक ऐसे कारण है जिनके कारण गॉवो में शिशु-मरण-दर अधिक है।

1. धर्म के अधार पर शिशु-मरण-दर

धर्म	ग्रामीण	शहरी
हिन्दू	136	70
मुस्लिम	108	79

2. महिलाओं में शिक्षा से स्तर के आधार पर

शिक्षा का स्तर	ग्रामीण	शहरी
निरक्षर	132	81
प्राथमिक से नीची शिक्षा	105	59
प्राथमिक से माध्यमिक	164	49
माध्यमिक से अधिक	90	53

3. विवाह की आयु के आधार पर

विवाह की आयु	ग्रामीण	शहरी
18 वर्ष से कम	141	78
18-20 वर्ष	112	66
21 वर्ष से अधिक	85	46

4. पेयजल सुविधा के आधार पर

सुविधा	ग्रामीण	शहरी
नल	103	63
हाथ का नल	105	71
तालाब	102	91
कुआँ	137	93

5. हरिजनों में शिशु-मरण-दर

जाति	ग्रामीण	शहरी
परिगणित जाति	159	90
परिगणित जनजाति	113	–

6. महिलाओं के व्यवसाय के आधार पर शिशु-मरण-दर

व्यवसाय	ग्रामीण	शहरी
कृषि मत्स्यपालन शिकार एवं लकड़ी काटना	237	119
श्रमिक	194	121
अन्य कार्यरत	130	98
गैर–कार्यरत	123	63

7 सामाजिक सुविधाओं पर शिशु-मरण-दर

सुविधाएं	सुविधा सहित		सुविधा रहित	
	ग्रामीण	शहरी	ग्रामीण	शहरी
पेयजल पूर्ति	108	66	134	94
मोटर रोड	110	62	139	82
बस स्टैण्ड	105	51	138	73
रेलवे स्टेशन	56	65	131	69
प्राथमिक पाठशाला	126	65	145	71
स्वास्थ्य सुविधाएं	102	57	136	79

भारत में ऊँची शिशु मरण-दर के कारण -

भारत में अत्यधिक शिशु मरण-दर के प्रमुख कारण इस प्रकार है -

1. प्रसव से सम्बन्धित कारण :

(अ) बाल विवाह, जिसके कारण मॉ और उसके बच्चे की जीवन-शक्ति कम हो जाती है।

(ब) कुशल दाइयों का अभाव तथा माताओं की घोर अज्ञानता, जैसे बच्चे को अफीम इत्यादि खिला देना।

(स) प्रसव सम्बन्धी समुचित सुविधा का अभाव।

2. दरिद्रता -

घोर दरिद्रता, जिसके कारण अधिकतर माता-पिता अपने बच्चों के लिए पर्याप्त मात्रा में पौष्टिक पदार्थ, विशेषतः दूध आदि की व्यवस्था करने में असमर्थ रहते हैं।

3. माता-पिता की अज्ञानता -

भारत में माता-पिता की अज्ञानता है, जो कि शिशु के जीवन को खतरे में डाल देता है। इसी अज्ञानता के कारण अन्ध विश्वासों एवं कुरीतियों के बीच एक शिशु का पालन-पोषण होता हैं अस्वस्थता का कारण दैवी प्रकोप, बुरी नजर, आदि मानी जाती है और टोने, टोटके या 'झाड़-फूंक द्वारा शिशु के स्वास्थ्य को ठीक किये जाने की परम्पराएं समस्त भारत में व्याप्त हैं। जब तक बच्चे को डॉक्टर के पास पहुंचाया जाता है, तब तक बड़ी देर हो चुकी होती है।

4. शिशुओं के स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं की अज्ञानता -

शिशुओं की बीमारियों के रोक-थाम सम्बन्धी टीकों का अभाव है और साथ ही विशेष रूप से ग्रामीण जनता को इस बात की जानकारी भी नहीं है कि गरीब व्यक्तियों द्वारा सामान्य स्वास्थ्य सफाई के नियमों का भी पालन नहीं किया जाता है।

यद्यपि विगत वर्षो में शिशु-मृत्यु-दर में पर्याप्त कमी आयी है, फिर भी हमें काफी मंजिल तय करनी है तभी हमारा शिशु मृत्यु-दर विकसित देशों के बराबर हो सकेगा।

अध्ययन क्षेत्र में शिशु-मृत्यु -

उत्तर प्रदेश के सर्वाधिक पिछड़े जनपदों में बाँदा विकास से कोसो दूर है। जनपद में शिक्षा का व्यापक प्रसार न होने से लोगों में अभी भी अंधविश्वास व्याप्त है। ग्रामीण क्षेत्रो में स्थित और भी अधिक दयनीय है। दूर-दराज के गॉवों में सड़के नहीं या हैं तो अत्यन्त जर्जर हालत में। गॉवों में स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव है। फलस्वरूप जनपद में मृत्यु दर उच्च है। जहां सम्पूर्ण भारत में 2000-01 में शिशु मृत्यु दर 69 है। वहीं अध्ययन के दौरान बड़ोखर ब्लाक ब्लाक के ग्रामों में शिशु मृत्यु दर 130 से 180 तक पाई गई। इसका प्रमुख कारण जागरूकता की कमी और स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव है। प्रसव के समय प्रशिक्षित नर्स उपलब्ध न होने के कारण ही बहुधा शिशुओं की मृत्यु हो जाती हैं स्वास्थ्य केन्द्र न होने के कारण पास के शहरों तक इलाज के लिए लाते लाते भी कई शिशु दम तोड़ देते है। इन सबके अतिरिक्त जागरूकता एवं शिक्षा की कमी के कारण भी ग्रामीण साफ-सफाई पर ध्यान नहीं देते, फलस्वरूप, डायरिया, हैजा, मलेरिया जैसी बामरियों से भी शिशुओं की मृत्यु का प्रतिशत अधिक है। अभी हाल के वर्षो 2003-04 में डायरिया से मरने वाले नवजात शिशुओं का जनपद में प्रतिशत सर्वाधिक था।

उच्च, मध्यम एवं निम्न जाति में शिशु मृत्यु दर-

प्रस्तुत अध्ययन में शिशु मृत्यु दर का विश्लेषण अध्ययन क्षेत्र में उच्च, मध्यम और निम्न क्षेत्र है और यहां पिछड़े और निम्न वर्गो की अधिकता है। अतः शिशु मृत्यु की विविधता ज्ञात करने के उद्देश्य से इन वर्गो में शिशु मृत्यु की प्रकृति का अध्ययन आवश्यक है। शिशु मृत्यु का सीधा सम्बन्ध जागरूकता, विकास और शिक्षा से है और जैसा कि पहले भी स्पष्ट किया जा चुका है कि बांदा विकास की दौड़ में काफी पीछे है। अतः यहां पर उचित स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव है जिससे भी यहां शिशु मृत्यु दर उच्च है। साथ ही साक्षरता प्रतिशत कम होने के कारण लोगों में जागरूकता की कमी है और अंध विश्वास व्याप्त है। फलस्वरूप लोगों ने शिशु जन्म को लेकर कई तरह के अंध विश्वास और भ्रम घर किए हुए

है। उच्च जातियों में हालांकि, पिछड़ी या मध्यम तथा निम्न जातियों की अपेक्षा शिशु मृत्यु दर कम है इसका कारण उच्च जातियों का साधन सम्पन्न तथा शिक्षित होना है। जिससे वे नवजात शिशु की उचित देखभाल एवं सुरक्षा कर लेते है। मध्यम एवं निम्न जातियों में साक्षरता दर अत्यन्त कम है। लोग अनपढ़ होने के कारण स्वास्थ्य एवं सफाई आदि के बारे में बहुत कम जानते है, अतः दूषित जल एवं गंदगी से युक्त वातावरण में रहने के कारण भी अधिकांश शिशुओं की मृत्यु प्रसव के 1 वर्ष के भीतर तक हो जाती है।

विविध वर्षो में शिशु मृत्यु-दर :-

वर्तमान अध्ययन से प्राप्त वर्ष 1997, 1998, 1999 में शिशु मृत्यु-दर सम्बन्धित विवरण सारिणी 3.1 में प्रस्तुत किया गया है।

सारिणी 3.1

विभिन्न वर्षो में शिशु मृत्यु-दर (प्रति हजार)

वर्ष	कुल जीवित जन्मों की संख्या	कुल मृत शिशुओं की संख्या	शिशु मृत्यु दर
1997	211	37	175.3
1998	203	33	162.5
1999	196	27	137.7
योग	610	97	159.01

सारिणी के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि वर्ष-1997 में उत्तरदाताओं ने कुल 211 शिशुओं को जन्म दिया जिसमें से 37 शिशुओं की उसी वर्ष के अन्त तक मृत्यु हो गयी इस प्रकार वर्ष-1997 में शिशु मृत्यु-दर 175.3 प्रति हजार पायी गयी। इसी प्रकार वर्ष 1998 में उत्तरदाताओं ने 203 शिशुओं को जन्म दिया। जिसमें से 33 शिशु उसी वर्ष मृत हो गये और शिशु मृत्यु-दर 1625 थी। इसी क्रम में, वर्ष 1999 में कुल 196 शिशुओं का जन्म हुआ

चित्र संख्या-3.1

विभिन्न वर्षों में शिशु मृत्यु-दर

(प्रति हजार)
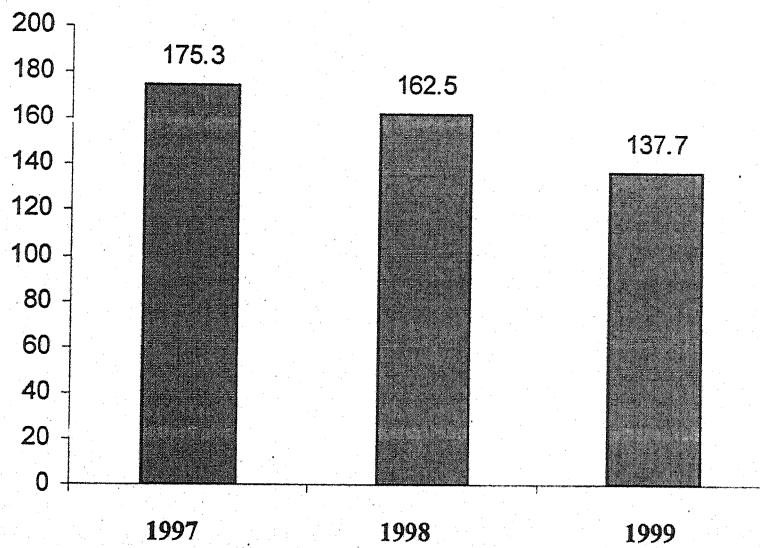
जिसमें से 27 शिशु एक वर्ष के भीतर ही मर गये और शिशु मृत्यु-दर 137.7 रही।

इस प्रकार तीनों वर्षो- 1997, 1998, 1999 में कुल 610 शिशुओं ने जन्म लिया जिसमें से 97 शिशुओं की मृत्यु जन्म लेने वाले वर्षो के अन्दर हो गयी औसतन शिशु मृत्यु दर 159.01 पायी गयी।

सारिणी के विश्लेषण से यह भी स्पष्ट होता है कि शिशु मृत्यु-दर प्रति वर्ष कम होती जा रही है। वर्ष-1997 एवं 1998 के बीच मृत्यु दर हमें ह्रास 12.8 प्रति हजार है जबकि 1998 एवं 1999 के मध्य यह कमी 24.8 प्रति हजार देखने को मिली। स्वाभाविक रूप से मृत्यु-दर में यह कमी पर्याप्त उत्साह जनक है और ऐसी बढ़ती हुई स्वास्थ्य सुविधाओं (टीकाकरण आदि) तथा जनता के दृष्टिकोण में परिवर्तन के कारण प्रतीत होता है। इस प्रकार हमारी परिकल्पना-शिशु मृत्यु-दर ह्रास की ओर उन्मुख है परन्तु फिर भी यह अधिक है- की पुष्टि होती है।

कारकल और मालिनी से भी अपने अध्ययन से स्पष्ट किया है कि वर्ष 1961 में शिशु मृत्यु दर 124.9 प्रति हजार जीवित जन्म थी जो 1971 में 103.13 प्रति हजार जीवित जन्म हो गयी जो कि शिशु मृत्यु-दर में ह्रास का स्पष्ट संकेत हैं।[1] इस प्रकांर हमारे निष्कर्ष, कारकल मालिनी के निष्कर्षो से पर्याप्त साम्य रखते हैं।

विविध वर्षो में उच्च, मध्यम, एवं निम्न जाति में -

वर्तमान अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य शिशु मृत्यु का एक ही परिवेश में रहने वाली उच्च, मध्यम एवं निम्न जाति के लोगों के बीच तुलनात्मक अध्ययन करना है। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु उच्च, मध्यम एवं निम्न जाति के जन्म तथा मृत्यु सम्बन्धी आंकड़े विविध वर्षो के एकत्र किये गये हैं, जिन्हें सारणी 3.2 में प्रस्तुत किया गया है।

---

(1) कारकल मालिनी, 1980 इन्फेन्ट एण्ड चाइल्ड मारटेलिटी इन महाराष्ट्र इण्डिया, पेपर प्रजेन्टेड एट दि एनुवल मीटिंग आफ दि पापुलेशन एसोसिएशन आफ अमेरिका, डेनवर, कोलोराड़ो, अप्रैल 10-12, पेज 16।

सारणी संख्या-3.2
विविध वर्षो में शिशु मृत्यु-दर (प्रति हजार)
(उच्च, मध्यम एवं निम्न जातियों में)

वर्ष	उच्च			मध्यम			निम्न		
	जीवित जन्मों की सं०	मृत शिशुओं की सं०	शिशु मृत्यु दर दर	जीवित जन्मों की सं०	मृत शिशुओं सं०	शिशु मृत्यु दर	जीवित जन्मों की सं०	मृत शिशुओं की सं०	शिशु मृत्यु दर
1997	65	10	153.84	69	13	188.40	77	14	181.81
1998	64	09	140.62	66	11	166.66	73	13	178.08
1999	56	05	89.28	56	08	142.85	84	14	166.66
योग	185	24	129.72	191	32	167.53	234	41	175.21

सारिणी सं0 3.2 पर दृष्टिपात करने पर स्पष्ट है कि जनपद बांदा मे शिशु मृत्यु-दर उच्च है। आज भी जन्म लेने वाले शिशुओं में कइयों की मृत्यु जन्म लेने के 1 वर्ष के भीतर हो जाती हैं अध्ययन क्षेत्र, बडोखर खुर्द ब्लाक के 7 गॉवों में शिशु मृत्यु दर के उपरोक्त आंकड़ों के अनुसार उच्च जाति में वर्ष-1997 में कुल जीवित जन्मों की संख्या 65 तथा कुल मृत शिशुओं की संख्या 10 थी इस प्रकार वर्ष 1997 मे उच्च जाति में शिशु मृत्यु दर 153.84 थी। मध्यम जाति में वर्ष 1997 में कुल जीवित जन्मों की संख्या 69 तथा मृत शिशुओं की संख्या 13 थी। इस प्रकार मध्यम जाति में शिशु मृत्यु दर वर्ष-1997 में 188. 40 थी। जबकि निम्न जाति में वर्ष-1997 में कुल जीवित जन्मों को संख्या 77 थी तथा मृत शिशुओं की संख्या 14 थी। इस वर्ष 1997 में निम्न जातियों में शिशु मृत्यु दर 181.81 थी।

वर्ष-1998 में अध्ययन क्षेत्र में शिशु मृत्यु दर में ह्रास दिखाई पड़ता है। 1997 की तुलना में वर्ष-1998 में उच्च जाति में कुल जीवित जन्मों की संख्या 64 तथा कुल मृत शिशु 09 थी। इस प्रकार वर्ष 1998 में उच्च जाति में शिशु मृत्यु दर 140.62 थी। जो कि वर्ष

1997 की अपेक्षा कम है। मध्यम जाति में वर्ष 1998 में कुल जीवित जन्मों की संख्या 66 तथा कुल मृत शिशुओं की संख्या 11 थी। इस प्रकार वर्ष 1998 में मध्यम जाति में शिशु मृत्यु दर 166.66 थी। जो कि वर्ष 1997 में 188.40 की अपेक्षा कम है। निम्न जाति की शिशु मृत्यु दर में भी वर्ष 1998 में ह्रास दिखलाई पड़ता है। वर्ष–1998 में निम्न जाति में कुल जीवित जन्मों की संख्या 73 थी और कुल मृत शिशुओं की संख्या 13 इस प्रकार 1998 में निम्न जाति में शिशु मृत्यु दर 178.08 जो वर्ष 1997 में 181.87 की अपेक्षा कम है।

वर्ष 1999 में वर्ष 1997 एवं 1998 की तुलना में शिशु मृत्यु दर में अपेक्षाकृत अधिक ह्रास दिखाई पड़ता है। इससे यह स्पष्ट है कि शिशु मृत्यु दर ह्रास की ओर उन्मुख है वर्ष 1999 में उच्च्य जातियों में जीवित जन्मों की संख्या 56 थी तथा कुल मृत शिशुओं की संख्या 05 थी। इस प्रकार वर्ष 1999 में उच्च्य जाति में शिशु मृत्यु दर 89.28 थी। जो वर्ष 1997 एवं 1998 की तुलना में अत्यन्त कम है। मध्यम जाति में वर्ष 1999 में कुल जीवित जन्मों की संख्या 56 तथा कुल मृत शिशुओं की संख्या 08 थी इस प्रकार 1999 में मध्यम जाति में शिशु मृत्यु दर 142.85 थी जो 1997 एवं 1998 की तुलना में अपेक्षाकृत कम है। इसी प्रकार निम्न जातियों में भी 1999 में यही प्रवृत्ति दिखलाई पड़ती है। 1999 में निम्न जातियों में कुल जीवित जन्मों की संख्या 84 तथा कुल कृत शिशुओं की संख्या 14 थी। इस प्रकार वर्ष 1999 में निम्न जातियों में शिशु मृत्यु दर 166.66 थी।

सारिणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि तीन वर्षो में उच्च्य जाति में कुल जीवित जन्म 185 तथा कुल मृत शिशुओं की संख्या 24 की थी तथा शिशु मृत्यु दर 129.72 थी। मध्यम जातियों में तीन वर्षो में उक्त जीवित जन्म 191 तथा कुल मृत्यु पर 167.53 थी। निम्न जातियों में तीन वर्षो में कुल जीवित जन्म 234 तथा कुल मृत शिशुओं की संख्या 41 थी और इस प्रकार शिशु मृत्यु दर 175.21 थी।

सारिणी के समग्र विश्लेषण से स्पष्ट है कि शिशु मृत्यु दर में अध्ययन क्षेत्रों में ह्रास देखने को मिलता है प्रन्तु फिर भी शिशु मृत्यु दर काफी उच्च्य है, जो निराशाजनक है। उच्च्य जातियों की तुलना में मध्यम और निम्न जातियों में शिशु मृत्यु दर उच्च्य है। इसका कारण

उच्च जातियों में साधन सम्पन्नता एवं जागरूकता है। तीन क्रमागत वर्षो 1997, 1998 एवं 1999 की शिशु मृत्यु का तुलनात्मक विश्लेषण करने पर स्पष्ट है कि उच्च जातियों की शिशु मृत्यु दर में तेजी से ह्रास हुआ है जबकि मध्यम एवं निम्न जातियों की शिशु मृत्यु दर की भी कमी दिखाई देती है। किन्तु यह गति काफी धीमी है।

विविध वर्षों में शिशु मृत्यु दर (प्रति हजार) उच्च, मध्यम एवं निम्न जातियों में

चित्र संख्या-3.2
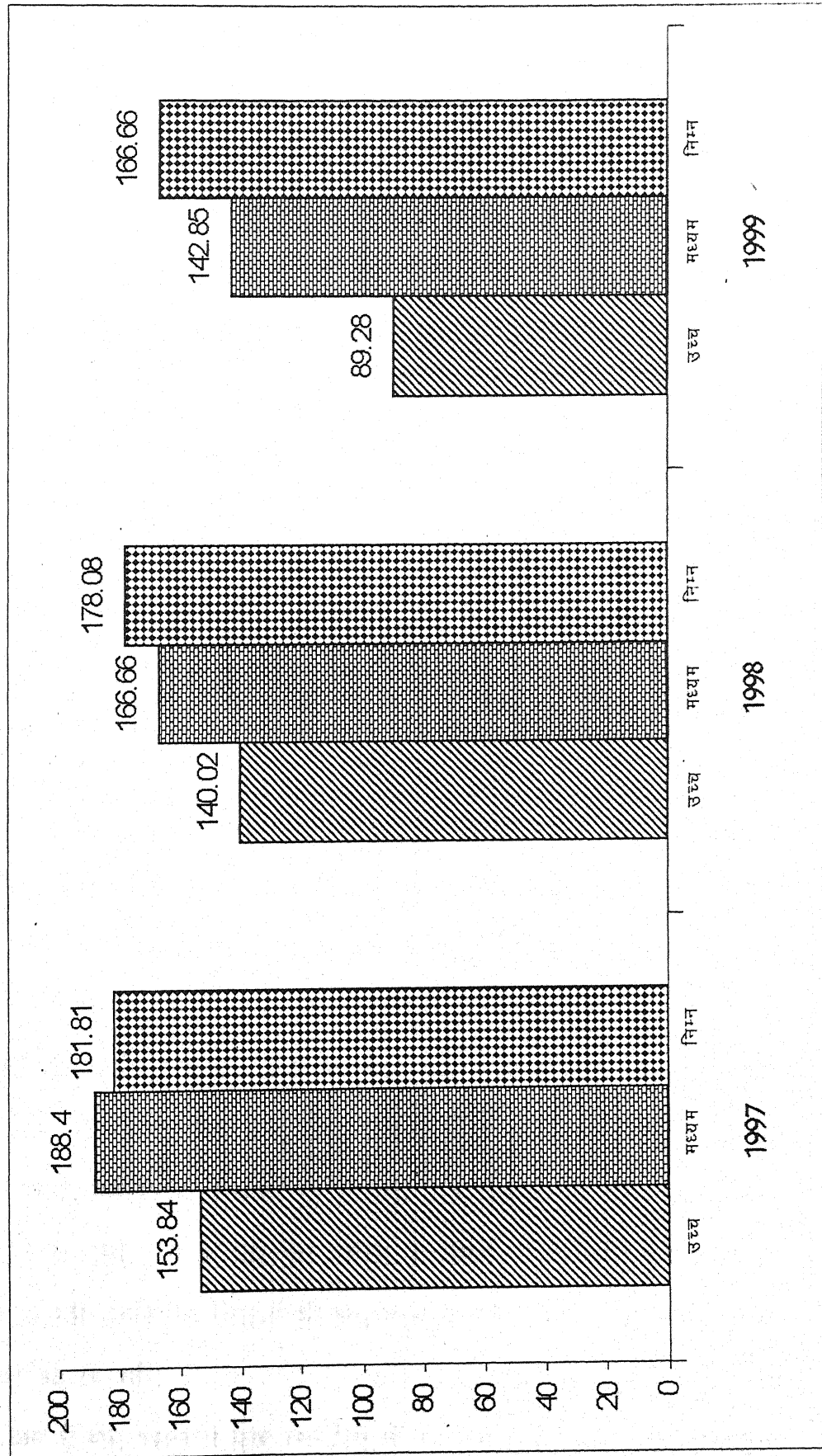
विभिन्न वर्षो में नवजात एवं पश्च-नवजात शिशु मृत्यु-दर :

प्रायः शिशु मृत्यु का ऑकलन दो भिन्न स्थितियों में किया जाता है जिन्हें नवजात तथा पश्च-नवजात कहा जाता है। नवजात शिशु मृत्यु में वे बच्चे आते हैं जिनकी मृत्यु जन्म से चार सप्ताह के अन्दर हो जाती है जबकि शेष को पश्च-नवजात में सम्मिलित किया जाता है। वर्तमान अध्ययन के लिये शिशु मृत्यु संम्बधी आँकड़े दोनों ही स्थितियों में अलग-अलग वर्षो के लिये एकत्र किये गये हैं, जिन्हें सारणी 3.3 में प्रस्तुत किया गया है।

सारणी 3.3

अध्ययन क्षेत्र में विविध वर्षो में नवजात एवं पश्च-नवजात शिशु मृत्यु-दर (प्रति हजार)

वर्ष	नवजात शिशु मृत्यु-दर			पश्च-नवजात शिशु मृत्यु-दर		
	जीवित जन्म	शिशु-मृत्यु	शिशु	जीवित जन्म मृत्यु-दर	शिशु-मृत्यु	शिशु मृत्यु-दर
1997	211	15	71.09	211	22	104.26
1998	203	16	78.81	203	17	83.74
1999	196	09	45.91	196	18	91.83
योग	610	40	65.91	610	57	93.44

सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि वर्ष 1997 में उत्तरदाताओं द्वारा कुल 211 शिशुओं को जन्म दिया गया जिसमें से 15 शिशुओं की मृत्यु जन्म से चार सप्ताह के अन्दर हो गई और नवजात शिशु मृत्यु-दर 71.09 रही जबकि 22 शिशुओं की मृत्यु चार सप्ताह के बाद किन्तु प्रथम वर्षगांठ के पूर्व हुई जिससे पश्च-नवजात शिशु मृत्यु-दर 104.26 पाई गई ।

इसी प्रकार, वर्ष 1998 में उत्तरदाताओं द्वारा 203 शिशुओं का जन्म मिला जिसमें से 16 शिशुओं की मृत्यु जन्म के बाद चार सप्ताह के अन्दर हो गई औश्र नवजात शिशु मृत्यु-दर 78.81 रही जबकि 17 शिशुओं की मृत्यु जन्म के चार सप्ताह के बाद हो गईऔर शिशु मृत्यु-दर 83.74 रही।

इसी क्रम में वर्ष, 1999 में कुल 196 शिशुओं का जन्म हुआ जिसमें से 09 शिशुओं

की मृत्यु जन्म से चार सप्ताह के अन्दर हों गई और नवजात शिशु मृत्यु-दर 45.91 पायी गई जबकि 18 शिशुओं की मृत्यु जन्म से चार सप्ताह के बाद हो गई तथा पश्च-नवजात शिशु मृत्यु-दर 91.83 प्राप्त हुई।

इस प्रकार तीनों वर्षो में कुल 610 शिशुओं का जन्म हुआ जिसमें से 40 शिशुओं की नवजात काल में मृत्यु हो गई और नवजात शिशु मृत्यु-दर 65.57 रही जबकि 57 शिशुओं की पश्च-नवजात काल में मृत्यु हुई और पश्च-नवजात शिशु मृत्यु-दर 93.44 पायी गयी।

सारणी में प्रस्तुत तीनों वर्षो के आँकड़ों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि अलग-अलग वर्षो में नवजात शिशु मृत्यु-दर की अपेक्षा पश्च-नवजात शिशु मृत्यु-दर अधिक है जिससे स्पष्ट है कि पर्यावरणीय कारकों, जिसमें चिकित्सीय सुविधा भी सम्मिलित है, की भूमिका शिशु मृत्यु के लिये अधिक उत्तरदायी है। इस प्रकार हमारी परिकल्पना- नवजात शिशुओं की मृत्यु-दर की तुलना में पश्च-नवजात शिशु मृत्यु-दर अधिक है - की पुष्टि होती है। भारत जैसे विकासशील देश पिछड़े तथा अर्धनगरीय क्षेत्र की सुविधाओं के सन्दर्भ में ऐसा होना पूर्ण स्वाभाविक है। सारणी के विश्लेषण से यह भी संकेत मिलता है कि तीनों वर्षो में नवजात एवं पश्च-नवजात शिशु मृत्यु-दर क्रमशः घट रही है। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि नवजात शिशु मृत्यु-दर की अपेक्षा पश्च-नवजात शिशु मृत्यु-दर में गिरावट की गति अधिक है। जो कि चिकित्सीय सुविधाओं के बढ़ने की ओर स्पष्ट संकेत है। टीकाकरण के द्वारा भी पश्च-नवजात शिशु मृत्यु पर पर्याप्त नियन्त्रण के प्रयास सफल होते दिखलाई पड़ रहे हैं। नवजात तथा पश्च-नवजात शिशु मृत्यु के वर्तमान आँकड़ों की तुलना जब उत्तर प्रदेश के आँकड़ों से की जाती है पता चलता है कि उत्तर प्रदेश में 1970-1972 में नवजात एवं पश्च-नवजात शिशु मृत्यु-दर क्रमशः 93.7 एवं 80.6 प्रति हजार थी, जबकि 1976-1978 में नवजात शिशु मृत्यु-दर में गिरावट के सन्दर्भ में हमारे निष्कर्ष उपरोक्त आँकड़ों से मिलते हैं, जबकि नवजात शिशु मृत्यु-दर में पर्याप्त भिन्नता है।

विविध वर्षो में नवजात एवं पश्च-नवजात शिशु-मृत्यु दर

(प्रति हजार)

चित्र संख्या-3.3
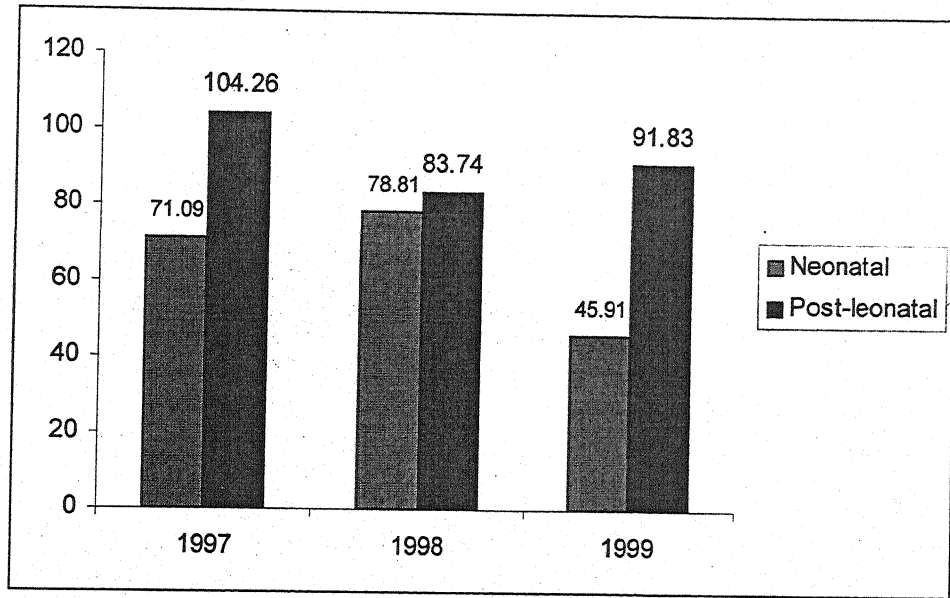
विविध वर्षो में नवजात एवं पश्च-नवजात शिशु-मृत्यु अनुपात :

नवजात एवं पश्च-नवजात शिशु मृत्यु-दर को और भी अधिक प्रभावी ढंग से समझने के लिये उसका अनुपातिक विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है जो सारणी 3.4 में प्रस्तुत है।

सारणी 3.4

विविध वर्षो में नवजात एवं पश्च-नवजात शिशु मृत्यु-अनुपात

वर्ष	नवजात शिशु मृत्यु	पश्च-नवजात शिशु मृत्यु	शिशु मृत्यु अनुपात
1997	15	22	1:46
1998	16	17	1:06
1999	09	18	1:2
योग :-	40	57	1:42

सारणी सें स्पष्ट है कि 1997 में कुल नवजात शिशु मृत्यु 15 एवं पश्च-नवजात शिशु मृत्यु 22 पाई गई जिससे नवजात एवं पश्च नवजात शिशु मृत्यु 1:1:46 रहा। इसी प्रकार, वर्ष 1998 में नवजात शिशु मृत्यु 16 व पश्च-नवजात शिशु मृत्यु 17 रही और नवजात एवं पश्च-नवजात शिशु मृत्यु अनुपात 1:1:06 पाया गया। इसी क्रम में, वर्ष-1999 में नवजात एवं पश्च-नवजात शिशु मृत्यु क्रमशः 09 व 18 पाई गई और नवजात एवं पश्च-नवजात शिशु मृत्यु अनुपात 1:2 प्राप्त हुआ।

यदि सम्पूर्ण रूप से देखा जाये तो नवजात एवं पश्च-नवजात शिशु मृत्यु क्रमशः 40 व 57 है तथा उनके बीच अनुपात 1:1:42 है।

सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि नवजात शिशु मृत्यु को स्थिर करके पश्च नवजात शिशु मृत्यु को उसके अनुपात में रखकर देखा जाये तो दो तथ्य उभर कर सामने आये, पहला, नवजात शिशु मृत्यु की तुलना में पश्च-नवजात शिशु मृत्यु अधिक है। दूसरा पश्च-नवजात शिशु मृत्यु लगाकर ह्रास की ओर उन्मुख हैं पश्च-नवजात शिशु मृत्यु में यह परिवर्तन अपेक्षित है।

विविध वर्षो में नवजात एवं पश्च-नवजात शिशु मृत्यु अनुपात

चित्र संख्या 3.4
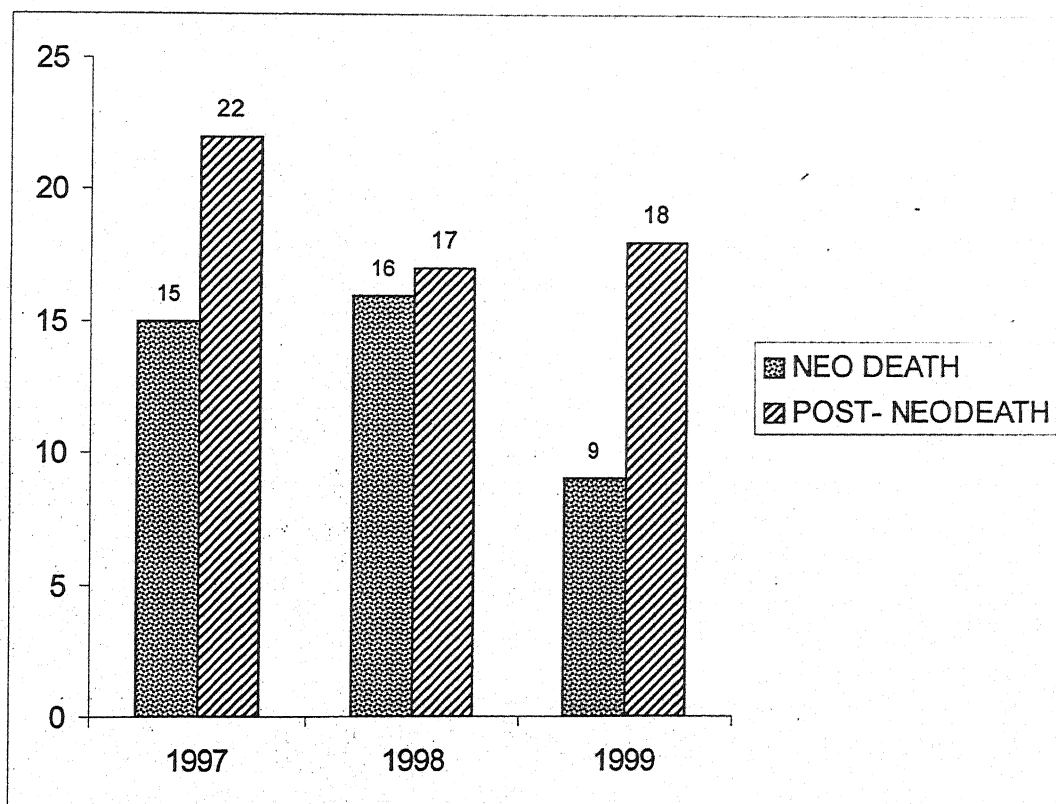
विविध वर्षों में वर्तमान अध्ययन से प्राप्त शिशु मृत्यु-दर की उत्तर प्रदेश एवं भारत की शिशु मृत्यु-दर से तुलना

भारत विविधताओं वाला विशाल देश है जहाँ क्षेत्रीय विषमतायें प्रत्येक दृष्टि से दृष्टिगोचर होती हैं। स्वाभाविक तौर पर शिशु मृत्यु दर में भी भिन्नता अपेक्षित है। वर्तमान अध्ययन के निष्कर्षो से प्राप्त शिशु मृत्यु दर के आंकडों की तुलना प्रादेशिक तथा राष्ट्रीय स्तर के आंकडों से करने की हमारी योजना है। इसी तारतम्य में तीन वर्षो के लिये आंकड़े सारणी 3.5 में प्रस्तुत है।

विविध वर्षो में वर्तमान अध्ययन से प्राप्त शिशु मृत्यु दर सम्बन्धी आंकड़ों की उत्तर प्रदेश तथा भारत के आंकड़ों से तुलना

वर्ष	अध्ययन क्षेत्र में शिशु मृत्यु-दर	उत्तर प्रदेश में शिशु मृत्यु-दर	भारत में शिशु मृत्यु-दर
1997	175.3	111	77
1998	162.5	100	74
1999	137.7	88	70
औसत	159.01	99.66	73.66

सारणी का अवलोकन करने से पता चलता है कि वर्ष 1997 में वर्तमान अध्ययन क्षेत्र में शिशु मृत्यु-दर 175.3 प्रति हजार थी वहीं यह उत्तर प्रदेश एवं भारत में क्रमशः 111 एवं 77 प्रति हजार थी। यह उत्तर प्रदेश की शिशु मृत्यु-दर से 1.57 गुना एवं भारत की शिशु मृत्यु-दर से 2.27 गुना अधिक है।

वर्ष 1998 में वर्तमान अध्ययन से प्राप्त शिशु मृत्यु-दर 162.5 प्रति हजार पाई गई वहीं उत्तर प्रदेश में यह 100 एवं भारत में 74 प्रति हजार थी अर्थात 1997 की तुलना में वर्ष 1998 में शिशु मृत्यु-दर में कमी आई है यह मृत्यु-दर उत्तर प्रदेश की शिशु मृत्यु-दर से 1.62 गुना एवं भारत की शिशु मृत्यु-दर से2.19 गुना ज्यादा पाई गई।

विविध वर्षों में अध्ययन से प्राप्त ऑकड़ों की यू0पी0 तथा भारत से तुलना

चित्र संख्या 3.5
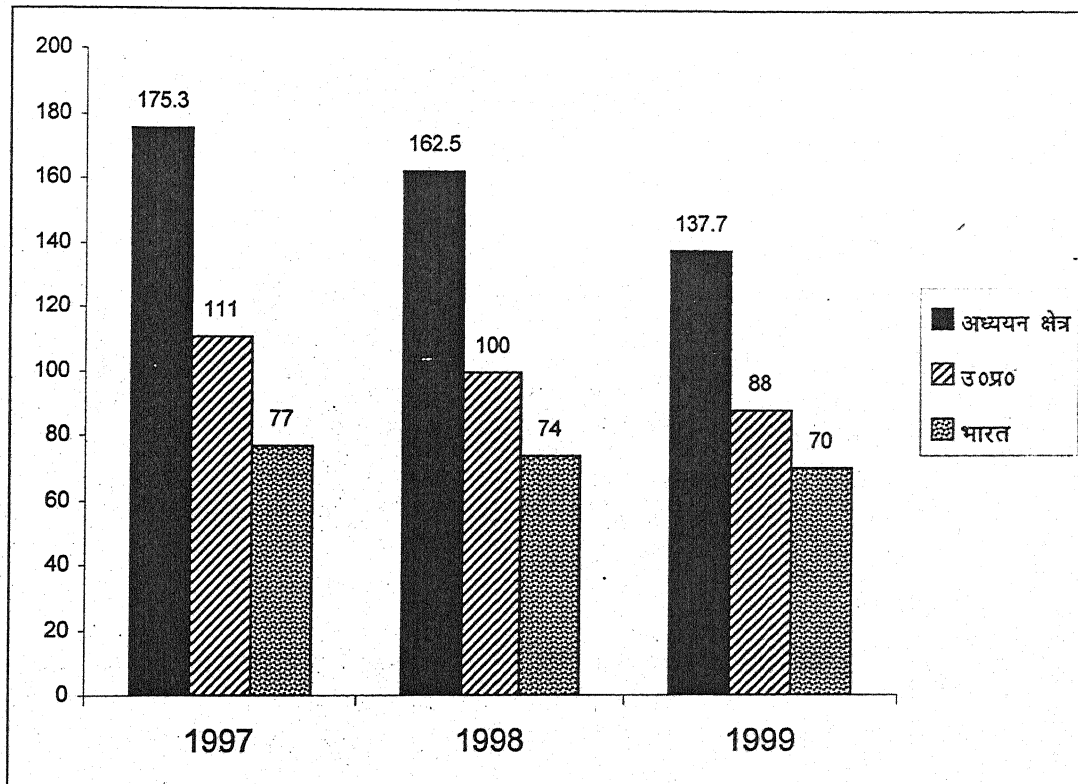
वर्ष 1999 में वर्तमान अध्ययन क्षेत्र की शिशु मृत्यु-दर 137.7 प्रति हजार पाई गई जबकि उत्तर प्रदेश में यह 88 एवं भारत में 70 प्रति हजार आंकी गई। इस प्रकार वर्तमान अध्ययन से प्राप्त शिशु मृत्यु-दर उत्तर प्रदेश की दर से 1.56 गुना व भारत की शिशु मृत्यु-दर से 1.96 गुना अधिक थी। किन्तु फिर भी 1998 की अपेक्षा 1999 में शिशु मृत्यु-दर में कमी आई है।

इस प्रकार तीनों वर्षो का वर्तमान अध्ययन में शिशु मृत्यु-दर का औसत 159.01 एवं उत्तर प्रदेश एवं भारत का क्रमशः 99.66 तथा 73.66 था।

सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि वर्तमान अध्ययन क्षेत्र में शिशु मृत्यु-दर बहुत अधिक है। यदि तीनों वर्षो के औसत की तुलना की जाय तो पता चलता है कि हमारे आं. कड़े प्रादेशिक तथा राष्ट्रीय स्तर के ओंकडों से कई गुना शिशु मृत्यु दशति हैं। जैसा कि यह पूर्व में स्पष्ट कर चुके हैं कि हमारा अध्ययन क्षेत्र तथा प्रदेश का एक अत्यधिक पिछड़ा क्षेत्र है जहाँ पर निर्धनता, अशिक्षा तथा अन्धविश्वासों का साम्राज्य है तथा यह क्षेत्र आधुनिक चिकित्सीय सुविधाओं की दृष्टि से भी बहुत पीछे है। इसी कारण से यहाँ शिशु मृत्यु-दर बहुत अधिक पाई गई।

प्रस्तुत अध्याय में विविध वर्षो में व उच्च, मध्यम एवं निम्न जातियों में शिशु मृत्यु-दर का ऑकलन कर विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार विभिन्न वर्षो में नवजात एवं पश्च-नवजात शिशु मृत्यु-दर व विभिन्न जातियों में नवजात एवं पश्च-नवजात शिशु मृत्यु दर का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। साथ ही नवजात एवं पश्च-नवजात शिशु मृत्युदर को और अधिक प्रभावी ढंग से समझने के लिए उसके आनुपातिक विश्लेषण का प्रयास किया गया है। इसके अतिरिक्त, भारत तथा उत्तर प्रदेश की शिशु मृत्यु-दर की तुलना वर्तमान अध्ययन में प्राप्त शिशु मृत्यु-दर सम्बन्धी निष्कर्षो से की गयी है।

अध्याय-पंचम
शिशु मृत्यु की विभिन्नताएं

विगत अध्याय में शिशु मृत्यु-दर सम्बंधी विवरण प्रस्तुत किया गया जिसके आधार पर यह सुनिश्चित हो सका कि विभिन्न वर्षो में उच्च, मध्यम एवं निम्न जातियों में शिशु मृत्यु का स्तर क्या रहा। साथ ही विभिन्न वर्षो में नवजात शिशु मृत्यु-दर पश्च नवजात शिशु मृत्यु दर नवजात शिशु मृत्यु दर एवं उनके बीच अनुपात स्पष्ट किया गया है। से सम्बंधित कुछ ऐसे सामाजिक-सांस्कृतिक तत्वों का सूक्ष्म रूप से विश्लेषण किया जायेगा जिनके कारण शिशु मृत्यु-दर में विभिन्नताएं उत्पन्न हो जाती हैं। स्पष्टतः ऐसे विभिन्न सामाजिक कारकों की विवेचना की जायेगी जो शिशु मृत्यु-दर को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं।

विश्व के विभिन्न देशों में मृत्यु-दर सम्बन्धी आंकड़ों पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि कुछ देशों में शिशु मृत्यु-दर बहुत कम हैं तथा कुछ विकासशील देशों में शिशु मृत्यु-दर बहुत अधिक है। न केवल विभिन्न देशों के बीच वरन् एक ही देश में एक क्षेत्र की शिशु की मृत्यु-दर दूसरे क्षेत्र की अपेक्षा भिन्न है। इतना ही नहीं, जाति धर्म, पारिवारिकी संरचना, रीति-रिवाज एवं स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता आदि विविध कारणों से शिशु मृत्यु-दर भिन्न-भिन्न हो जाती है। इस सन्दर्भ में योगी ने लिखा है कि ''जनांकिकी वेत्ता एवं चिकित्सा सम्बन्धी अनुसंधान कर्ताओं ने यह ज्ञात कर लिया है कि समय एवं परिस्थितियों के कारण शिशु मृत्यु-दर में विभिन्नताएं आ जाती है[1]।

यद्यपि ऐसे विभिन्न कारकों एवं तत्वों का संख्यात्मक विश्लेषण करना कठिन है क्योंकि मृत्यु सम्बन्धी सूचना एवं जनगणना करते समय सामाजिक तत्वों की परिभाषा अलग-अलग होती है तथा इनका मृत्यु के सम्बन्ध में विश्लेषण करने का संदर्भ भिन्न होता है। कुछ महत्वपूर्ण तत्व जिनके कारण शिशु मृत्यु-दर में विभिन्नताएं हो जाती हैं वे इस प्रकार हैं[2]।

---

(1) बोगी, डोनाल्ड, जे०, (1961) प्रिंसिपल आफ डेमोग्राफी, जन वेली एण्ड सन्स, न्यूयार्क, पेज 602।

(2) महादेवन, के० एण्ड नाम बोथीरी, नारायन, डी०, (1972), कास्ट स्टेट्स एण्ड फर्टीलिटी इन ए रूरल एरिया आफ तमिलनाडु, बुलेटिन आफ दि गांधी ग्राम इन्स्टीट्यूट आफ रूरल हेल्थ एण्ड फेमिली प्लानिंग, जुलाई 7(1)।

मुथियाह, ए०, (1980), रिप्रोडक्सन इन फोर कच्लचरल ग्रुप इन रूरल एरिया आफ तमिलनाडु, इण्डिया, चण्डीगढ़, पेज 39।

1. धर्म के आधार पर
2. परिवार के स्वरूप के आधार पर
3. जाति के आधार पर
4. माँ की शिक्षा के आधार पर
5. पिता की शिक्षा के आधार पर
6. पिता के व्यवसाय के आधार पर
7. भू-स्वामित्व के आधार पर
8. विवाह के समय माँ की आयु के आधार पर
9. प्रसव के समय सहायक के आधार
10. नाल काटने के यंत्र के आधार
11. जन्म के स्थान के आधार पर
12. प्रसव के समय माँ की आयु के आधार पर
13. बच्चे के लिंग के आधार पर
14. परिवार के सामाजिक-आर्थिक स्तर के आधार पर

अब वर्तमान अध्ययन से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर शिशु-मृत्यु सम्बन्धी विभिन्नताओं की विवेचना की जायेगी।

धर्म के आधार पर शिशु मृत्यु में विभिन्नताएं :-

धर्म एक ऐसा महत्वपूर्ण कारक है जो कि शिशु मृत्यु को प्रत्यक्षतः प्रभावित करता है। हिन्दू धर्म में पुत्र प्राप्ति को मोक्ष-प्राप्ति का आधार माना जाता है जबकि पुत्री का जन्म निराशा का कारण बन जाता है। लड़कों तथा लड़कियों का अल्पायु में विवाह करना धर्म के अनुरूप माना जाता है।

जिसके कारण अविकसित शिशु पैदा होते हैं और शिशु मृत्यु-दर बढ़ जाती है। धर्म के आधार पर बस्तियों में जनसंख्या का घनत्व बढ़ जाता है जिससे बस्तियां घनी और गन्दी होती हैं जिसके कारण उन बस्तियों में रहने वाले अधिकांश लोग अस्वस्थता तथा कुपोषण के शिकार हो जाते हैं। प्रजनन क्षमता अधिक होने के कारण भी कुपोषण की समस्या पैदा हो जाती है। बढ़ती हुई आकांक्षाओं ने जीवन को व्यस्त बना दिया है, जिससे बच्चों की देख-भाल कम हो पाती है। हिन्दू समाज में धर्म की कट्टरता अपेक्षाकृत कम है जबकि मुस्लिम समुदाय में धार्मिक कट्टरता अधिक है। गरीबी, अशिक्षा तथा संकीर्णता अधिक है जिसके कारण शिशु कुपोषण के शिकार हो जाते हैं। साथ ही, उन्हें उत्तम चिकित्सा

सुविधा भी नहीं मिल पाती जिसके कारण प्रायः मुसलमानों में शिशु-मृत्यु-दर अधिक पायी जाती है। हिन्दुओं में शिशु मृत्यु-दर कम है जो अनेक विद्वानों के द्वारा किये गये अध्ययनों से स्पष्ट है। भट्टाचार्य जी इस बात से सहमत हैं कि मुस्लिम सम्प्रदाय में शिशु मृत्यु-दर अधिक एवं हिन्दू सम्प्रदाय में शिशु मृत्यु-दर कम होती है [1]। जबकि ओमरान तथा स्टैण्डली इस बात का समर्थन नहीं करते [2]। एम0ई0खान का निष्कर्ष है कि मुस्लिम सम्प्रदाय में शिशु मृत्यु-दर अधिक होती है, जबकि हिन्दुओं में यह कम होती है [3]।

उक्त परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत अध्ययन से प्राप्त तथ्यों को सारणी 4.1 में प्रस्तुत किया गया है।

सारणी 4.1

हिन्दू तथा मुस्लिम सम्प्रदायों में शिशु मृत्यु-दर तथा जन्म-मृत्यु अनुपात का विवरण

धर्म के आधार पर	जीवित जन्म	शिशु मृत्यु	शिशु मृत्यु-दर	अनुपात
हिन्दू	410	60	146.34	1:14
इस्लाम	200	37	185.00	1:18
योग	610	97	159.01	1:15

सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि हिन्दू महिलाओं ने वर्ष 1997,1998, 1999 में कुल 410 शिशुओं को जन्म दिया जिसमें से 60 शिशुओं की मृत्यु उनके जन्म लेने वाले वर्ष में हो गयी। इस प्रकार इनमें शिशु मृत्यु-दर 146.34 प्रतिशत रही। मुस्लिम महिलाओं ने उन्हीं तीनों वर्षों में कुल 200 शिशुओं को जन्म दिया जिसमें से 37 शिशुओं की मृत्यु उनकी प्रथम वर्षगांठ के पूर्व ही हो गयी। इस प्रकार, इनमें शिशु-मृत्यु-दर 185.00 प्रति हजार पायी गयी।

---

(1) भट्टाचार्य जी, पी0जे0, (1979) फैक्टर्स, इनफ्ल्यूवेशिंग इनफेन्ट मार्टीलिटी, के0 श्रीनिवासन, पी0सी0 सक्सेना, तारा कानिटकर, डेमोग्राफी एण्ड सोशल इकोकोमिक्स एस्पेक्ट आफ दि चाइल्ड इन इण्डिया, बाम्बे हिमालयन पब्लिसिंग हाउस, पेज नं0 115-122।

(2) ओमरान, ए0आर0एण्ड स्टैण्डली, सी0सी0 (1976) फेमिली फारमेशन बेटर्नन एण्ड हेल्थ, एन इण्टरनेशनल कोलोबरेटिव स्टडी इन इण्डिया, लन्दन, जनेवा।

(3) खान, एम0ई0 (1980) इन्फेन्ट मार्टीलिटी इन उत्तर प्रदेश, ए माइक्रो लेविल स्टडी इन इन्फेन्ट मार्टीलिटी इन इण्डिया, अनुराधा के0जैन एण्ड बिसारिया प्रवीन, लन्दन, पेज 234।

हिन्दू तथा मुसलमान में शिशु मृत्यु दर

चित्र संख्या- 4.1
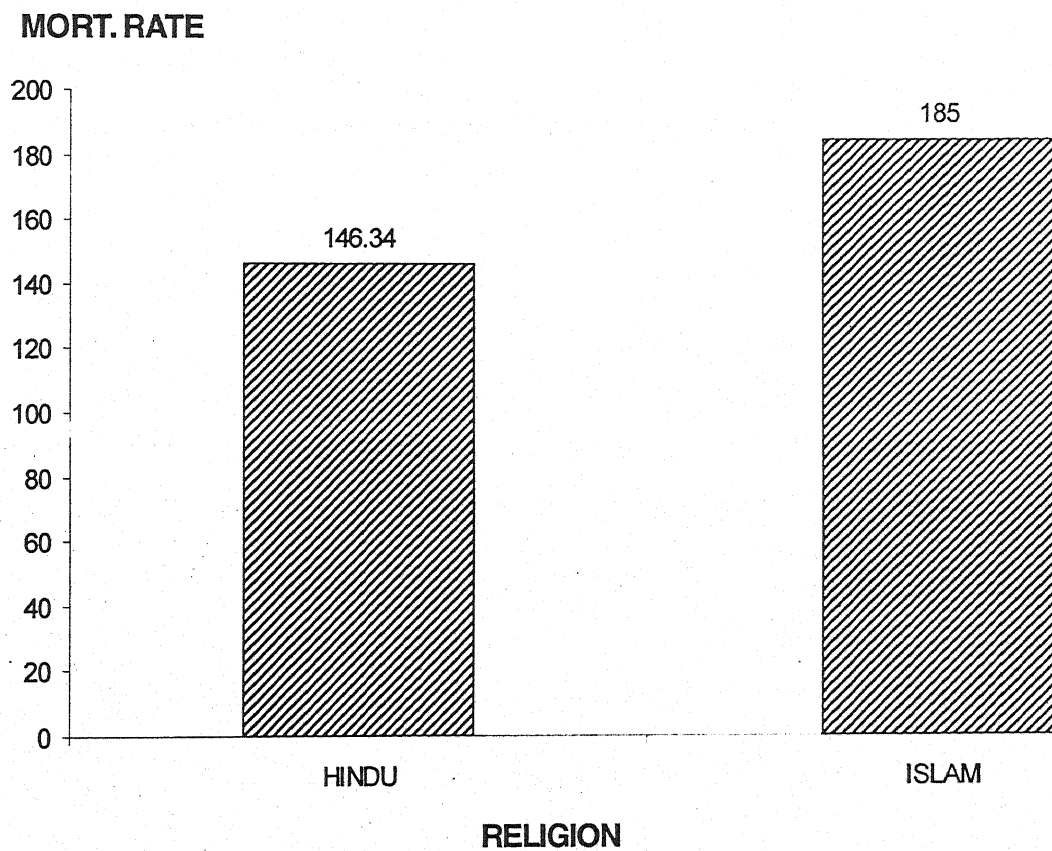
सारणी शिशु जन्म एवं मृत्यु के अनुपात को भी स्पष्ट करती है। हिन्दुओं में यह अनुपात 1 एवं 14 का है, जबकि मुसलमानों में 1 एवं 18 का है और अधिक स्पष्ट शब्दों में हिन्दुओं में 1 शिशु जन्म पर 0.14 शिशु मरते हैं जबकि मुसलमानों में मरने वाले शिशु 0.18 हैं। इस प्रकार हिन्दुओं में शिशु मृत्यु-दर इस्लाम धर्म के अनुयाइयों की अपेक्षा पर्याप्त कम है जिससे हमारी परिकल्पना-माता-पिता का धर्म शिशु मृत्यु के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है, की पुष्टि होती है। ऐसा अनेक कारणों से हो सकता है। सारणी के आंकड़े इस तथ्य को दर्शाते हैं कि हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों में जन्मदर अधिक है। उतने ही समय में हिन्दू स्त्रियों के 410 बच्चे पैदा हुये जितने समय में मुसलमान स्त्रियों ने 200 बच्चों को जन्म दिया (जबकि अध्ययन क्षेत्र में मुस्लिम आबादी बहुत कम है)। यह एक प्रमाणित तथ्य है कि उच्च-जन्म दर उच्च मृत्यु-दर का कारण होती है। जब मुसलमानों स्त्रियों में हिन्दू स्त्रियों की अपेक्षा जन्म-दर अधिक है तो स्वाभाविक रूप से उनमें मृत्यु-दर भी अधिक होनी चाहिए।

तथ्य संकलन के दौरान यह भी पता चला कि हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों में अशिक्षा, अन्ध-विश्वास, भाग्यवादिता तथा अनेक कुरीतियों का प्रचलन अधिक है। ये सभी कारण बच्चे के बीमार होने पर उनके माता-पिता का बाध्य करती हैं कि वे डाक्टर के बजाय झाड़-फूंक करने वालों के पास जायें। यह स्थिति भी शिशु मृत्यु को बढ़ावा देती है।

हमारे निष्कर्ष भट्टाचार्य तथा खान के निष्कर्षो से साम्य रखते हैं, जबकि ओमरान एवं स्टैण्डली के निष्कर्षो से मेल नहीं खाते हैं।

परिवार के स्वरूप के आधार पर शिशु मृत्यु-दर मे विभिन्नताएं :-

परिवार के स्वरूप से शिशु मृत्यु-दर प्रभावित होती है। संयुक्त परिवार में बच्चों की देखभाल कम हो पाती हैं पारिवारिक रीति-रिवाज एवं बन्धनों के कारण लोग अपने ही बच्चों की देखभाल ठीक से नहीं कर पाते हैं। जिसके कारण शिशु कुपोषण तथा चिकित्सीय असुविधा के शिकार हो जाते हैं। संयुक्त परिवार से अनेक लाभ भी है किन्तु इसके बावजूद परिवार का स्वरूप प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से शिशु मृत्यु-दर को प्रभावित करता है।

प्रस्तुत अध्ययन से सम्बन्धित क्षेत्र में संयुक्त परिवार प्रणाली का प्रचलन अधिक है जो कि शिशु मृत्यु-दर को प्रभावित करता है। संयुक्त परिवारों में शिशु मृत्यु-एकाकी परिवारों की अपेक्षा अधिक पायी जाती है। ऐसा अनेक अध्ययनों से प्राप्त आंकड़ों से स्पष्ट है। मैथ्यूशू ने भी इस तथ्य को माना है कि पारिवारिक संगठन का प्रभाव शिशु मृत्यु-दर पर

पड़ता है [1] साथ ही, बेकर ने भी इस बात का समर्थन किया है। उनका कहना है कि यदि परिवार बड़ा होगा तो खान-पान की व्यवस्था उत्तम नहीं हो सकती [2]। इनके अतिरिक्त, नाम और हरिगंटन ने भी स्पष्ट किया है कि पारिवारिक वातावरण का प्रभाव विभिन्न दृष्टिकोण से बच्चों पर और उनके मृत्यु तथा जीवन शैली पर अवश्य पड़ता है [3]।

अध्ययन से सम्बंधित प्राप्त आंकड़े सारणी 4.2 में प्रस्तुत किये गये हैं।

सारणी 4.2

परिवार के स्वरूप के आधार पर शिशु मृत्यु में विभिन्नताएं एवं
शिशु जन्म-मृत्यु अनुपात

परिवार का स्वरूप	जीवित जन्म	शिशु मृत्यु	शिशु मृत्यु-दर	अनुपात
संयुक्त	409	69	168.70	1:16
एकाकी	201	28	139.30	1:13
योग	610	97	159.01	1:15

सारणी के अवलोकन से ज्ञात होता है कि संयुक्त परिवारों में शिशु मृत्यु-दर 168.70 प्रति हजार है तथा जन्म एवं मृत्यु का अनुपात 1:16 है अर्थात एक शिशु के जन्म पर 0.16 शिशुओं की मृत्यु हो जाती है। इसके विपरीत, एकाकी परिवारों में शिशु मृत्यु-दर कुछ कम 139.30 प्रति हजार है क्योंकि यहां तीनों वर्षो में कुल 201 शिशुओं ने जन्म लिया एवं 28 शिशुओं की मृत्यु जन्म लेने वाले वर्ष के अन्त तक हो गयी। यहां जन्म-मृत्यु अनुपात 1:13 पाया गया।

इस प्रकार एकाकी परिवारों की अपेक्षा संयुक्त परिवारों में शिशु मृत्यु-दर अधिक है, किन्तु यह अन्तर कम बहुत कम पाया गया। फिर भी, शिशु मृत्यु-दर पर पारिवारिक स्वरूप

---

(1) सिग मैथ्यूशू आई० (1983), डिक्लाइन आफ मार्टीलिटी आफ जापान, यू०एस०जापान कान्फ्रेन्स आफ पजिंग ऐमियो पेज नं० 12।

(2) बेकर, हुग, डी०आर० (1979), इपीडिमियोलोजिक पैटर्न, ओवर टाइम इन डी०एम० टीड एण्ड एफ०जे० स्टैण्डली: दि इपीडिमयोलोजी आफ प्रिमेच्योरिटी: बाल्टीमोर, स्वजन वर्ग पेज नं० 5-15।

(3) नाम, सी०बी० एण्ड हरिगंटन टी०एम०, (1983), फैक्टर्स, सेपिंग दि मारवेलिटी एण्ड मारटेलिटी एक्सेप्ट्रेशन आफ यूथ, ए सोशियोलाइजेशन माडल, मेमियो, पेज नं० 39।

का आंशिक प्रभाव परिलक्षित होता है। जिससे हमारी परिकल्पना-माता पिता के परिवार का स्वरूप शिशु मृत्यु के निर्णारण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं- की पुष्टि होती है। ऐसा सम्भवतः इसलिए है क्योंकि संयुक्त परिवारों में बच्चों की देखभाल बड़े-बूढ़े करते हैं जो कि परम्पराओं की पोषक तथा रूढ़िवादी है जबकि एकाकी परिवारों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के कारण बच्चों के देखभाल, चिकित्सा तथा टीकाकरण आदि पर अब ज्यादा ध्यान दिया जाने लगा है। फिर भी, पिछड़ा क्षेत्र होने के कारण आधुनिक सुविधाएं अभी पर्याप्त नहीं हैं और इसी से एकाकी परिवारों में मृत्यु-दर संयुक्त परिवारों की अपेक्षा कुछ ही कम है।

अतः हमारे निष्कर्ष मैथ्यूशू, बेकर, नाम और हरिंगटन के निष्कर्षो से मेल खाते हैं। पर वे सभी परिवार के स्वरूप को मृत्यु-दर से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित मानते हैं। वहीं हमारे निष्कर्ष इस प्रभाव को आंशिक रूप में ही स्वीकार करते हैं।

जाति के आधार पर शिशु मृत्यु में विभिन्नताएं :-

प्रत्येक समाज में चाहे वह आदिम हो या आधुनिक, शिक्षित हो या अशिक्षित किसी न किसी प्रकार का संस्तरण पाया जाता हैं इस सामाजिक संस्तरण के भिन्न-भिन्न आधार होते हैं। इन आधारों में शिक्षा, पद, आर्थिक स्थिति, धर्म तथा जाति हैं। जिसमें से जाति, भारतीय सामाजिक संस्थाओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। प्राचीनकाल से ही भारत में जाति प्रथा का अस्तित्व है जो कि सामाजिक संस्तरण का प्रमुख आधार रहा है। समाज में सभी जातियों की सामाजिक स्थिति समान नहीं होती वरन् ऊँच-नीच का एक संस्तरण पाया जाता है। यह जन्म पर आधारित होती है। इसलिए इसमें सामान्यतः परिवर्तन सम्भव नहीं होता। पश्चिम में स्तरीकरण का आधार वर्ग रहा है किन्तु भारत में जाति एवं वर्ग दोनों ही। जाति एक ऐसा समूह है जिसकी सदस्यता जन्म पर आधारित होती है और जो अपने सदस्यों पर खान-पान, विवाह, व्यवसाय और सामाजिक सहवास सम्बन्धी प्रतिबन्ध लागू करती है। इस

परिवार का स्वरूप और शिशु मृत्यु-दर

चित्र संख्या-4.2
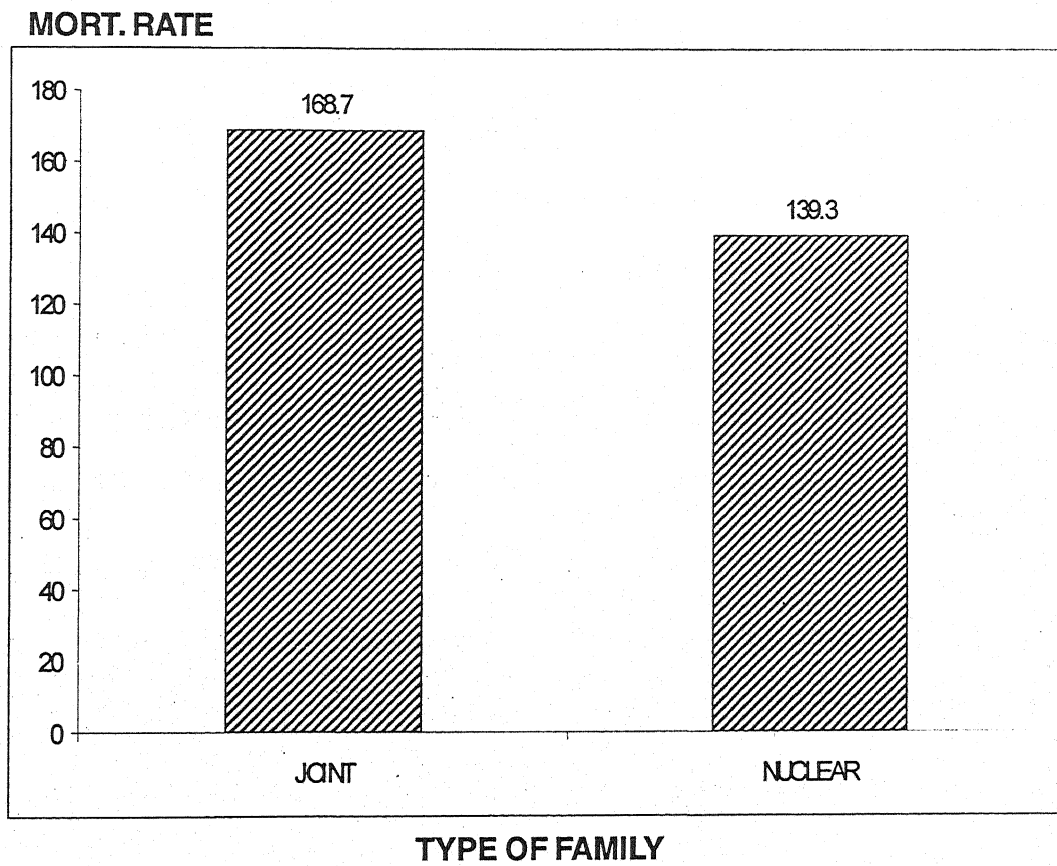
प्रकार जाति हिन्दू सामाजिक संरचना का मुख्य आधार है क्योंकि यह सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन को प्रभावित करती है।[1]

जाति एक राजनीतिक इकाई भी है क्योंकि प्रत्येक जाति व्यवहारिक आदर्श के नियम प्रतिपादित करती है और अपने संदस्यों पर उन्हें लागू भी करती है। जाति पंचायत, उसके कार्य और संगठन राजनीतिक पक्ष के प्रतीक हैं। जाति के द्वारा विधायिक एवं न्यायिक कार्य भी सम्पन्न होते रहे हैं जिसके कारण इसे राजनीतिक इकाई का रूप मिलता है।[2]

आधुनिक भारतीय सामाजिक जीवन में जाति प्रथा की कितनी ही आलोचना क्यों न की जाये, किन्तु इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि भारत में जाति प्रथा का उद्‌भव एवं विकास कुछ निश्चित उद्‌देश्यों की पूर्ति हेतु किया गया रहा होगा। आज जाति भले ही निरर्थक प्रतीत हो, किन्तु प्राचीनकाल में यह अनेक सामाजिक कार्यो का सम्पादन करती थी तथा इससे अनेक लाभ होते थे। अतः स्पष्ट है कि जाति ने भारतीय समाज के विकास और सरंक्षण में महत्वपूर्ण योगदान किया है। जाति प्रथा ने विभिन्न सामुदायिक संगठनों का एकता के सूत्र में बाँधा तथा सामाजिक तथा राष्ट्रीय एकता को स्थायी बनाया। इसके साथ, जातीय प्रतिस्पर्धा और संघर्ष को भी समाप्त किया है। भारत में जाति की व्यापकता एवं महत्व को स्पष्ट करते हुये मजूमदार ने लिखा है –"भारत में जाति व्यवस्था अनुपम है भारत विभिन्न सम्प्रदायों की परम्परात्मक स्थली है यहाँ की हवा में जाति घुली हुई है मुसलमान एवं ईसाई भी इससे अछूते नहीं है।[3]

महिलाओं के संदर्भ में जाति की महत्ता और भी बढ़ जाती है। के०एल०शर्मा एवं आर०के० मुकर्जी के अध्ययनों ने संकेत दिया है कि जाति का शिशु मृत्यु से घनिष्ट

---

(1) डा० आर०एन० सक्सेना, भारतीय समाज तथा सामाजिक संस्थायें, पेज 45।

(2) डा० सक्सेना, पेज 53।

(3) के० एल० शर्मा, दि चार्जिग रूरल स्ट्रेटीफिकेशन सिस्टम, नई दिल्ली, अरिमेन्ट लागमैन लिमिटेड, 1947

सम्बन्ध है[1]। श्रीवास्तव[2], के० एण्ड सक्सेना और अपने अध्ययन के निष्कर्षो के आधार पर इस बात को स्वीकार किया है कि उत्तर भारत के लखनऊ क्षेत्र की तरफ जाति के आधार पर विभिन्नतायें बहुत ज्यादा पायी जाती हैं। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि निम्न स्तर की जातियों में यह विभिन्नता उच्च्य स्तर की जातियों 2/3 गुना ज्यादा होती है [3] के महादेवन का भी यही मत है कि शिशु मृत्यु-दर मुस्लिम सम्प्रदाय में हिन्दु सम्प्रदाय की अपेक्षा जातीय स्तर के संदर्भ में अधिक होती है।[4]

जाति स्तर के आधार पर शिशु मृत्यु के संदर्भ में जो ऑकड़े प्राप्त हुये हैं उनका विवरण सारणी 4.3 में प्रस्तुत किया गया है ।

सारणी 4.3

जातीय स्तर के आधार पर शिशु मृत्यु-दर में विभिन्नतायें तथा शिशु जन्म-मृत्यु अनुपात

जातीय स्तर	जीवित जन्म	शिशु-मृत्यु	शिशु मृत्यु-दर	अनुपात
उच्च्य	185	24	129.72	1:12
मध्य	191	32	167.53	1:16
निम्न	234	41	175.21	1:17
योग	610	97	159.01	1:15

उपरोक्त सारणी के आधार पर जातीय स्तर के संदर्भ में शिशु मृत्यु-दर में विभिन्नताओं का अवलोकन करने पर स्पष्ट होता है कि तीनों वर्षो 1997,1998,1999 में

(1) आर०के० मुखर्जी, दि डायनामिक्स आफ रूरल सोसाइटी, बरलिन एकेडमिक विरलाज, 1957।

(2) श्रीवास्तव, के० एण्ड सक्सेना, डी०एन० (1981), इन्फेक्ट मार्टीलिटी डिफ्रेन्सियल्स इन ऐन इण्डिया कान्टेक्स, फालोअप आर्म्स हास्टिपटल डिलेवरी, जनरल आफ बायो सोसल साइंस 13, पेज 467-68।

(3) महादेवन के० (1981), कल्वर, न्यूट्रीशन एण्ड इन्फेन्ट एण्ड चाइल्ड मार्टीलिटी, ए स्टड़ी इन साउथ सेन्ट्रल इण्डिया पेज 33।

उच्च जाति स्तर के उत्तरदाताओं द्वारा कुल 185 शिशुओं को जन्म दिया गया जिसमें 24 शिशुओं की मृत्यु हो गई और शिशु मृत्यु-दर 129.72 प्रति हजार रही। इसी प्रकार मध्य जाति स्तर की उत्तरदाताओं ने कुल 191 शिशुओं को जन्म दिया जिसमें 32 शिशुओं की मृत्यु जन्म लेने वाले वर्ष के अन्त तक हो गई और शिशु मृत्यु-दर 167.53 प्रति हजार पायी गयी। इसके अतिरिक्त यदि निम्न जाति स्तर का अवलोकन करें तो पाते हैं कि इससे सम्बंधित महिलाओं ने इन्हीं तीनों वर्षों में कुल 234 शिशुओं को जन्म दिया जिसमें 41 शिशुओं की मृत्यु हो जाती है और शिशु मृत्यु-दर 175.21 प्रति हजार प्राप्त होती है।

यदि इन्ही को आनुपातिक आधार पर अवलोकन करें तो पाते हैं कि उच्च जाति स्तर में जन्म एवं मृत्यु का अनुपात 1:12 मध्य स्तर में 1:16 तथा निम्न जाति स्तर में यह 1:17 पाया गया। इस प्रकार कुल जन्म एवं मृत्यु का अनुपात 1:15 रहा अर्थात एक शिशु के जन्म होने पर 0.15 शिशुओं की मृत्यु हो जाती है ।

इस प्रकार तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि जातीय स्तर के आधार पर विभिन्नतायें दृष्टिगत होती है। उच्च जाति स्तर में शिशु मृत्यु-दर काफी कम तथा मध्य जाति स्तर में मृत्यु-दर उच्च जाति स्तर से कुछ ज्यादा निम्न जाति स्तर में शिशु मृत्यु-दर उच्च जाति की मृत्यु-दर की अपेक्षा बहुत अधिक है, इसका कारण सम्भवतः यह है कि जैसे-जैसे जाति स्तर में गिरावट आती है वैसे-वैसे सामाजिक-आर्थिक स्तर भी गिरता है जिसके फलस्वरूप निर्धनता, कुपोषण एवं निरक्षरता आदि घर कर लेती हैं तथा अन्य आवश्यक सुविधाओं का अभाव हो जाता है। कुरीतियों जन-जन तक प्रचलित हो जाती हैं यही वजह है कि जातीय स्तर का शिशु मृत्यु-दर पर विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है। जिससे हमारी परिकल्पना-माता पिता की जाति शिशु मृत्यु के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है - की पुष्टि होती है।

जातीय स्तर के आधार पर शिशु मृत्यु

चित्र संख्या- 4.3

CASTE STATUS
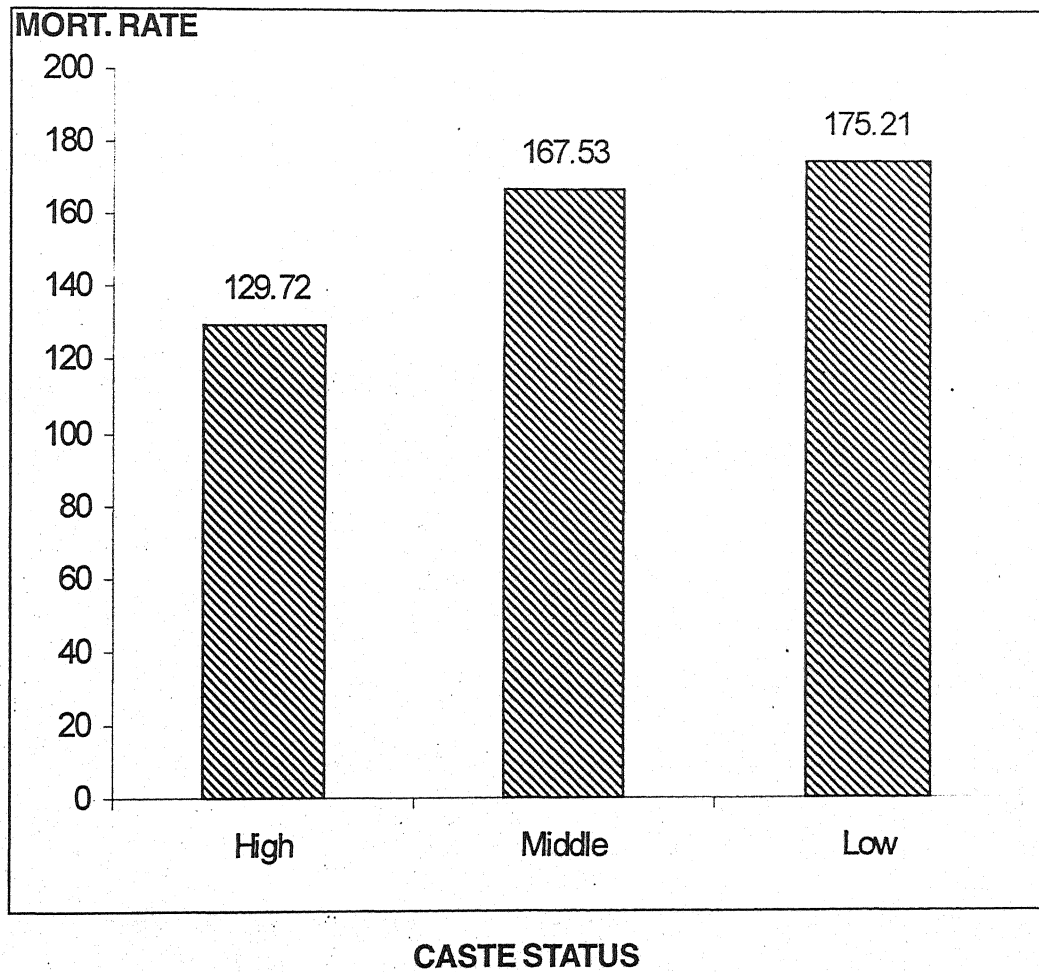
इस प्रकार जहाँ शर्मा मुकर्जी, सक्सेना, श्रीवास्तव एवं महादेवन जाति स्तर का शिशु मृत्यु से घनिष्ट सम्बन्धों का स्पष्ट करते हैं वहीं हमारे निष्कर्ष आंशिक से साम्य रखते हैं ।

माँ की शिक्षा के आधार पर शिशु मृत्यु में विभिन्नतायें :

व्यक्ति तथा समाज दोनों के ही दृष्टिकोण से शिक्षा का अपना विशिष्ट महत्व है। शिक्षा व्यक्ति को पशुत्व से मनुष्यत्व की ओर ले जाती है और इसी से समाज के लिये उसकी श्रेष्ठता का निर्धारण अपने आप हो जाता है । शिक्षा समाजीकरण की प्रक्रिया के साथ-साथ सांस्कृतिक मूल्यों के पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरण में भी सहायक होती है। सामाजिक जीवन की श्रेष्ठता का आधार भी शिक्षा ही है, चाहे वह प्राचीनकाल की परम्परागत शिक्षा हो, अथवा आधुनिक काल की व्यावसायिक शिक्षा । शिक्षा ने आज औद्योगिक विकास, आर्थिक संरचना, राजनीतिक जीवन, सामाजिक पुनर्निर्माण और व्यक्तित्व के विकास को एक दूसरे से सम्बद्ध कर दिया है ।

शिक्षा का रूप प्रत्येक युग और स्थान में समान नहीं रहा है। कभी शिक्षा को नैतिक विचारों के विकास के लिये आवश्यक माना गया तो कभी इसे सांस्कृतिक विरासत से मिलाकर धार्मिक पृष्ठभूमि में स्पष्ट किया जाता रहा । आज शिक्षा को धर्म के दायरे से बाहर लाकर तर्क प्रधान बनाया जा रहा है। परन्तु हर स्थिति में इसका उद्देश्य ज्ञान का संग्रह ही है। शिक्षा के स्परूप तथा अर्थ में भिन्नता के बावजूद इसके महत्व को नकारा नहीं जा सकता। आधुनिक युग में शिक्षा के स्तर का जनांकिकीय संघटकों से निकट का सम्बन्ध देखने को मिलता है। जन्म-दर तथा मृत्यु-दर शैक्षिक स्तर से सीधे जुड़े हुये प्रतीत होते हैं।

निरक्षरता शिशु मृत्यु के लिये अभिशाप होती है, जिस स्थान एवं समाज में जितनी निरक्षरता होती है वहॉ शिशु मृत्यु-दर के साथ ही सामान्य मृत्यु-दर भी ज्यादा होती है। निरक्षरता के कारण महिलाओं को स्वास्थ्य के रख-रखाव एवं पौष्टिक आहार की जानकारी नहीं हो पाती तथा मॉ के स्वास्थ्य के लिये क्या उचित है क्या अनुचित इसका ज्ञान भी उन्हें

नहीं होता है। प्रसवोपरान्त किस प्रकार का भोजन किया जाना चाहिए आदि बातों से वे अनभिज्ञ रहती हैं, अतः शिशु मृत्यु-दर का ऊँचा होना स्वाभाविक है। माँ की शिक्षा एवं शिशु-मृत्यु के सम्बन्ध में गण्डोत्रा,[01] रजिस्ट्रार जनरल,[02] रूजिका तथा कानिटकर [03] इस बात को मानते हैं कि माता शिक्षा शिशु मृत्यु-दर को गम्भीर रूप से प्रभावित करती है। कैडवेल और मैक्डोनल [04] ने यह निष्कर्ष दिया है कि यदि माता शिक्षित होती है तो वह सभी परम्परागत बंधनों को, जो शिशु मृत्यु-दर को बढ़ावा देते हैं, तोड़ देती है। इनके अतिरिक्त एम0ई0खान[5] ने भी उत्तर प्रदेश के जिलों के सर्वेक्षण के आधार पर अपना मत स्पष्ट किया है माता की शिक्षा शिशु मृत्यु-दर को प्रभावित करती है। हेन्स और कास्टरिका[6] भी इस बात को स्वीक्रार करते हैं कि उच्च शिक्षा प्राप्त की हुई महिलाओं में शिशु मृत्यु-दर बहुत कम होती है और निरक्षर महिलाओं में शिशु मृत्यु-दर बहुत अधिक होती है ।

---

1. गण्डोत्रा, एम0एस0दास, एण्ड भट्ट, आर0बी0 (1980), फैक्टर्स, इन्फ्ल्यूवेशिंग नियोनेटल मार्टीलिटी इन ऐन इण्डिया, कम्युनिटी डेमोग्राफी इण्डिया : 9 (182) पेज 231-244।
2. इण्डिया : रजिस्ट्रार जनरल (1983), ए सर्वे आन इन्फेन्ट एण्ड चाइल्ट मार्टीलिटी , 1979 न्यू देलही, मिनिस्टी आफ होम एफेयर।
3. रुजिका, एल0टी0 एण्ड कानिटकर, टी0, (1972), इन्फेन्ट मार्टीलिटी इन एन अरबन सेटिंग, दि केश स्टड़ी आफ ग्रेटर बाम्बे, पेज 557-65।
4. कैडवेल जान, सी0 एण्ड मैक्डोल, पी0 (1981), इन्फल्यूवेंश आफ मेटरनल एजूकेशनन आन इन्फेन्ट एण्ड चाइल्ड मार्टीलिटी, लेबिल एण्ड काजेज, इन इण्टरनेशनल पापुलेशन कान्फ्रेन्स प्रोसीडिंग एण्ड सेलेक्टेड पेपर मनीला, 1981, लीज, आई0यू0एस0एस0पी0 2 पेज 79-85।
5. खान, एम0ई0, (1980), इन्फेन्ट मार्टीलिट इन उत्तर प्रदेश, ए माइक्रोलेबिल स्टड़ी, इन इन्फेन्ट मार्टीलिटी इन इण्डिया, जैन एण्ड विसारिया लन्दन, पेज 235।
6. हेन्स, मिकाइल, आर0 एण्ड एम0टी0 रोजर, सी0 (1982)डिफरेन्सियल इन्फेन्ट एण्ड चालइल्ट मार्टीलिटी एण्ड कास्टरिका 1968-1973 पापुलेशन स्टड़ी 36 (1) पेज 31-43।

वर्तमान अध्ययन से माँ की शिक्षा को आधार मानकर शिशु मृत्यु के जो आंकड़े प्राप्त हुये हैं उन्हे 4.4 में प्रस्तुत किया गया है ।

सारणी 4.4

मॉ के शैक्षिक स्तर के आधार पर शिशु मृत्यु में विभिन्नतायें तथा शिशु जन्म मृत्यु-अनुपात

उत्तरदाता का	जीवित जन्म	शिशु मृत्यु	शिशु मृत्यु-दर	अनुपात
निरक्षर	304	54	177.63	1:18
हाईस्कूल से कम	193	32	165.80	1:17
हाईस्कूल व उससे अधिक	113	11	97.34	1:10
योग	610	97	159.01	1:15

सारणी में दर्शाये हुये आँकड़ों के आधार पर उत्तरदाताओं के शैक्षिक स्तर के संदर्भ में शिशु मृत्यु में विभिन्नतायें अवलोकन करने पर पता चलता है कि वर्ष 1997,1998,1999 में ऐसी महिलायें जो निरक्षर थीं, ने कुल 304 शिशुओं को जन्म दिया जिसमें से 54 शिशुओं की मृत्यु उनकी प्रथम वर्षगांठ के पूर्व हो गई इनका शिशु मृत्यु दर 177.63 प्रति हजार रहा। इसी प्रकार हाईस्कूल से कम शिक्षा प्राप्त महिलाओं ने इन्ही वर्षो में 193 शिशुओं का जन्म दिया जिसमें से 32 शिशुओं की मृत्यु हो गयी इस प्रकार इनका शिशु मृत्यु-दर 165.80 प्रति हजार प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त, वे महिलायें जो हाईस्कूल व उसके अधिक शिक्षा प्राप्त थीं उन्होने कुल 113 शिशुओं को जन्म दिया जिसमें से 11 शिशु जन्म लेने वर्ष अन्त तक मृत हो गये और इनमें शिशु मृत्यु-दर 97.34 प्रति हजार पाया गया ।

माँ की शिक्षा और शिशु मृत्यु

EDUCATIONAL STATUS OF RESPONDENT
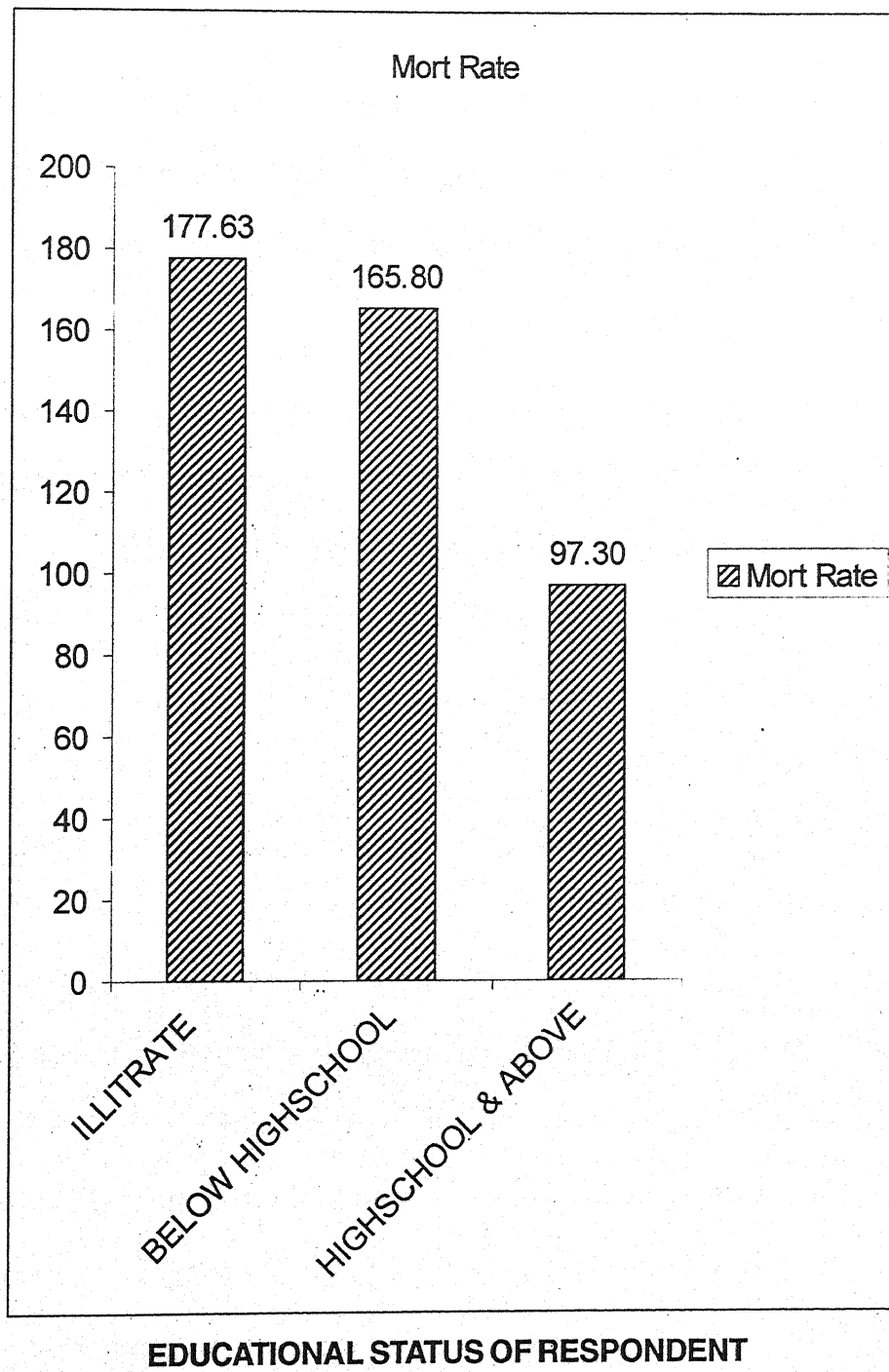
चित्र संख्या 4.4

यदि नहीं का आनुपातिक विश्लेषण करें तो स्पष्ट होता है कि निरक्षर महिलाओं में शिशु जन्म एवं मृत्यु का अनुपात 1:18 तथा हाईस्कूल से कम शिक्षा प्राप्त महिलाओं में यह 1:17 व हाईस्कूल से उच्च्य शिक्षा प्राप्त में 1:10 का अनुपात पाया गया ।

सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि शिशु मृत्यु-दर निरक्षर महिलाओं में सर्वाधिक होती है, जैसे-जैसे शिक्षा का स्तर ऊँचा होता जाता है शिशु मृत्यु-दर घटती जाती है और उच्च्य शिक्षा प्राप्त महिलाओं में यह सबसे कम होती है। जिससे हमारी परिकल्पना मॉ का साक्षरता स्तर शिशु मृत्यु के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है - की पुष्टि होती है ।

इस प्रकार शिक्षा का शिशु मृत्यु पर बहुत अधिक प्रभाव दिखाई पड़ता है । ऐसा सम्भवतः इस लिए है कि शिक्षित महिलायें पौष्टिक आहार, टीकाकरण, नीम-हकीमों से बचाव, डाक्टरी इलाज, सफाई आदि के प्रति सतर्क रहती हैं । साथ ही, स्वास्थ्य के रख-रखाव, अच्छे स्वास्थ्य के लिये क्या उचित है क्या अनुचित एवं प्रसव के उपरान्त किस प्रकार का भोजन आदि किया जाना चाहिए, के प्रति अधिक जागरूक हो जाती हैं। साथ ही, वे ऐसे सभी परम्परागत बन्धनों जैसे-घर में प्रसव कराना, प्रसूता को अंधकार में रखना, पुराने परम्परागत औजारों का नाल काटने में प्रयोग, नवजात शिशु को पुराने कपड़े पहनाना आदि को तोड़ देती है, जो शिशु मृत्यु को बढ़ावा देते है। जिससे शिशु कुपोषण का शिकार होने से बच जाते हैं। यही कारण है कि जहाँ निरक्षरता कम होती है अर्थात महिलाओं का शिक्षा का स्तर जैसे-जैसे बढ़ता जाता है शिशु मृत्यु-दर में गिरावट आती जाती है । परिणाम स्वरूप शैक्षिक स्तर जैसे-जैसे बढ़ता जाता है शिशु मृत्यु-दर अधिक परिलक्षित होता है । यदि आनुपातिक दृष्टि से अवलोकन करते हैं तो निरक्षर महिलाओं में जन्म एवं मृत्यु का अनुपात 1:18 हाईस्कूल से कम शिक्षित महिलाओं में 1:17 एवं हाईस्कूल व उससे अधिक शिक्षा प्राप्त महिलाओं में यह 1:10 रहा । इस प्रकार हमारे निष्कर्ष गण्डोत्रा, रूजिका, कानिटकर, मैक्डोनल, एम०ई०खान एवं हेन्स कास्टारिका से साम्य रखते हैं।

पिता के शैक्षिक स्तर के आधार पर शिशु मृत्यु-दर में विभिन्नतायें :

यह विश्वास करने योग्य है कि यदि समाज में महिलायें निरक्षर हों तो शिशु मृत्यु का दबाव बना रहता है। लेकिन जिस समाज में पुरूष वर्ग भी निरक्षर हो उस समाज में शिशु मृत्यु अपना घर बना लेती है। क्योकि पति की शिक्षा का परिवार पर व्यापक प्रभाव पड़ता है साथ ही, अशिक्षित पत्नी को भी सही दिशा देने में समर्थ होता है। शिशु मृत्यु के सम्बन्ध माता-पिता की शिक्षा का विशेष उल्लेख करते हुये एम०एम०गण्डोत्रा, एन०दास और आर०बी०भट्ट [01] ने लिखा है कि यदि परिवार में माता-पिता शिक्षित है तो शिशु मृत्यु-दर को काफी हद तक रोका जा सकता है। यही मत रूजिका और कानिटकर एवं जानकैडवेल और मैक्डोनल का भी है ।

वर्तमान अध्ययन में पिता की शिक्षा का शिशु मृत्यु-दर में प्रभाव देखने के लिये उत्तरदाताओं के पति की शिक्षा के आधार पर शिशु जन्म एवं मृत्यु के ऑकड़े एकत्र किये गये हैं जिन्हें सारणी 4.5 में प्रस्तुत किया गया है।

सारणी 4.5

पिता की शिक्षा के आधार पर शिशु मृत्यु में विभिन्नतायें एवं शिशु जन्म मृत्यु-अनुपात

पिता का शैक्षिक स्तर	जीवित जन्म	शिशु मृत्यु	शिशु मृत्यु-दर	अनुपात
निरक्षर	287	55	191.63	1:20
हाईस्कूल से कम	163	26	159.51	1:15
हाईस्कूल व उससे अधिक	160	16	100.00	1:10
योग	610	97	159.01	1:15

(1) गण्डोत्रा, एम०एम०, दास एण्ड आर०बी० भट्ट, (1980) , फैक्ट्स इन्फ्ल्यूवेंशिंग नियोनेटल मार्टलिटी इन इण्डिया, कम्प्यूनिटी डेमाग्राफी इण्डिया, 9 (182) पेज 231-244।

सारणी के अवलोकन से पता चलता है कि उत्तरदाता जिनके पति निरक्षर हैं उन्होने वर्ष 1997,1998,1999 में कुल 287 शिशुओं को जन्म दिया जिसमें से 55 शिशुओं की मृत्यु उनकी प्रथम वर्षगांठ के पूर्व ही हो गयी । इस प्रकार इनमें शिशु मृत्यु-दर 191.63 प्रति हजार रही तथा वे उत्तरदाता जिनके पतियों का शैक्षिक स्तर हाईस्कूल से कम था उन्होने इन्ही वर्षो 163 शिशुओं का जन्म दिया जिसमें 26 शिशुओं की मृत्यु उनकी प्रथम सालगिरह मनाने के पूर्व हो गयी और शिशु मृत्यु-दर 159.51 प्रति हजार पायी गयी। इसी प्रकार वे उत्तरदाता जिनके पति हाईस्कूल व उससे अधिक शिक्षा प्राप्त किये हुये थे, ने उन्ही वर्षो में 160 शिशुओं को जन्म दिया जिसमें से 16 शिशुओं की मृत्यु जन्म लेने वाले वर्ष के अन्त तक हो गयी तथा इनमें शिशु मृत्यु-दर 100 प्रति हजार पायी गयी।

यदि इन्ही का आनुपातिक आधार पर अध्ययन करें तो पाते हैं कि जिनके पति निरक्षर थे उनके शिशुओं में जन्म एवं मृत्यु का अनुपात 1:20 रहा तथा जिनके पति हाईस्कूल से कम शिक्षा प्राप्त थे उनमें यह 1:15 पाया गया। साथ ही जिनके पति हाईस्कून व उससे अधिक शिक्षा प्राप्त थे उनमें यह अनुपात 1:10 मिला।

तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि शिक्षा का शिशु मृत्यु-दर पर व्यापक प्रभाव है। निरक्षरों में यह सर्वाधिक है, परन्तु जैसे-जैसे शिक्षा का स्तर बढ़ता जाता है वैसे-वैसे शिशु मृत्यु का दबाव भी कम होता जाता है और उच्च शिक्षा प्राप्त परिवारों में यह सबसे कम पायी जाती है जिससे हमारी परिकल्ना पिता का साक्षरता स्तर शिशु मृत्यु के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है की पुष्टि होती है। ऐसा सम्भवतः इसलिए है कि जिन परिवारों के पुरूष शिक्षित एवं उच्च्य शिक्षित होते हैं , वे अपने परिवार के स्वास्थ्य के संदर्भ में जागरूक होते हैं वे पौष्टिक आहार, टीकाकरण, डाक्टरी इलाज, स्वच्छता सफाई, प्रसव सम्बन्धी उत्तम सुविधायें, शिशु को कुपोषण आदि से बचाने के संदर्भ में अधिक सतर्क रहते हैं यदि माँ अशिक्षित या कम पढ़ी लिखी भी हो तो भी शिशु मृत्यु का दबाव कम होता जाता है। यही कारण है कि जैसे शिक्षा का स्तर बढ़ता है, शिशु मृत्यु का दबाव कम होता जाता है। इस प्रकार हमारे निष्कर्ष गण्डोत्रा, भट्ट, रूजिका, कानिटकर, जानकैडवेल, मैक्डोनल आदि से पूर्णतः साम्य रखते हैं।

पिता की शिक्षा और शिशु-मृत्यु

चित्र संख्या 4.5
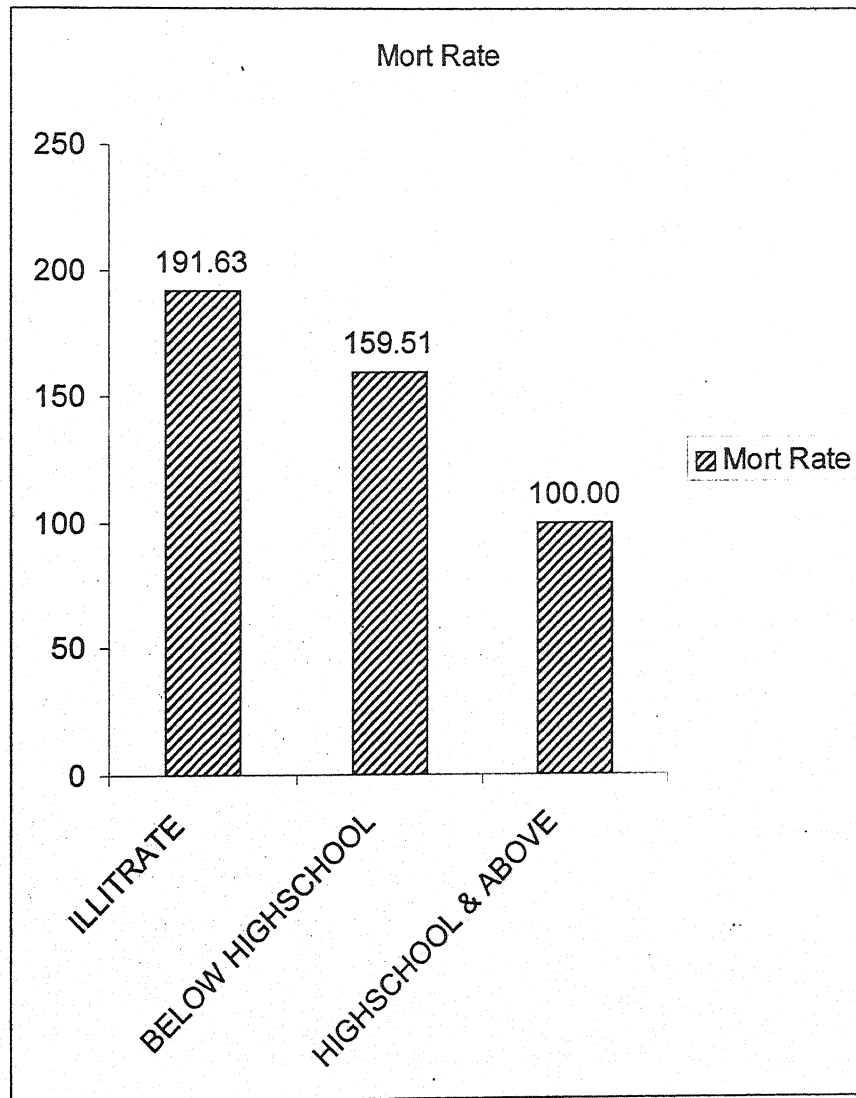
EDUCATIONAL STATUS OF RESPONDENTS HUSBAND

पिता के व्यवसाय के आधार पर शिशु मृत्यु में विभिन्नतायें :

किसी भी राष्ट्र समाज अथवा समुदाय के सामाजिक-आर्थिक विकास को उसकी जनसंख्या के व्यावसायिक वितरण के माध्यम से जाना जा सकता है। सामान्यतः जिस समुदाय का अधिकांश भाग कृषि पर आश्रित होता है वह आर्थिक रूप से पिछड़ा माना जाता है। इसके विपरीत, उद्योगों पर आश्रित जनसंख्या आर्थिक विकास को इंगित करती है। जो आर्थिक दृष्टि से जितना विकसित व सम्पन्न होगा वहाँ शिशु मृत्यु-दर उतनी ही कम होगी। आर्थिक विकास के कारण लोगों को पौष्टिक आहार प्राप्त होता है, चिकित्सीय सुविधायें मिलती हैं और इन दोनो का मिला-जुला मृत्यु-दर को कम करने में सहायक होता है । इस प्रकार व्यवसाय मृत्यु-दर को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है।

यह जानने के लिये कि पिता के व्यवसाय का शिशु मृत्यु-दर पर क्या प्रभाव पड़ता है, सम्बंधित तथ्यों को संग्रहित किया गया, जिन्हें सारणी 4.6 में प्रस्तुत किया गया है।

सारणी 4.6

पिता के व्यवसाय के आधार पर शिशु मृत्यु-दर में विभिन्नतायें

तथा शिशु जन्म मृत्यु अनुपात

पिता का व्यवसाय	जीवित जन्म	शिशु मृत्यु	शिशु मृत्यु-दर	अनुपात
कृषि पर आधारित	438	76	173.51	1:17
कृषि के अतिरिक्त	172	21	122.09	1:13
योग	610	97	159.01	1:15

सारणी के अवलोकन से ज्ञात होता है कि वे उत्तरदाता जिनके पति कृषि आधारित व्यवसाय में संलग्न थे, ने तीन क्रमिक वर्षो 1997,1998,1999 में कुल 438 शिशुओं को

पिता का व्यवसाय और शिशु मृत्यु

चित्र संख्या 4.6

FATHER'S OCCUPATION
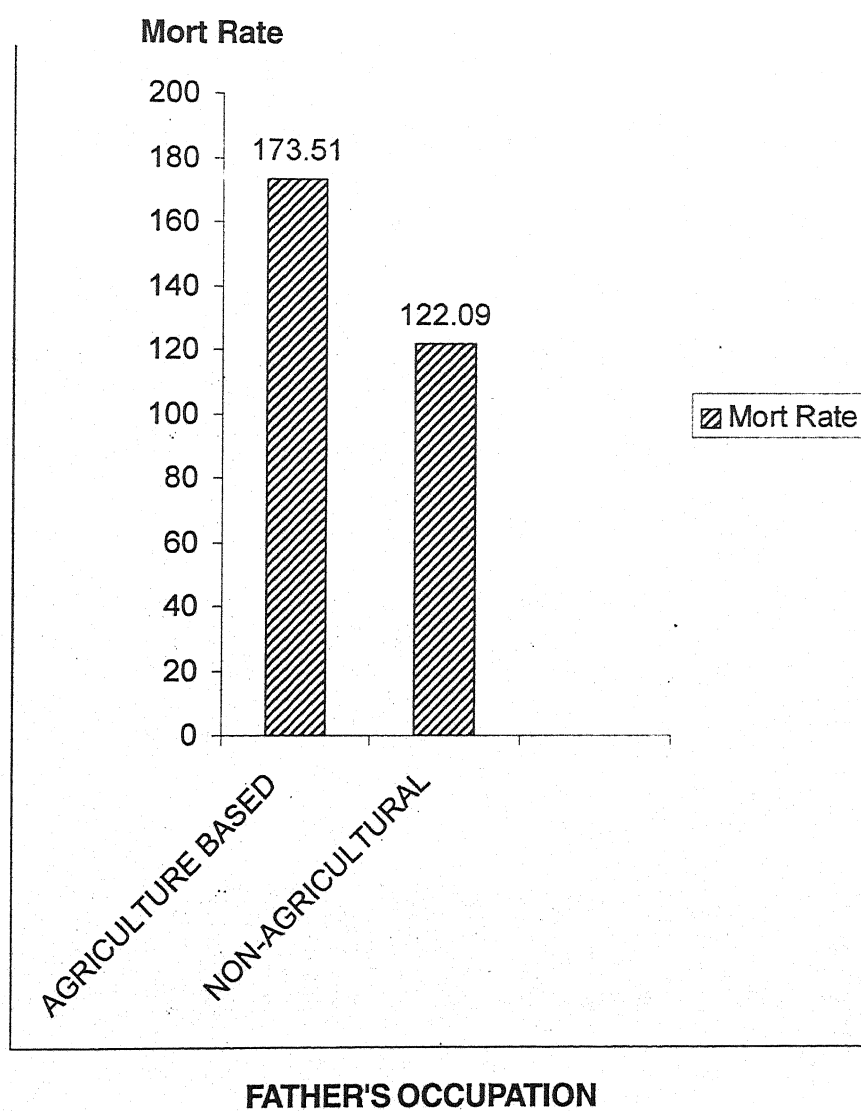
जन्म दिया जिसमें से 76 शिशु अपनी प्रथम साल गिरह के पूर्व ही मृत हो गये । इनमें शिशु मृत्यु-दर 173.51 प्रति हजार रही। इसी प्रकार, वे उत्तरदाता जिनके पतियों का व्यवसाय कृषि के अतिरिक्त था उन्होने इन्ही तीनों वर्षो में कुल 172 शिशुओं को जन्म दिया जिसमें से 21 शिशु जन्म लेने वाले वर्ष के अन्त तक मृत हो गये और इनमें शिशु मृत्यु-दर 122.09 प्रति हजार पायी गई।

यदि इन्ही को आनुपातिक आधार पर प्रस्तुत करें तो वे उत्तरदाता जिनके पतियों का व्यवसाय कृषि पर आधारित था उनके शिशुओं में जन्म एवं मृत्यु का अनुपात 1:17 रहा अर्थात एक शिशु के जन्म लेने पर 17 शिशु मृत हो जाते है। इसी प्रकार व उत्तरदाता जिनके पति कृषि के अतिरिक्त व्यवसायों में संलग्न है उनके जन्म एवं मृत्यु में अनुपात 1:13 पाया गया।

प्रस्तुत तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि जिन परिवारों के मुखिया कृषि के अतिरिक्त व्यवसायों, नौकरी आदि में संलग्न है वहॉ शिशु मृत्यु-दर कम पायी जाती है किन्तु साथ ही साथ यह भी स्पष्ट होता है कि कृषि से सम्बंधित एवं कृषि के अतिरिक्त व्यवसायों को अपनायें हुये परिवारों की शिशु मृत्यु-दर में कोई विशेष अन्तर दिखायी नहीं देता है। अतः हम कह सकते हैं कि पिता के व्यवसाय का शिशु मृत्यु-दर पर अल्प प्रभाव ही परिलक्षित होता है। सांख्यकीय विश्लेषण से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है।

भू-स्वामित्व के आधार पर शिशु मृत्यु मे विभिन्नतायें :

कृषि पर आश्रित समाज उन्नति की सीमा को छू नहीं पाता । दैवीय विपदाओं का उसे शिकार होना पड़ता है। जहॉ कृषि भूमि असिचित होती है वहॉ सम्पूर्ण कृषि बरसात पर निर्भर करती है। अतः कृषि की प्रधानता होते हुये भी लोग निर्धनता का जीवन यापन करते है। अतः ऐसे निर्धत समाज में जन्म लेने वाले शिशु कुपोषण एवं स्वास्थ्य सेवाओं के अभाव के कारण अल्पायु में ही काल-कवलित हो जाते है और इस प्रकार शिशु मृत्यु दर बढ़ जाती है।

भू-स्वामित्व का शिशु मृत्यु-दर पर प्रभाव जानने के लिये सम्बंधित तथ्य एकत्रित किये गये है जो सारणी 4.7 में प्रस्तुत किये गये हैं।

सारणी 4.7

भू-स्वामित्व के आधार पर शिशु मृत्यु-दर में विभिन्नतायें

एवं शिशु जन्म-मृत्यु अनुपात

भू-स्वामित्व	जीवित जन्म	शिशु मृत्यु	शिशु मृत्यु-दर	अनुपात
भूमिहीन	154	27	175.32	1:18
0-10 एकड़	317	51	160.88	1:16
10-20 एकड़	139	19	136.69	1:13
योग	610	97	159.01	1:15

सारणी के अवलोकन से ज्ञात होता है कि ऐसी उत्तरदाताओं, जिनके परिवार में खेती योग्य भूमि नहीं है, ने तीन क्रमिक वर्षो 1997,1998,1999 में कुल 154 शिशुओं को जन्म दिया जिसमें से 27 शिशु जन्म लेने वाले वर्ष के अन्त तक मृत हो गये। इनमें मृत्यु-दर 175.32 प्रति हजार रही। इसी प्रकार, वे महिलायें जिनके परिवार के पास 10 एकड़ तक भूमि है, ने इन्ही तीनो वर्षो में 317 शिशुओं को जन्म दिया जिसमें से 51 शिशुओं की मृत्यु उनकी प्रथम सालगिरह के पूर्व ही हो गयी। इनमें शिशु मृत्यु-दर 160.88 प्रति हजार पायी गई। इसी क्रम में वे उत्तरदाता, जिनके परिवार का भू-स्वामित्व 10 से 20 एकड़ तक का है, ने उन्ही तीनो वर्षो में कुल 139 शिशुओं को जन्म दिया जिसमें से 19 शिशुओं की मृत्यु उनकी प्रथम वर्षगांठ के पूर्व ही हो गई । इनमें शिशु मृत्यु-दर 136.69 प्रति हजार रही।

भू-स्वामित्व के आधार पर शिशु-मृत्यु

चित्र संख्या-4.7

LAND OWNERSHIP
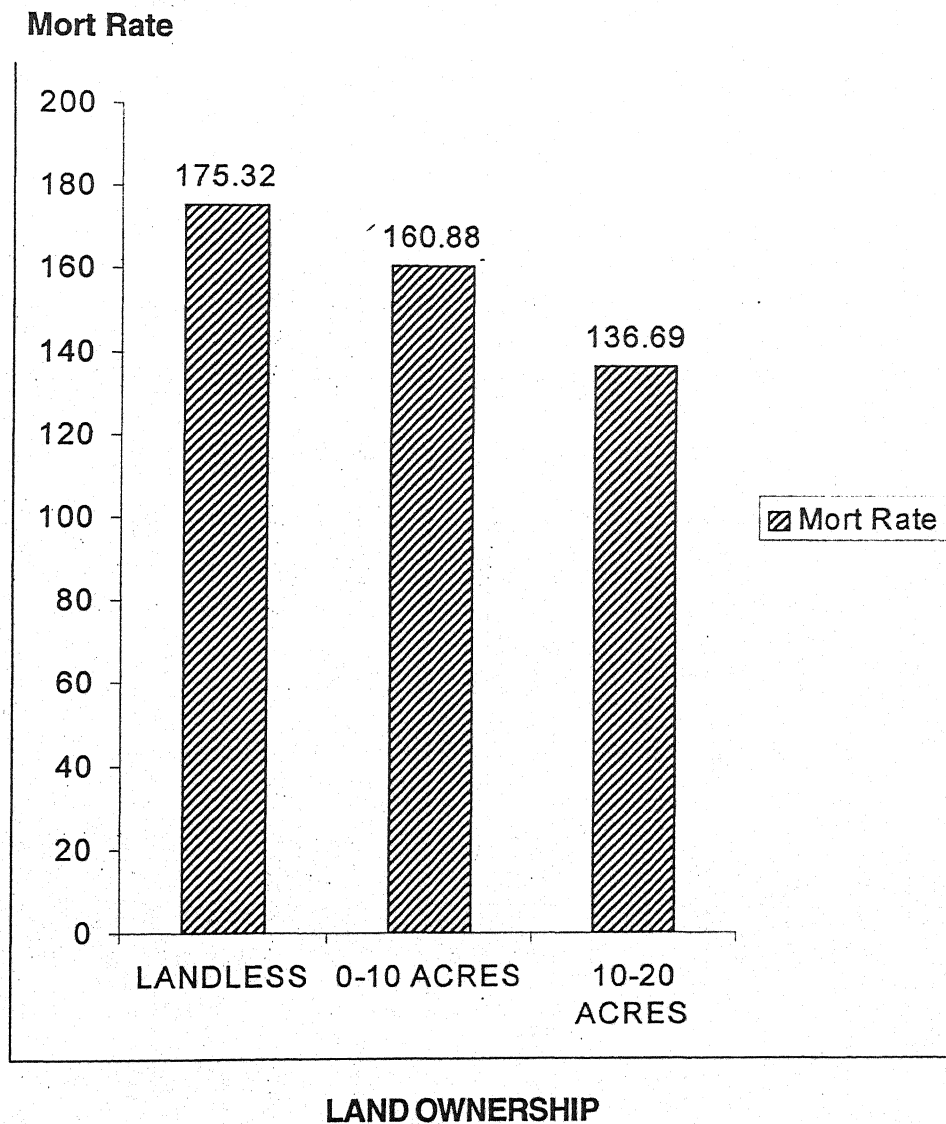
यदि भू-स्वामित्व की दृष्टि से शिशु मृत्यु की विभिन्नताओं को आनुपातिक आधार पर प्रस्तुत करें तो पाते है कि भूमिहीन परिवारों के उत्तरदाताओं के शिशुओ में जन्म एवं मृत्यु का अनुपात 1:18 है अर्थात एक शिशु के पैदा होने पर 0.18 शिशुओं की मृत्यु हो जाती है। वे उत्तरदाता जिनके परिवार में भूमि 10 एकड़ तक है, उनके जीवित जन्मों में जन्म एवं मृत्यु का अनुपात 1:16 है। इसी प्रकार उन उत्तरदाताओं, जिनके परिवार का भू-स्वामित्व 20 एकड़ तक है उनके जीवित जन्मों में एवं मृत्यु का अनुपात 1:13 प्राप्त होता है।

इस प्रकार तथ्यों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि सबसे कम मृत्यु-दर सर्वाधिक भू-स्वामित्व वाले परिवारों में पायी जाती है, जबकि 10 एकड़ तक भूमि के स्वामियों एवं भूमिहीनों में शिशु मृत्यु-दरों में कोई विशेष अन्तर नहीं है । फिर भी, यह स्पष्ट है कि सर्वाधिक मृत्यु-दर भूमिहीन परिवारों में है। जिसका कारण सम्भवतः यह हो सकता है कि भूमिहीन व कम भूमि वाले परिवारों का जीवन स्तर अत्यधिक निम्न होता है उनमें रहन-सहन खान-पान एवं चिकित्सीय सुविधा धनाभाव के कारण उपलब्ध नहीं हो पाती है। साथ ही, उनमें शिक्षा का भी अभाव होता है शिक्षा के अभाव के कारण भी वे अपने बच्चों के स्वास्थ्य के प्रति सचेत नहीं रहते, यही कारण है कि कम भूमि वाले परिवारों में शिशु मृत्यु-दर अधिक पायी जाती है फिर भी, भू-स्वामित्व का शिशु मृत्यु पर प्रभाव इतना कम है कि उसे महत्वपूर्ण नही कहा जा सकता ।

विवाह के समय माँ की आयु के आधार पर शिशु मृत्यु में विभिन्नतायें :

स्त्रियों की विवाह के समय आयु शिशु मृत्यु-दर को प्रभावित करती है। यदि छोटी आयु में लड़कियों का विवाह कर दिया जाता है तो वे छोटी आयु में ही माँ बन जाती हैं। कम आयु में शिशु को जन्म देना, शिशु के लिये घातक होता है। इसका कारण यह कि स्त्री के शरीर का पूर्ण विकास नही हो पाता जिसका प्रभाव बच्चे पर पड़ता है। बच्चा गर्भकाल

में ही दुर्बलता का शिकार हो जाता है। दुर्बलता ही अस्वस्थता को जन्म देती है जो कि अन्ततः शिशु मृत्यु का कारण बनती है।

विवाह के समय आयु और शिशु मृत्यु के संदर्भ में खान [01] ने निष्कर्षो के आधार पर लिखा है कि विवाह के समय गाता की उम्र का शिशु मृत्यु पर गहरा प्रभाव पड़ता है यदि माँ की आयु 19 वर्ष से कम है तो शिशु मृत्यु-दर बढ़ जाती है और यदि विवाह के समय माता की उम्र 20 और 30 के मध्य है तो शिशु मृत्यु-दर काफी कम हो जाती है।

ओमरान और स्टैण्डली,[02] इस्लाम[03], पथीब्राइड[04], साइमन[05], और महादेवन[06] भी इस बात को स्वीकार करते है। कि विवाह के समय माँ की आयु का शिशु मृत्यु-दर से काफी गहरा सम्बन्ध होता है। इसका प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से शिशु मृत्यु-दर पर प्रभाव पड़ता है।

---

(1) खान, एम०ई० (1980), इन्फेन्ट मार्टीलिटी इन उत्तर प्रदेश, ए माइक्रो लेबिल स्टड़ी, इन इन्फेन्ट मार्टीलिटी इन इण्डिया, डिफरेन्सेस एण्ड डिटरमिनेन्ट्स, अनुराधाः के० जैन एण्ड प्रवीन विसारिया, लन्दन, पेज 229-30।

(2) ओमरान, ए०आर० एण्ड स्टैण्डली, सी०सी०, (1976), फमिली माफरमेशन पैटर्न एण्ड हेल्थ, जनेवा, वर्थ हेल्थ आर्गनाइजेशन, पेज 335।

(3) इस्लाम, एम०एस०, (1982), इन्फेन्ट मार्टीलिटी इन रूरल बांग्लादेश, एन एनालिसिस आफ काजेज ड्यूरिंग नियोनेटल एण्ड पोस्ट नियोनेटल पीरिएड, जनरल आफ ट्रापिकल पैडियाट्रिक, दिसम्बर 28 (6) पेज 296-98।

(4) पैथीब्राइड, (1974), एण्ड ए०एम० फैरहा, चाइल्ड मार्टीलिटी एण्ड इट्स कोरिलेट्स इन सूडान, डाक्टोरल थीसिस, पेज 33।

(5) साइमन, जार्ज बी०, वी०डी० मिश्रा, (1979) सम एक्स्पेक्ट्स आफ इन्फेन्ट एण्ड चाइल्ड हूड मार्टीलिटी इन रूरल नार्थ, इण्डिया : सोसल एक्शन, वाल्यूम 29, पेज 249-269।

(6) महादेवन, के० (1981), कल्वर न्यूट्रीशन एण्ड इन्फेन्ट एण्ड चाइल्ड मार्टीलिटी, ए स्टडी इन साउथ सेन्ट्रल इण्डिया, मेमियों, पेज 38।

इसी प्रकार राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी ने 1970 में यह रिपोर्ट दी थी कि यदि विवाह के समय माता की 17 वर्ष से कम रहती है तो उससे शिशु मृत्यु-दर की सम्भावना ज्यादा होगी इस्लाम ने अपने बांगलादेश के सर्वेक्षण के बाद जो रिपोर्ट प्रस्तुत की उस आधार पर यह कहा जा सकता है कि 20 वर्ष से कम आयु वाली माताओं द्वारा पैदा किये गये शिशुओं में नियोनेटल मृत्यु ज्यादा होने की सम्भावना होती है। इसे तभी रोका जा सकता है जब लड़कियों का विवाह 20 से 24 अथवा 25 से 29 वर्ष के मध्य किया जाये।

विवाह के समय माँ की आयु का शिशु मृत्यु पर प्रभाव जानने के लिये सम्बंधित तथ्य एकत्रित किये गये है जिन्हें सारणी 4.8 में प्रस्तुत किया गया है।

सारणी 4.8

विवाह के समय माँ की आयु के आधार पर शिशु मृत्यु में विभिन्नतायें

तथा शिशु जन्म मृत्यु-अनुपात

विवाह के समय आयु	जीवित जन्म	शिशु मृत्यु	शिशु मृत्यु की दर	अनुपात
10-15	49	11	224.48	1:22
16-21	318	54	169.81	1:16
21+	243	32	131.68	1:13
योग	610	97	159.01	1:15

सारणी के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि ऐसे उत्तरताओं जिनका विवाह 10-15 वर्ष आयु में हुआ है, ने तीन क्रमिक वर्षो 1997, 1998, 1999 में कुल 49 शिशुओं को जन्म दिया जिसमें से 11 शिशु जन्म लेने वाले वर्ष के अन्त तक मृत हो गये इनमें शिशु मृत्यु-दर 224.48 प्रति हजार रही । इसी प्रकार, वे महिलायें जिनकी विवाह के समय आयु 16-21 वर्ष के मध्य थी, ने उन्ही वर्षो में कुल 318 शिशुओं को जन्म दिया जिसमें से 54 शिशुओं की मृत्यु उनकी प्रथम वर्षगांठ के पूर्व हो गयी इस प्रकार इनमें शिशु मृत्यु-दर 169.81 प्रति

विवाह के समय माँ की आयु एवं शिशु-मृत्यु

चित्र संख्या 4.8
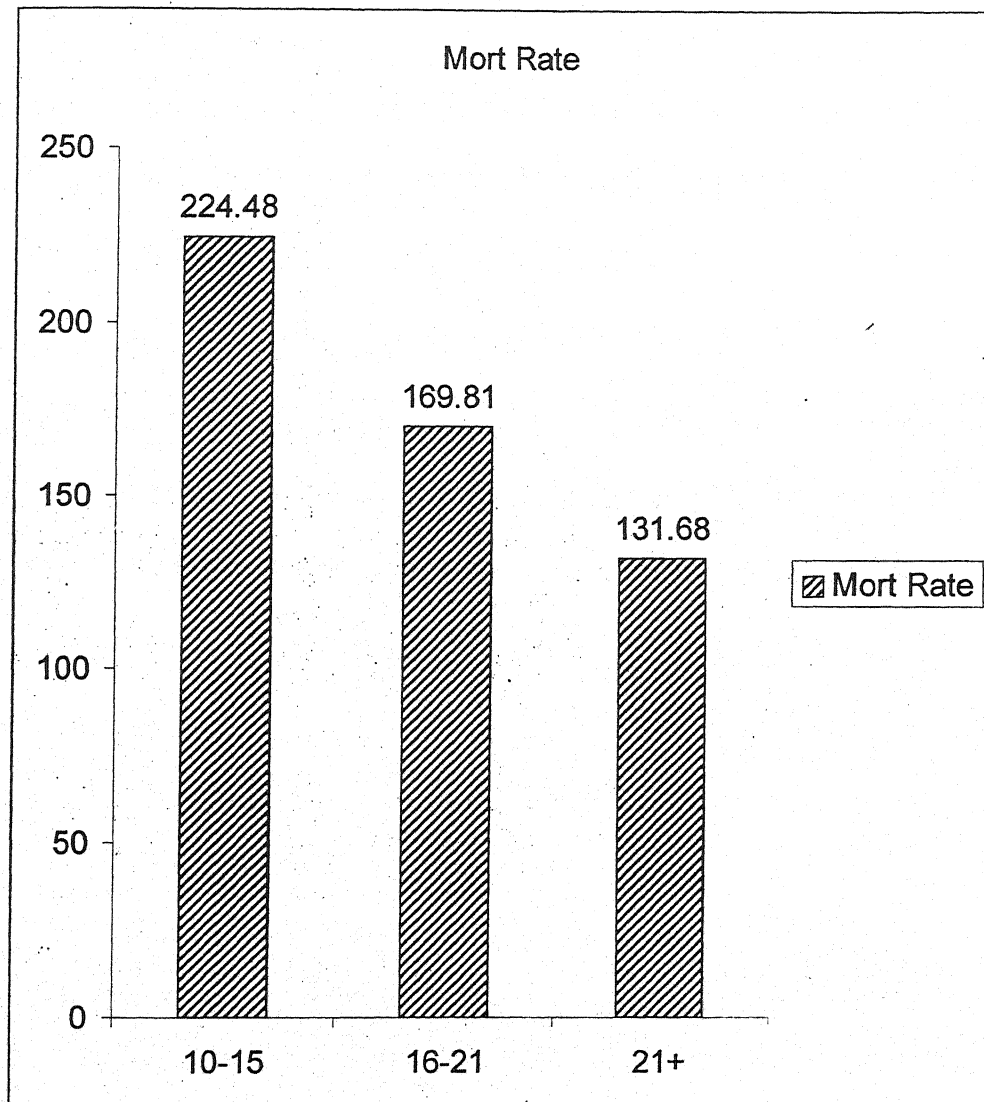
Mothers Age at the Time of Marriage

हजार पायी गयी । इसी क्रम में, यदि उन महिलाओं को देखा जाये जिनकी विवाह के समय आयु 21 वर्ष के ऊपर थी उन्होने इन्ही वर्षो में कुल 243 शिशुओं को जन्म दिया जिसमे से 32 शिशुओं की मृत्यु जन्म लेने वाले वर्ष के अन्त तक हो गई, इस प्रकार इनमें शिशु मृत्यु-दर 131.68 प्रति हजार रही।

यदि आनुपातिक आधार पर अवलोकन करें तो पाते है कि जिन महिलाओं का विवाह 10-15 वर्ष आयु में हुआ था उनमें जन्म एवं मृत्यु का अनुपात 1:22 है अर्थात एक शिशु का जन्म होने पर 0.22 शिशु मृत हो जाते हैं। साथ ही, जिन स्त्रियों की विवाह के समय आयु 16-21 वर्ष थी उनमें यह अनुपात 1:16 पाया गया तथा उन महिलाओं में जिनकी विवाह के समय आयु 21 वर्ष के ऊपर थी उनमें यह अनुपात 1:13 रहा।

तथ्यों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि स्त्रियों की विवाह के समय आयु शिशु मृत्यु-दर को प्रभावित करती है। इसका कारण सम्भवतः यह है कि क्षेत्र में अधिकांश स्त्रियों के विवाह 19 वर्ष की आयु से पूर्व ही सम्पन्न हो गये तथा कम संख्या में स्त्रियों के विवाह 20 वर्ष और उसके बाद सम्पन्न हुये तथा कम उम्र में विवाह होने से लड़की का शरीर परिपक्व नही हो पाता जिससे वह स्वस्थ्य शिशु को जन्म नही दे पाती जिससे ऐसी महिलाओं के जन्म लेने वाले शिशुओं के मृत्यु की संभावना बनी रहती है।

प्रसव के समय सहायकों के आधार पर शिशु मृत्यु में विभिन्नतायें :

समाज में फैली हुयी कुरीतियों शिक्षा के अभाव की द्योतक होती है। आज का परिवेश विकास की ओर उन्मुख है किन्तु फिर भी पूर्ण रूप से विकसित नहीं है। आज भी जन्म के समय, विशेषकर ग्रामीण अंचलों में, ज्यादातर प्रसव दाइयों या अप्रशिक्षित महिलाओं द्वारा कराये जाते हैं। इन दाइयों व अप्रशिक्षित महिलाओं को चिकित्साशास्त्र व शरीर विज्ञान का कोई ज्ञान न होते हुये भी अधिकांश प्रसव इन्ही की मदद से कराये जाते है। से महिलायें पुराने चाकू, हँसिया, खुर्पी, ब्लेड या बांस की पत्ती से नाल काट कर किसी पुरानी साड़ी के टुकड़े से बच्चे का मुंह ढ़क देती है तथा बच्चे को पुराने कपड़े पहना दिये जाते हैं। पुराने कपड़े बच्चे की आयु बढ़ाते हैं, ऐसा अन्ध विश्वास समाज में अब भी व्याप्त है। मुँह दिखाई के लिये पैसा न्योछावर किया जाता है अतः बच्चे को मुँह ढ़ँक कर रखा जाता है इससे बीमारियां फैल जाती हैं। इस प्रकार की जन्म की दशायें बच्चे की मृत्यु का कारण बन जाती हैं।

दाई, पड़ोसी, रिश्तेदार या अन्य अप्रशिक्षित कार्यकर्ताओं का प्रयोग प्रसव सहायक के रूप में किये जाने के संदर्भ में कुछ नये अनुसंधान जो कि महादेवन, रेड्डी, मूर्ति, पी0जी0 रेड्डी गौरी तथा शिवराशू[1] द्वारा किये गये हैं, इनका मानना है कि मृत्यु दर-प्रसव सहायक के आधार पर कम अथवा अधिक रहती है।

राय तथा बार्नो[2] का यह मानना है कि प्रसव के समय सहायक की उपस्थिति से शिशु

---

(1) महादेवन, के0 रेड्डी, पी0आर0, मूर्ति एम0, एस0आर0 रेड्डी, पी0जे0, गौरी, बी0 एण्ड शिवराजू, एम (1986), कल्चर, न्यूट्रीशन एण्ड इन्फेन्ट एण्ड चाइल्ड मार्टीलिटी, इन फर्टीलिटी एण्ड मार्टीलिटी, एडीटेड बाई के0 महादेवन, संज पब्लिकेशन, लन्दन, पेज 232-233।

(2) राय, यू0एन0 एण्ड कोआजी, बानो, (1988), कोरिलेट्स आफ इन्फेन्ट सरबाइवल एकार्डिंग टू कोहरोट स्टडी इन वधू रूरल हेल्थ प्रोजेक्ट, इन इन्फेन्ट मार्टीलिटी इन इण्डिया, डिफरेन्सेस एण्ड डिटरमिनेन्ट्स, एडीटेड बाई, अनुराधा के0 जैन, एण्ड प्रवीन विसारिया, लन्दन, पेज 211-212।

मृत्यु की घटने एवं बढ़ने की संभावना रहती है। सहायक के द्वारा शिशु मृत्यु में लाई गई यह विभिन्नता प्रसव कराने के स्थान से सह-सम्बन्ध भी रखता है। अप्रशिक्षित महिलाओं अथवा दाइयों द्वारा प्रसव कराने पर मृत्यु-दर की सम्भावना ज्यादा रहती है। इस निष्कर्ष का समर्थन्न करते हुये खनंजन, स्थिति वेंचाकरन विलाई, वेंचाकरु,[1] एम०कास्टीलो, सोलिस, फेसिया और ग्रेसिला[2] का यह मानता है कि प्रसव के समय अप्रशिक्षित दाई की उपस्थिति के नियोनेटल अवस्था में शिशु की मृत्यु ज्यादा होती है।

प्रस्तुत अध्ययन में प्रसव के समय सहायकों के प्रयोग के आधार पर जो तथ्य प्राप्त हुये उन्हें सारणी 4.9 में प्रस्तुत किया गया है।

---

(1) खनजंन स्थिति, पी०, एण्ड वेंचाकरन, विलाई, वेंचाकरू, (1983), हेलथ प्राब्लम इन पेरीनेटल पीडिएड एण्ड इन्फेन्ट इन ए रूरल डिस्ट्रिक आफ थाईलैण्ड, इन सिसरेड, इन्फेन्ट एण्ड चाइल्ड मार्टीलिटी इन दि थर्ड वर्ड, पेरिस पेज-309-311।

(2) कास्टीलो : एम०, फ्रेसिया : एफ०, सोलिस एण्ड ग्रेसिला एम०ए०, (1983), इन्फ्लूवेशिया डिल सेक्टर स्लाइडेन लांस निवेलेस, इन सिसरेड, इन्फेन्ट एण्ड चाइल्ड मार्टीलिटी इन दि थर्ड वर्ड, पेरिस, पेज 309-312।

सारणी- 4.9

प्रसव सहायकों के आधार पर शिशु मृत्यु में विभिन्नतायें तथा शिशु जन्म मृत्यु-अनुपात

प्रसव सहायक	जीवित जन्म	शिशु मृत्यु	शिशु मृत्यु-दर	अनुपात
प्रशिक्षित	307	36	117.26	1:11
अप्रशिक्षित	303	61	201.32	1:20
योग :-	610	97	159.01	1:15

सारणी से पता चलता है कि ऐसे उत्तरदाताओं, जिन्होने प्रसव के समय अप्रशिक्षित सहायकों का प्रयोग किया, ने तीनों वर्षो 1997, 1998 एवं 1999 में कुल 303 शिशुओं को जन्म दिया जिसमें से 61 शिशु जन्म लेने वाले वर्ष के अन्त तक मृत हो गये तथा शिशु मृत्यु-दर 201.32 प्रति हजार रही। जबकि उन उत्तरदाताओं, जिनमें प्रसव के समय उपस्थिति सहायक प्रशिक्षित थे, ने उन्हीं तीनों वर्षो मं कुल 307 शिशुओ को जन्म दिया जिसमें 36 शिशु अपनी प्रथम वर्षगांठ मानने के पूर्व ही मृत हो गये। इस प्रकार इनमें शिशु मृत्यु दर 117.26 प्रति हजार पायी गयी।

यदि आनुपतिक दृष्टिकोण से देखते हैं तो पता चलता है कि प्रसव सहायक प्रशिक्षित थे वहां जन्म एवं मृत्यु का अनुपात 1.11 था अर्थात जहां एक शिशु का जन्म होता है वहीं 0.11 शिशु मृत हो जाते हैं। जबकि अप्रशिक्षित प्रसव सहायकों के प्रयोग से अनुपात बढ़ जाता है यह जन्म एवं मृत्यु के आधार पर 1.20 प्राप्त होता है।

तथ्यो के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि जहां अप्रशिक्षित कार्यकर्ताओं का प्रसव के समय प्रयोग होता है वहां शिशु मृत्यु-दर ज्यादा है जिससे हमारी परिकल्पना-प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित प्रसव सहायक शिशु मृत्यु से घनिष्ठ रुप से सम्बन्धित है- की पुटि होती है। इसका कारण सम्भवतः यह है कि दाई आदि जो प्रसव कराती हैं समान्यतः निम्न जाति की अप्रशिक्षित महिला होती हैं, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी यही कार्य करती आ रही हैं। उन्हें न तो

प्रसव सहायक और शिशु मृत्यु

चित्र संख्या-4.9

BIRTH ATTENDENT
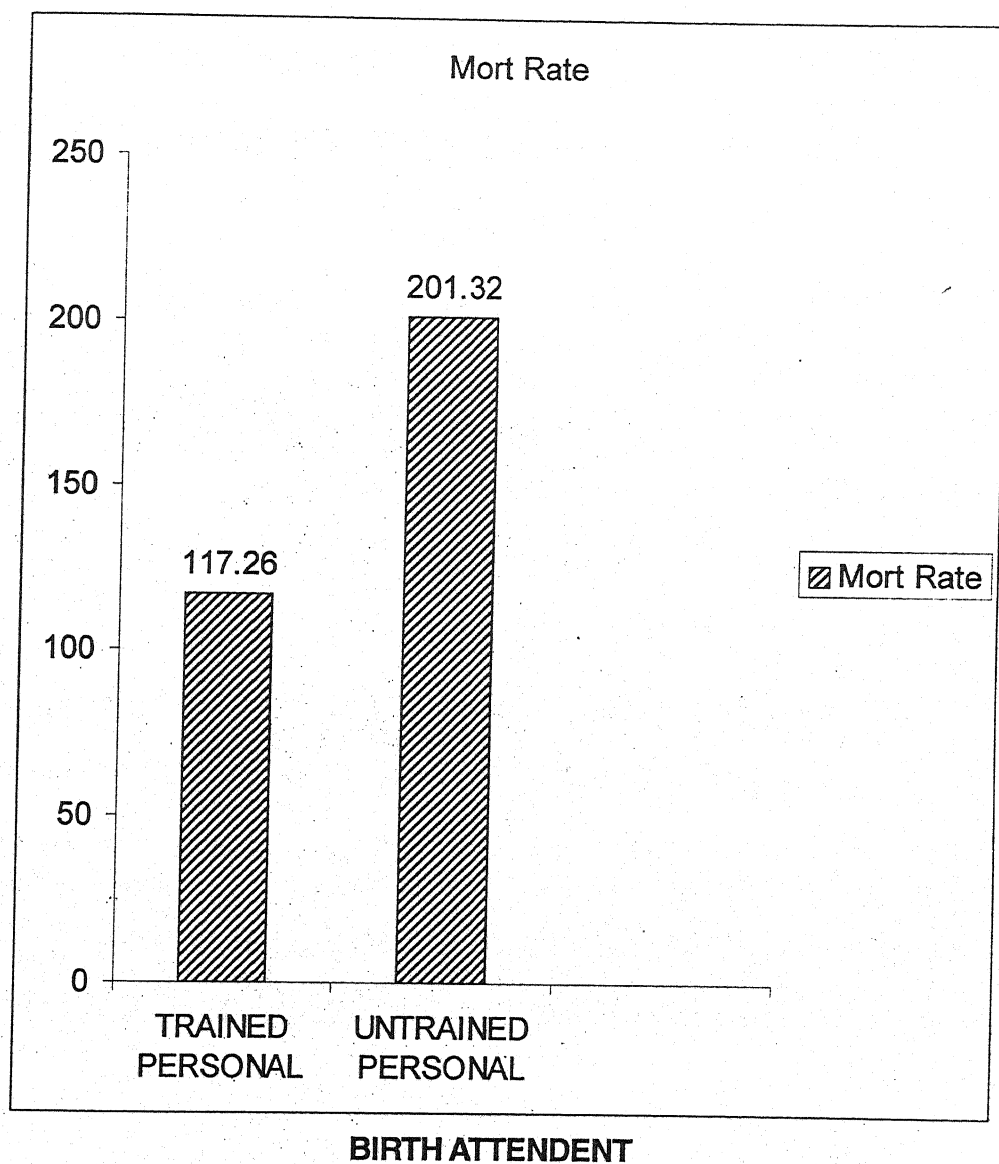
प्रसव सम्बन्धी आधुनिक प्रशिक्षण तथा स्वच्छता का ज्ञान होता है और न ही उनके पास आधुनिक औजार आदि होते हैं। ये अप्रशिक्षित महिलायें पुराने हंसिया, चाहू, ब्लेड या जंग लगे हुये खुरपे का प्रयोग करती हैं, पुराने गन्दे कपड़े से नाल बांध देती हैं। और गन्दे कपड़े से ही बच्चें का मुंह ढक देती है। जिससे बीमारियां फैल जाती हैं जो शिशु मृत्यु का कारण बन जाती है।

इस प्रकार पूर्व अध्ययनों में दिये गये निष्कर्षो से तुलना करने पर हमारे निष्कर्ष के० महादेवन, राय, कास्टीलो, फ्रेसिया, ग्रेसिया के निष्कर्षो से समानता रखते हैं।

नाल काटने के यंत्र के आधार पर शिशु मृत्यु में विभिन्नतायें :-

शिशु के पैदा होने के तुरन्त बाद ही नाल काटने की क्रिया की जाती है। यह क्रिया प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित कार्यकर्ताओं के द्वारा की जाती है। आधुनिक परिवेश में तमाम उच्च्य किस्म के स्ट्रेलाइज्ड उपकरणों द्वारा नाल काटने की क्रिया प्रशिक्षित महिलाओं द्वारा तथा अस्पतालों में की जाती है। लेकिन दाइयों एवं अप्रशिक्षित महिलाओं द्वारा इतना विकास होने के बाद भी उन्हीं परम्परागत यंत्रों का प्रयोग नाल काटने में किया जाता है। ऐसे यंत्र प्रायः जंग खाये रहते हैं जिससे टिटनेस तथा अन्य बीमारियां की सम्भावना ज्यादा रहती है। इन परम्परागत यंत्रों के प्रयोग से ही शिशु मृत्यु-दर बढ़ जाती है।

महादेवन[1] का भी यह मानना है कि अवैज्ञानिक दृष्टिकोण से अपनाये जाने वाले यंत्रों में जैसे-ब्लेड, कैंची, हंसिया, बांस के पत्ते आदि का प्रयोग उत्तर प्रदेश में ज्यादा होता

---

(1) महादेवन, के० (1984), मारटेलिटी बाइलोजी एण्ड सोसाइटी : एनालिटिक फ्रेमवर्फ एण्ड कान्सेप्च्युवल माडल।

है जिसके कारण नियोनेटल अवस्था में 50 प्रतिशत शिशु मर जाते हैं। चौधरी[1], साइमन, मिश्रा, मजूमदार[2] का यही मानना है कि उत्तर प्रदेश में दाइयों द्वारा बड़े पैमाने पर टिटनेस पैदा करने वाले यंत्रों से नाल काटने की प्रक्रिया की जाती है, जिसके कारण 60 प्रतिशत बच्चे नियोनेटल अवस्था में ही मर जाते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में नाल काटने के यंत्र का शिश मृत्यु पर प्रभाव जानने के लिये जो आंकड़े प्राप्त हुये उन्हें सारणी 4.10 में प्रस्तुत किया गया है।

---

(1) चौधरी, ए०के०एम० (1982), दि कान्सेप्ट आफ इण्टरमीडिएट लेबिल वैरियेबिल इन मारटेलिटी स्टडीज, इन बी० एडमान्सटन एण्ड आर वैरागी, इन्फेन्ट एण्ड चाइल्ड मारटेलिटी इन बांग्लादेश ढाका, यूनीवर्सिटी आफ ढाका, पेज 29-37।

(2) साइमन, जी०वी०, सी०एम० स्मुकर, बी०डी०मिश्रा, एण्ड पी० मजूमदार (1978), पैटर्न, एण्ड काजेज आफ इन्फेन्ट मारटेलिटी इन रूरल उत्तर प्रदेश, जनरल आफ ट्रापिकल पैडियाट्रिक एण्ड इन विहाफ मेन्टल चाइल्ड हेल्थ, 27 (5), पेज 207-216

सारणी 4.10

नाल काटने के यंत्र के आधार पर शिशु मृत्यु में विभिन्नतायें एवं शिशु जन्म मृत्यु-अनुपात

नाल काटने का यंत्र	जीवित जन्म	शिशु मृत्यु	शिशु मृत्यु-दर	अनुपात
परम्परागत	265	49	184.90	1:18
आधुनिक	345	48	139.13	1:13
योग :-	610	97	159.01	1:25

सारणी के अवलोकन से ज्ञात होता है कि ऐसे उत्तरदाताओं, जिन्होंने, शिशु जन्म के समय नाल काटने के लिये परम्परागत यंत्रों जैसे- हंसिया, खुर्पा, छूरा आदि को प्रयोग किया ने वर्ष, 1997, 1998 एवं 1999 में कुल 265 शिशुओं को जन्म दिया जिसमें से 49 शिशु जन्म लेने वाले वर्ष के अन्त तक मृत हो गये। इनमें शिशु मृत्यु-दर 184.90 प्रति हजार प्राप्त हुई। इनके अतिरिक्त, ऐसे उत्तरदाता, जिन्होनें नाल काटने के लिये आधुनिक यंत्रो जैसे-ब्लेड, कैंची आदि का प्रयोग किया, ने उन्हीं तीनों वर्षो, में कुल 345 शिशुओं को जन्म दिया जिसमें से 48 शिशु अपनी प्रथम वर्षगांठ के पूर्व ही मृत हो गये है। इस प्रकार इनमें शिशु मृत्यु-दर 139.13 प्रति हजार प्राप्त हुई है।

इन्हीं उत्तरदाताओं के शिशु मृत्यु का आनुपातिक दृष्टिकोण से अध्ययन करने पर पता चलता है कि परम्परागत यंत्रों का प्रयोग करने वाले उत्तरदाताओं में जन्म एवं मृत्यु का अनुपात 1.18 है अर्थात एक शिशु के जन्म पर 0.18 शिशु मृत हो जाते हैं। जबकि आधुनिक यंत्रों का प्रयोग करने वाले उत्तरदाताओं के शिशु जन्म एवं मृत्यु का अनुपात 1:13 प्राप्त होता है।

नाल काटने का यंत्र और शिशु मृत्यु

चित्र संख्या-4.10
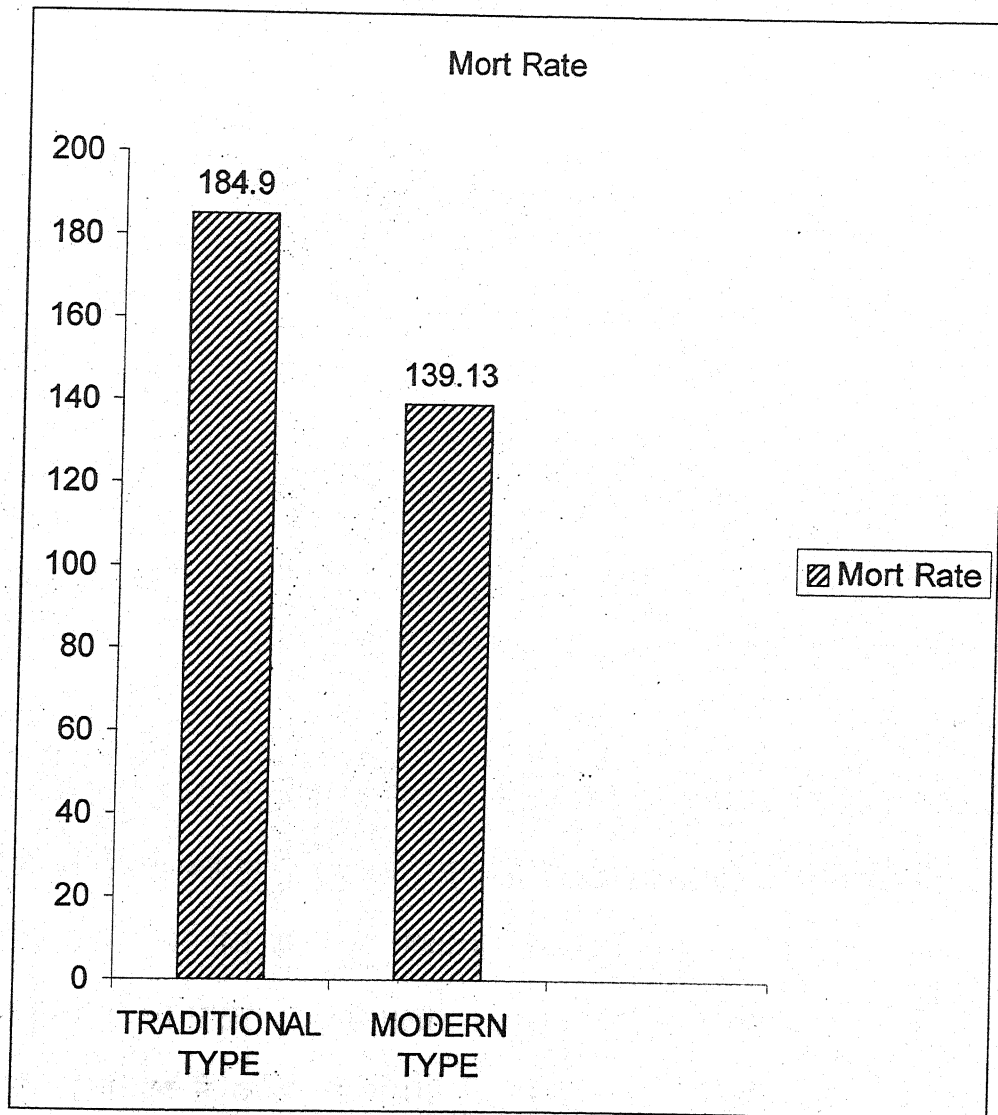
TYPE OF INSTRUMENT

इस प्रकार तथ्यों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि जहां नाल काटने के लिये परम्परागत यंत्रों जैसे- हंसिया, खुर्पा, छूरा आदि का प्रयोग होता है उनमें शिशु मृत्यु-दर अधिक पायी जाती है तथा जहाँ आधुनिक यंत्रो जैसे- नया ब्लेड, कैंची आदि का प्रयोग होता है वहां शिशु मृत्यु-दर कम पायी जाती है। परम्परागत एवं आधुनिक यंत्रों का प्रयोग शिशु मृत्यु को बहुत अधिक प्रभावित करता है इस प्रकार हमारी परिकल्पना-नाल काटने के लिये प्रयुक्त किये गये यंत्र का प्रकार शिशु मृत्यु से घनिष्ठ रुप में सम्बन्धित है- की पुष्टि होती है। इसका कारण यह है कि परम्परागत यंत्र प्रायः साफ-सुथरे नहीं होते। ये यंत्र जंग खाये हुये रहते हैं। जिससे टिटनेस एवं अन्य बीमारियां पैदा हो जाती हैं जो शिशु मृत्यु-दर को बढ़ाने में सक्रिय भूमिका अदा करती हैं।

हमारे निष्कर्ष, महादेवन, चौधरी, साइमन, मिश्रा, मजूमदार के निष्कर्षो से मेल खाते हैं।

जन्म के स्थान के आधार पर शिशु मृत्यु में विभिन्नतायें :-

शिशु मृत्यु-दर कम अथवा अधिक होने में जन्म स्थान की महत्वपूर्ण भूमिका है प्रसव के दृष्टिकोण से घर एवं उसमें कमरे की व्यवस्था अत्याधिक दोषपूर्ण होती है। प्रायः घरो में प्रसव के लिये वह कमरा चुना जाता है जो सबसे अधिक अंधकार पूर्ण एवं प्रयोजन हीन हो। उसकी रही-सही दरारें भी गोबर मिट्टी से भर कर पोत दी जाती हैं जिससे स्वच्छत वायु एवं सूर्य की किरणें उस कमरे तक नहीं पहुंच पाती। साथ ही, गन्दी टाट-पट्टियों से उसके एक मात्र दरवाजे पर पर्दा डाल दिया जाता है। फटे-पुराने कपड़ों का बिस्तर बनाया जाता है। इसके अतिरिक्त सफाई का कार्य सामान्यतः निम्न जाति की महिलाओं द्वारा किया जाता है जिसकी उपस्थिति से सफाई कम गन्दगी ही ज्यादा होती है उजाले के नाम पर कमरे में एक लैम्प जलाया जाता है जो कमरे की बची-खुची आक्सीजन भी समाप्त कर देता और

साथ में छोड़ता है कार्बनडाइ आक्साइड। जच्चा-बच्चा की देख-रेख के लिये एक बुजुर्ग महिला कमरे में या दरवाजे पर सोती है जो हुक्का, बीड़ी पीती रहती है। अतः स्वच्छ वायु की और भी कमी हो जाती है। इस प्रकार घर के इस दोषपूर्ण वातावरण में लोग प्रसव कराते हैं। इस वातावरण में शिशु मृत्यु की सम्भावना बढ़ जाती है।

उक्त संदर्भ में राय[1], को आजी बानो एवं लीला विसारिया[2] का यह मानना है कि भारत में प्रसव का स्थान मृत्यु-दर को विशेष रुप से प्रभावित करता है। लीला विसारिया का यह भी कहना है कि यदि घर में प्रसव कराया जाता है तो मृत्यु-दर ज्यादा हो जाती है। राय एवं को आजी बानो का मत इससे भिन्न है। इनका मानना है कि घर में प्रसव कराने पर ज्यादा होती है। अनुराधा के, जैन[3] का मत लीला विसारियाँ से मिलता है। इनका कहना है कि घर में प्रसव कराने पर मृत्यु दर ज्यादा होती है। जबकि प्रेम जी तलवार[4] का यह मानना है कि कि प्रसव के स्थान का शिशु मृत्यु पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। दूसरी तरफ साइमन[5] तथा कबीर[6] इस बात से सहमत नहीं है। उनका कहना है कि स्थान का प्रसव एवं मृत्यु दोनों पर प्रभाव पड़ता है। घर में प्रसव कराने में ज्यादातार दाइयों का ही प्रयोग सम्भव

---

(1) राय, यू०एन० एण्ड कोआजी बनाने, वही।

(2) विसारिया, लीला, (1988), लेबिल ट्रेण्ड्स एण्ड डिटरमिनेन्ट आफ इन्फेन्ट मारटेलिटी इन इण्डिया, लन्दन पेज 313।

(3) अनुराधा, के० जैन, वही।

(4) तलवार, प्रेम जी, वही।

(5) साइमन, जार्ज वी, एण्ड वी०डी० मिश्रा, (1982), पोस्ट नियोनेटल मारटेलिटी इन रूरल इण्डिया, इम्पलीकेशन आफ इकोनोमिक्स माडल, डेमाग्राफी वाल्यूम 19 नं० 3, लन्दन, पेज 317-389।

(6) कबीर, एम० एण्ड ए०ए० हाउलडर, (1980), सोसल, इकोनोमिक्स डिटरमिनेन्ट्स आफ मारटेलिटी इन बांग्लादेश, रूरल, लन्दन, डेमोग्राफी 7 (12(1-13)।

होता है। ये प्रायः अप्रशिक्षित होती है और जंग लगे, गन्दे एवं पुराने यंत्रों का प्रयोग करती हैं। यदि यही प्रसव अस्पताल में कराया जाय तो इसकी सम्भावना कम रहती है। इस प्रकार उनका तर्क इस बात को स्वीकार करता है कि घर में प्रसव कराने से मृत्यु की सम्भावना अधिक रहती है।

प्रस्तुत अध्ययन में जन्म के स्थान का शिशु मृत्यु-दर पर क्या प्रभाव पड़ता है यह जानने के लिये जन्म एवं मृत्यु सम्बन्धी आंकड़े एकत्र किये गये हैं जिन्हें 4.11 में प्रस्तुत किया गया है।

सारणी 4.11

जन्म स्थान के आधार पर शिशु मृत्यु में विभिन्नतायें तथा शिशु जन्म मृत्यु-अनुपात

जन्म स्थान	जीवित जन्म	शिशु मृत्यु	शिशु मृत्यु-दर	अनुपात
घर	420	69	164.28	1:14
अस्पताल	190	28	147.36	1:14
योग :-	610	97	159.01	1:15

सारणी के अवलोकन से ज्ञात होता है कि ऐसे उत्तरदाताओं, जिनका प्रसव घर पर हुआ, ने तीन क्रमिक वर्षो 1997, 1998 एवं 1999 में कुल 420 शिशुओं को जन्म दिया जिसमें से 69 शिशु जन्म लेने वाले वर्ष के अन्त तक मृत हो गये। इनमें शिशु मृत्यु दर 164.28 प्रति हजार रही। इसी प्रकार, ऐसे उत्तरदाताओं जिन्होंने अस्पताल में प्रसव किया, ने इन्हीं तीनों वर्षो में कुल 190 शिशुओं को जन्म दिया जिसमें से 28 शिशु अपनी प्रथम सालगिरह के पूर्व ही मर गये। इनमें शिशु मृत्यु-दर 147.36 प्रति हजार पायी गई।

इन्हीं तथ्यों को यदि आनुपातिक आधार पर प्रस्तुत किया जाय तो पता चलता है कि जिन महिलाओं ने घर में प्रसव किया उनमें जन्म एवं मृत्यु का अनुपात 1:16 एवं जिन्होने अस्पताल में प्रसव किया उनमें यह अनुपात 1:14 था।

तथ्यों के विश्लेषण से पता चलता हैं कि ज्यादातर प्रसव घर में कराये गये हैं। साथ ही, यह भी स्पष्ट होता है कि अस्पताल में कराये गये प्रसव की अपेक्षा घर में कराये गये प्रसवों में शिशु मृत्यु ज्यादा है इस प्रकार हमारी पकिल्पना शिशु जन्म का स्थान शिशु मृत्यु से घनिष्ठ रुप से सम्बन्धित है- की पुष्टि होती है। इसका कारण सम्भवतः यह है कि घरों में प्रसव बन्द अंधकार युक्त कमरे में कराया जाता है। जहां कि स्वच्छता भी नहीं रहती जो कि नवजात शिशु को जिन्दा रखने के लिये आवश्यक होती है। यही कारण है कि घरों में

जन्म का स्थान और शिशु मृत्यु

चित्र संख्या-4.11

BIRTH PLACE
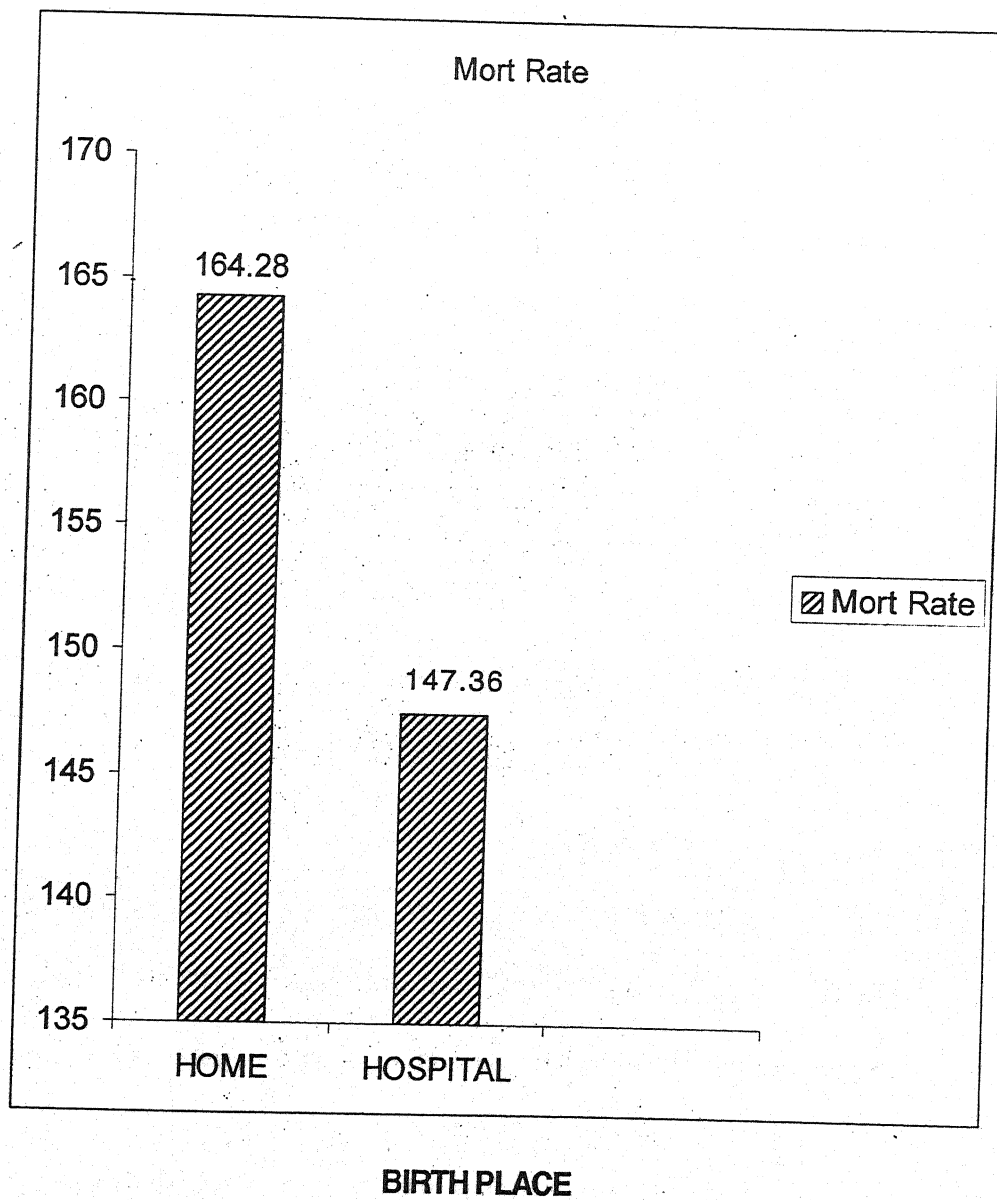
कराये गये प्रसवों में शिशु मृत्यु-दर अधिक है।

इस प्रकार हमारे निष्कर्ष, लीला विसारिया, अनुराधा के० जैन, साइमन एवं कबीर के निष्कर्षो से मेल खाते हैं जबकि राय एवं कोआजी बानो का मत हमारे निष्कर्षो के एक दम विपरीत है। जबकि प्रेम जी तलवार का यह मत कि प्रसव के स्थान पर शिशु मृत्यु पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, बिल्कुल भिन्न प्रकार का है।

प्रसव के समय मां की आयु के आधार पर शिशु मृत्यु में विभिन्नतायें :-

यदि प्रसव के समय मां की आयु के आधार पर शिशु मृत्यु-दर ग्राफ में अंकित किया जाय तो वक्र की आकृति (U) 'यू' भांति बनती है।[1] जिससे पता चलता है कि जब मां की आयु कम होती है तो शिशु मृत्यु अधिक होती है। 20 वर्ष से पूर्व मातायें यदि बच्चों को जन्म देती हैं तो उनमें मृत्यु की सम्भावनायें अधिक होती हैं। 25-30 वर्ष की आयु में शिशु मृत्यु न्यूनतम होती है तथा 30 वर्ष की आयु के बाद फिर शिशु मृत्यु बढ़ने लगी है। प्रायः प्रथम बच्चे में मृत्यु की सम्भावना अधिक होती है, द्वितीय में नयूनतम, तृतीय एवं चतुर्थ, में धीरे-धीरे बढ़ने लगती हैं, पांचवे बच्चे के बाद शिशु मृत्यु की सम्भावना पुनः बढ़ जाती है।

प्रसव के समय मां की आयु पर अध्ययन करने के पश्चात खान[2] का निष्कर्ष है कि प्रसव के समय मां की आयु का शिशु मृत्यु पर गहरा प्रभाव पड़ता है। मां की उम्र बच्चे को जिन्दा रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। विभिन्न विकासशील देशों के सर्वेक्षण से यह ज्ञात होता है कि ज्यादातर मातायें 20 वर्ष की अवस्था से पूर्व ही शिशुओं को जन्म देती

---

(1) विप्रदाश, पी०के० (1970), इन्फेन्ट मारटेलिटी इन सम रूरल एरिया आफ महाराष्ट्र, सुखी शंकर, फरवरी 8, पेज 34-46।

(2) खान, एम०ई०, (1980) वही।

हैं जिसके कारण शिशु मृत्यु-दर बढ़ जाती है। उनका कहना है कि शिशु मृत्यु 20-30 वर्ष की अवस्था के मध्य पैदा किये गये बच्चों में काफी कम देखने को मिलती है। पुनः 34 वर्ष की अवस्था के बाद यह खतरा बढ़ जाता है उत्तर प्रदेश के एक सर्वेक्षण के आधार पर खान[1] ने यह निष्कर्ष दिया है कि 19 वर्ष से कम आयु की माताओं के द्वारा प्रसव करने पर शिशु मृत्यु-दर 285 प्रति हजार प्राप्त होता है जबकि 20-24 वर्ष के मध्य 199 प्रति हजार और 30-34 वर्ष के मध्य 174 प्रति हजार रहता है। शिशु मृत्यु में नियोनेटल मृत्यु-दर सबसे अधिक होती है देखा जाय तो 19 वर्ष से कम आयु वाली माताओं में नियोनेटल मृत्यु-दर 169 प्रति हजार रहती है जबकि 20-29 वर्ष की अवस्था में पैदा किये गये बच्चो में यह दर 50 प्रतिशत कम हो जाती है।

अदलाख[2], सोबर[3], इस्लाम[4], बायान[5], गारेड, ओमरान और स्टैण्डली[6] तथा महादेवन[7] ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि 19 वर्ष से कम आयु की मां द्वारा प्रसव कराये जाने पर शिश मृत्यु का दबाव बढ़ जाता है। यह दबाव 34 वर्ष की अवस्था के बाद पुनः बढ़ जाता है। बीच की आयु वर्ग (20-34) वाली महिलाओं द्वारा प्रसव के समय शिशु मृत्यु का भय कम रहता है।

---

(1) खान, एम0ई0 (1980), वही।

(2) अदलाख, ए0एल0 (1970), ए स्टड़ी आफ इन्फेन्ट मारटेलिटी इन तुर्की, पी-एच0डी0 थीसिस, यूनिवर्सिटी आफ मिचिधा। पेज 318।

(3) सोबरे, डी0जी0 (1971) पापुलेशन प्रेसर आन फेमिलीज, फेमिलीज साइज एण्ड चाइल्ड स्पेशिंग इन रैपिड पापुलेशन ग्रोथ, दि जान होपकिंस प्रेस, पेज 403-61।

(4) इस्लाम एम0एस0, (1982), वही।

(5) बायान, जे0बी0, एण्ड गारडेन, जे0ई0 (1971), दि खन्ना स्टडी, पापुलेशन प्राब्लम इन दि रूरल पंजाब, हावर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस पेज, 193।

(6) ओमरान एण्ड स्टैण्डली (1976), वही।

(7) महादेवन, के0 (1981), वही।

प्रस्तुत अध्ययन की उत्तरदाताओं की प्रसव के समय उनकी आयु का शिशु मृत्यु-दर पर क्या प्रभाव है, जानने के लिये तथ्य एकत्रित किये गये हैं जिन्हें सारणी 4.12 में प्रस्तुत किया गया।

सारणी 4.12

प्रसव के समय मां की आयु के आधार पर शिशु मृत्यु में विभिन्नतायें एवं शिशु जन्म मृत्यु-अनुपात

प्रसव के समय मां की आयु	जीवित जन्म	शिशु मृत्यु	शिशु मृत्यु-दर	अनुपात
15-24	137	27	197.08	1:20
25-34	344	50	145.34	1:14
35-44	129	20	155.03	1:15
योग :-	610	97	159.01	1:25

सारणी के अवलोकन से ज्ञात होता है कि ऐसे उत्तरदाताओं जिनकी आयु प्रसव के समय 15-24 वर्ष के मध्य थी ने तीन क्रमिक वर्षो 1997,1998 एवं 1999 में कुल 137 शिशुओं को जन्म दिया जिसमें से 27 शिशुओं की मृत्यु उनके प्रथम सालगिरह के पूर्व हो गयी। इनमें शिश मृत्यु-दर 197.08 प्रति हजार ही। इसी प्रकार वे महिलायें जिनकी प्रसव के समय आयु 25-34 वर्ष के मध्य थी ने कुल 344 शिशुओं को जन्म दिया जिसमें 50 शिशु जन्म लेने वाले, वर्ष के अन्त तक काल-कलवित हो गये। इसमें शिशु मृत्यु-दर 145.34 प्रति हजार प्राप्त हुई। इसी क्रम में ऐसे उत्तरदाताओं जिनकी आयु प्रसव के समय 35-44 वर्ष थी, उन्होने 129 शिशुओं को जन्म दिया जिसमें से 20 शिशु अपनी प्रथम वर्षगांठ मनाने से पूर्व ही मर गये इस प्रकार इनमें शिशु मृत्यु-दर 155.03 प्रति हजार पाई गई।

प्रसव के समय मां की आयु और शिशु-मृत्यु
चित्र संख्या-4.12
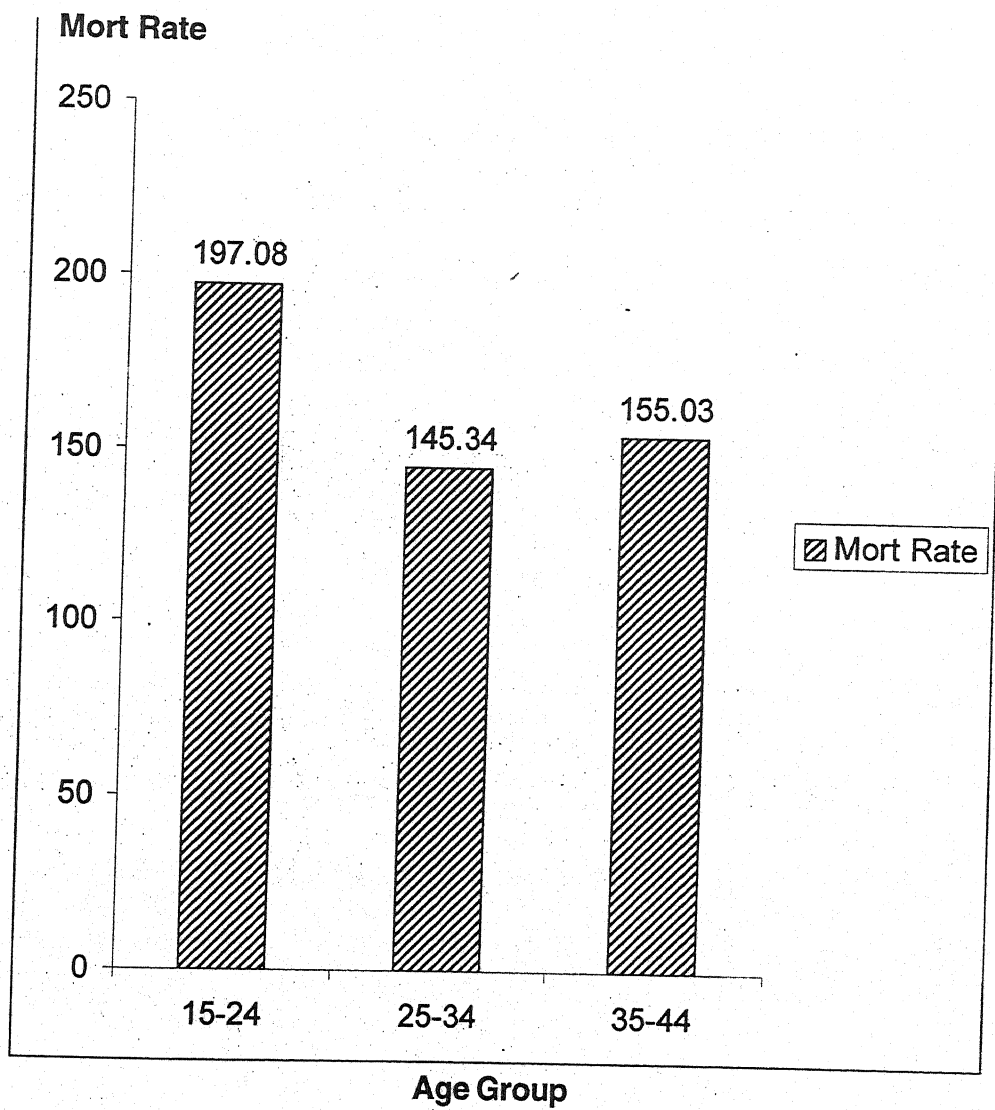
यदि प्रसव के समय मां की आयु के संदर्भ में जन्म एवं मृत्यु को आनुपातिक दृष्टिकोण से देखे तो पता चलता है कि जिन उत्तरदाताओं की आयु प्रसव के समय 15-24 वर्ष थी उनमें शिशु जन्म एवं मृत्यु का अनुपात 1:20 रहा अर्थात एक शिशु का जन्म होने पर 0.20 शिशु मृत हो जाते हैं। इसी प्रकार जिन माताओं की प्रसव के समय आयु 25-34 वर्ष थी उनमें शिशु जन्म एवं मृत्यु का अनुपात 1:14 पाया गया। साथ ही, जिन उत्तरदाताओं का आयु प्रसव के समय 35-44 थी उनमें यह अनुपात 1:15 पाया गया।

ऑकड़ों के विश्लेषण से पता चलता है कि निम्न जिन माताओं की आयु प्रसव के समय 15-24 वर्ष व 35-44 वर्ष है उनमें शिशु मृत्यु-दर उन माताओं की तुलना ज्यादा पायी जाती है जिनकी आयु प्रसव के समय 25-34 वर्ष है। इसका कारण सम्भवतः यह कि माताओं के प्रजनन के लिए 25-34 आयु वर्ग सर्वोत्तम माना जाता है। इस लिए मध्य आयु वर्ग में शिशुओं के जीवित रहने की सम्भवनाएं अधिक रहती है। जबकि 15-24 आयु वर्ग में महिलाओं का शरीर प्रजनन हेतु कम परिपम्व होता है। अतः इस आयु वर्ग में शिशु मृत्यु -दर अधिक पायी जाती है। फिर भी सांख्यकीय विश्लेषण के आधार पर प्रसव के समय माँ की आयु का शिशु मृत्यु से घनिष्ट सम्बन्ध दिखाई देता है, अतः इस प्रकार हमारी परिकल्पना प्रसव के समय माँ की आयु का शिशु मृत्यु से सकारात्मक सह-सम्बन्ध है - की पुष्टि होती है। अधिकांश विद्वानों का मत यह है कि प्रारम्भिक एवं बाद के प्रजनन काल में प्रसव होने पर शिशु मृत्यु-दर अधिक होती है और प्रजनन काल के मध्य में शिशु मृत्यु कम होती है। इस प्रकार हमारे निष्कर्ष खान,इस्लाम,बायान, अद्लाख, ओमरान, महादेवन के निष्कर्षो से मेल रखते हैं।

शिशु के लिंग के आधार पर शिशु मृत्यु-दर में विभिन्नतायें :

सामान्यतः शिशु मृत्यु-दर में गिरावट आने की वजह से जीवन प्रत्याशा में वृद्धि हुई है किन्तु शिशु मृत्यु-दर आज भी बहुत ऊँची है। जहाँ तक लड़कों एवं लड़कियों में मृत्यु के दबाव का प्रश्न है जनसंख्या सम्बन्धी समंकों से यह स्पष्ट नहीं है कि लड़कियों में मृत्यु का दबाव अधिक है या कम। यद्यपि कुछ सामाजिक व्यवस्थाओं में महिलाओं एवं लड़कियों के साथ भेदभाव का बर्ताव बड़ी आम बात है। जन्म से ही लड़की को उसके भाइयों से घटिया भोजन, वस्त्र, सुविधा, शिक्षा, चिकित्सा आदि उपलब्ध होती है। मृत्यु सम्बन्धी आंकड़े भी इसकी पुष्टि नहीं करते। इस संदर्भ में भिन्न मत रखते हुये डा० एस०एन०अग्रवाल ने कहा है कि -यदि 1901 से 1961 तक के 60 वर्षो के समंको का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो ज्ञात होता है कि भारत में सामाजिक व्यवस्था के कारण लड़कों में ही मृत्यु का दबाव अधिक है। ऐसा माना जाता है कि जन्म से ही लड़का, लड़की की तुलना में कमजोर होता है। उसमें बीमारी से जूझने की शक्ति कम होती है।[01]

कुछ जनांकिकी वेत्ताओं ने कहा है कि जन्म से ही लड़की की शारीरिक व्यवस्था व संरचना लड़की की अपेक्षा मजबूत होती है जो पर्यावरण को झेलने के लिए उसे सशक्त बनाती है। अर्थात् उनका मानना है कि प्रकृति ने ही बालिकाओं को बालकों की अपेक्षा सशक्त बनाया है।[2]

इसके विपरीत, तलवार[3] का यह मानना है कि लिंग के आधार पर मृत्यु-दर की

---

(1) अग्रवाल, एस०एन० (1972), इण्डियाज पापुलेशन प्राब्लम, टाटो एमसी ग्राहिल, बाम्बे, पेज 208।

(2) बोगी, डोनाल्ड, (1969), प्रिंसिपल आफ डेमोग्राफी, जान वेली एण्ड सन्स, न्यूयार्क, पेज 56।

(3) तलवार, प्रेम जी (1984) इन्फेन्ट मारटेलिटी, सम एवीडेन्स फ्राम रूरल मध्य प्रदेश, इन इन्फेन्ट मारटेलिटी इन इण्डिया, वही लन्दन पेज 329।

सार्थकता संतोषजनक नहीं है लेकिन इसका प्रभाव हल्का सा अवश्य पड़ता है। इनका यह मानना है कि लड़कियों की मृत्यु लड़कों के अनुपात में ज्यादा होती है। गण्डोत्रा[1] तथा दास 04 का यह मानना है कि नियोनेटल स्तर पर लड़कों की मृत्यु अधिक होती है। लेकिन यह भिन्नता पोस्ट नियोनेटल स्तर पर परिवर्तित हो जाती है। इस अवस्था में लड़कियों की मृत्यु ज्यादा होने लगती है। इस प्रकार एक वर्ष की अवस्था तक लड़कियों की मृत्यु का अनुपात लड़को की अपेक्षा ज्यादा हो जाता है। मिगमा[2] का यह मानना है कि भारत तथा श्रीलंका में लड़कियों की मृत्यु कुछ ज्यादा होती है। महादेवन[3] का भी निष्कर्ष है कि भारत में लड़कियों की मृत्यु लड़कों की अपेक्षा ज्यादा होती है।

रामानुज[4] ने इस बात का समर्थन करते हुये कहा है कि विकसित देशों में लड़कों की मृत्यु-दर ज्यादा होती है जबकि भारत एवं श्रीलंका जैसे विकासशील देशों में मृत्य-दर लड़कियों में ही ज्यादा पायी जाती है। इस मुख्य कारण सामाजिक परिवेश में उसमें व्याप्त कुरीतियों के साथ लिंग परहेज ही है।

प्रस्तुत अध्ययन में लिंग भेद के आधार पर शिशु मृत्यु-दर पड़ने वाले प्रभाव को जानने के लिये तथ्य एकत्रित किये गये हैं जिन्हे सारणी 4.13 में प्रस्तुत किया गया है।

---

(1) गण्डोत्रा, एम0एम0 नरायनदास, वही।

(2) मिगमा, एस0ए0, (1980), सोशियो इकोनोमिक्स डिटरमिनेन्ट आफ इन्फेन्ट एण्ड चाइल्ड मारटेलिटी इन श्रीलंका, वर्ल्ड फर्टीलिटी सर्वे, अप्रैल 8, 1980, पेज 193।

(3) महादेवन, के0 (1981) वही, पेज 265-266।

(4) रामानुज, सी0, (1984) कोरिलेट्स आफ इन्फेन्ट मारटेलिटी इन ए रूर एरिया आफ तमिलनाडु, इन इन्फेन्ट मारटेलिटी इन इण्डिया डिफरेन्स एण्ड डिटरमिनेन्ट्स, अनुराधा के0 जैन एण्ड प्रवीन विसारिया।

सारणी 4.13

लिंग भेद के आधार पर शिशु मृत्यु-दर में विभिन्नतायें

तथा शिशु जन्म मृत्यु-अनुपात

बच्चे का लिंग	जीवित जन्म	शिशु मृत्यु	शिशु मृत्यु-दर	अनुपात
लड़का	324	46	141.97	1:14
लड़की	286	51	178.32	1:18
योग	610	97	159.01	1:15

सारणी के अवलोकन से पता चलता है कि वर्ष 1997,1998, एवं 1999 में उत्तरदाताओं द्वारा कुल 324 लड़कों को जन्म दिया गया जिसमें से 46 लड़कों की मृत्यु जन्म लेने वाले वर्ष के अन्त तक हो गयी इस प्रकार इनमें शिशु मृत्यु-दर 141.97 प्रति हजार रही जबकि इन्ही वर्षो में उत्तरदाताओं ने 286 लड़कियों को जन्म दिया जिसमें से 51 लड़कियों की मृत्यु उनकी प्रथम सालगिरह के पूर्व हो गयी इस प्रकार इनमें शिशु मृत्यु-दर 178.32 प्रति हजार पायी गयी।

इन्ही तथ्यों को यदि आनुपातिक आधार पर प्रस्तुत करें पाते है कि लड़कों में शिशु जन्म एवं मृत्यु का अनुपात 1:14 रहा अर्थात एक लड़के के जन्म होने पर 0.14 लड़कों की मृत्यु हो जाती है जबकि लड़कियों में यह अनुपात 1:18 पाया गया।

उपरोक्त तथ्यों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि बालक एवं बलिकाओं में मृत्यु के दबाव में अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है। अध्ययन क्षेत्र में बालक एवं बालिकाओं के साथ भेद-भाव आम बात है इसलिए लड़कों की अपेक्षा लड़कियों में मृत्यु-दर ज्यादा पाई गई ।

लिंग भेद और शिशु मृत्यु

चित्र संख्या-4.13

SEX OF INFANT
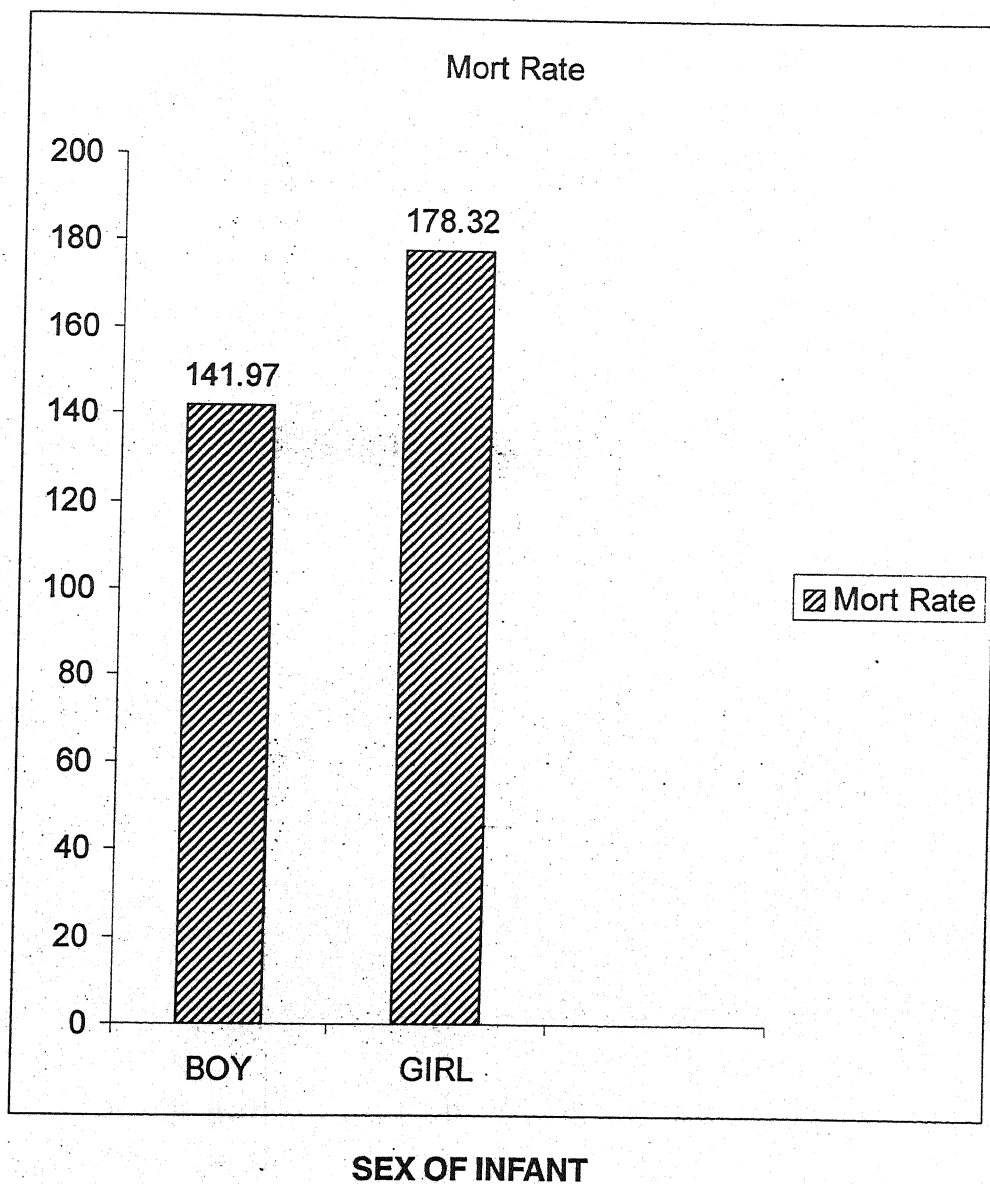
इसका कारण यह हो सकता है कि लड़कियों की अपेक्षा लड़कों को स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सम्बन्धी सुविधायें शीघ्र उपलब्ध कराई जाती हैं उनका खान-पान आदि का ज्यादा ध्यान रखा जाता है। हमारे निष्कर्ष अग्रवाल, बोगी से भिन्नता रखते है जबकि तलवार, मिगमा, महादेवन एवं रामानुज से मेल खातें हैं।

सामाजिक-आर्थिक स्थिति के आधार पर शिशु मृत्यु में विभिन्नतायें :

यह लगभग एक समाजशास्त्रीय तथ्य बन चुका है कि जिस समाज में सामाजिक-आर्थिक स्थिति जितनी विकसित होती है वहाँ शिशु मृत्यु-दर उतनी ही कम होती है। जो समाज पिछड़ा होता है, निर्धन होता है वहॉ शिशु मृत्यु-दर अधिक होती है। इस संदर्भ में कई विद्वानों द्वारा शोध कार्य किये गये जिसमें तारा कानिटकर एवं मूर्ति[1] का मानना है कि सामाजिक-आर्थिक तत्व शिशु मृत्यु-दर को विशेष रूप से प्रभावित करते हैं। गण्डोत्रा एवं नारायनदास[2] इस बात को स्पष्ट करते हैं कि सामाजिक-आर्थिक स्तर शिशु मृत्यु-दर के लिये एक महत्वपूर्ण तथ्य है जिसके द्वारा नियोनेटल एवं पोस्ट नियोनेटल मृत्यु-दर प्रभावित होती है। रामानुजम्[3] ने इस बात को स्वीकार किया है कि गरीब तथा अत्यधिक गरीब स्तर के लोगों में शिशु

---

(1) कानिटकर, तारा, एण्ड मूर्ति, बी०एन (1984), फैक्टर्स, एसोसिएट्स विथ इन्फेन्ट मारटेलिटी इन राजस्थान एण्ड उड़ीसा इन इन्फेन्ट मारटेलिटी इन इण्डिया डिफरन्स एण्ड डिटरमिनेन्ट्स-(1988), लन्दन, पेज 306।

(2) गण्डोत्रा, एम०ए०, एण्ड नारायणदास, (1984) इन्फेन्ट मारटेलिटी एण्ड एनालिसिस आफ रीसेन्ट वर्क्स इन गुजरात, इन्फेन्ट मारटेलिटी इन इण्डिया, डिफरेन्सेस एण्ड डिटरमिनेन्ट्स 1988, लन्दन, पेज 288।

(3) रामानुज, सी०, (1984) कोरिलेट्स आफ इन्फेन्ट मारटेलिटी इन ए रूरल एरिया आफ तमिलनाडु, इन इन्फेन्ट मारटेलिटी इन इण्डिया डिफरेन्स एण्ड डिटरमिनेन्ट्स, 1988, लन्दन पेज 267।

मृत्यु-दर ज्यादा होती है। खान[1] ने आर्थिक निर्धनता को शिशु मृत्यु का कारण माना है। इनका मानना है कि निर्धनता के कारण अशिक्षा, चिकित्सा की असुविधा, सामाजिक स्तर में गिरावट, कुपोषण आदि का वर्चस्व कायम हो जाता है जिसके कारण शिशु मृत्यु-दर बढ़ जाती है। अनुराधा के० जैन[2] भी इस बात को स्वीकार करती है कि सामाजिक-आर्थिक पिछड़ापन मृत्यु-दर को बढ़ावा देता है।

प्रस्तुत अध्ययन में शिशु मृत्यु में सामाजिक-आर्थिक स्थिति का क्या प्रभाव पड़ता है यह जानने के लिये सामाजिक-आर्थिक स्थिति के संदर्भ में आंकड़े एकत्र किये गये हैं जिन्हे सारणी 4.14 में प्रस्तुत किया गया है।

---

(1) खान, एम०ई० 1984, इन्फेन्ट मारटेलिटी इन उत्तर प्रदेश, एमाइक्रो लेविल स्टड़ी, इन्फेन्ट मारेलिटी इन इण्डिया, डिफरेन्सेस एण्ड डिटमिनेन्ट्स, 1988 लन्दन, पेज 234।

(2) अनुराधा के० जैन (1984), डिटरमिनेन्ट्स आफ रीजनल वैरीएशन इन इन्फेन्ट मारटेलिटी इन रूरल इण्डिया, इन्फेन्ट मारटेलिटी इन इण्डिया डिफरेन्सेस एण्ड डिटरमिनेन्ट्स, 1988, लंदन, पेज 203।

सारणी 4.14

सामाजिक-आर्थिक स्थिति के आधार पर शिशु मृत्यु

में विभिन्नतायें तथा शिशु जन्म-अनुपात

सामाजिक-आर्थिक स्थिति	जीवित जन्म	शिशु मृत्यु	शिशु मृत्यु-दर	अनुपात
उच्च	115	13	113.04	1:11
मध्य	242	34	140.49	1:14
निम्न	253	50	197.62	1:20
योग	610	97	159.01	1:15

सारणी के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि वे उत्तरदाता जो उच्च सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले हैं उन्होने वर्ष 1997,1998 एवं 1999 में कुल 115 शिशुओं को जन्म दिया जिसमें 13 शिशु जन्म लेने वाले वर्ष के अन्त तक मर गये। इनमें शिशु मृत्यु-दर 113.04 प्रति हजार रही। साथ ही वे महिलायें जो मध्य सामाजिक-आर्थिक स्तर वाली थीं उन्होनें इन्ही वर्षो में 242 शिशुओं को जन्म दिया जिसमें से 34 शिशुओं की मृत्यु उनकी प्रथम सालगिरह के पूर्व ही हां गई। इनमें शिशु मृत्यु-दर 140.49 प्राप्त हुई जबकि निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर वाली उत्तरदाताओं ने उन्ही वर्षो में 253 शिशुओं को जन्म दिया जिसमें से 50 शिशुओं की मृत्यु उनकी प्रथम वर्षगांठ के पूर्व हो गई। इस प्रकार इनमें शिशु मृत्यु-दर 197.62 प्रति हजार पायी गई।

यदि इन्ही तथ्यों को आनुपातिक आधार पर प्रस्तुत करें तो पता चलता है कि उच्च सामाजिक-आर्थिक स्तर वाली महिलाओं में शिशु जन्म एवं मृत्यु का अनुपात 1:11 था, मध्य स्तर वाली उत्तरदाताओं में शिशु जन्म एवं मृत्यु का अनुपात 1:14 था तथा निम्न स्तर वाली महिलाओं में यह अनुपात 1:20 रहा।

सामाजिक-आर्थिक स्तर और शिशु मृत्यु
चित्र संख्या 4.14
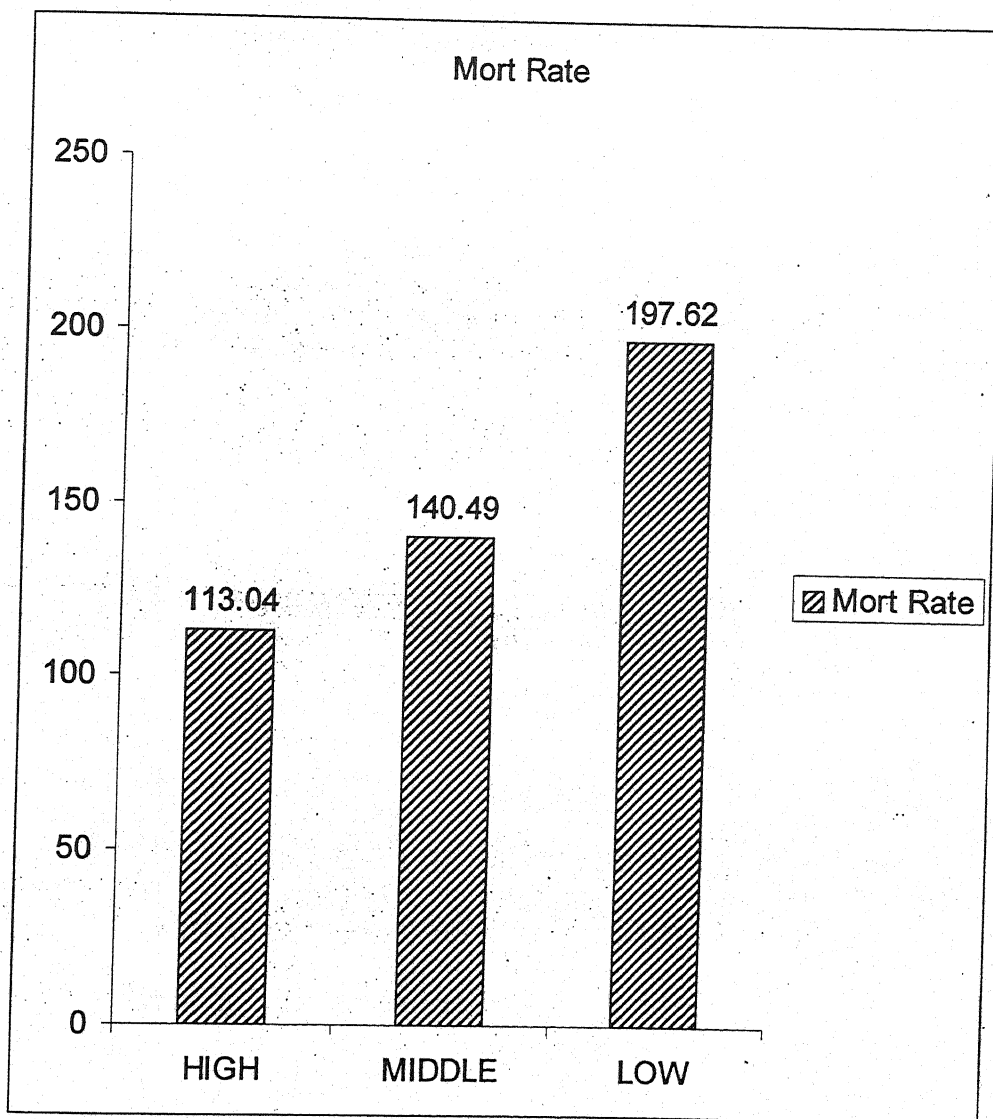
उपरोक्त तथ्यों के विश्लेषण से पता चलता है कि जैसे-जैसे सामाजिक-आर्थिक स्तर में गिरावट आती है। शिशु मृत्यु-दर बढ़ती जाती है सबसे कम शिशु मृत्यु-दर उच्च सामाजिक-आर्थिक स्तर में पायी गई तथा सर्वाधिक मृत्यु-दर निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर वाले परिवारों में पायी गई जिससे हमारी परिकल्पना-माता-पिता का सामाजिक आर्थिक स्तर शिशु मृत्यु के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है- की पुष्टि होती है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि निर्धनता, परिवार में अशिक्षा, चिकित्सा की असुविधा, सामाजिक स्तर में गिरावट, कुपोषणता एवं माँ की कुपोषणता, के साथ-साथ सामाजिक कुरीतियां पैदा करती हैं ये सभी कारण शिशु मृत्यु-दर को उच्च करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इसी कारण निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर वाले परिवारों में उच्च शिशु मृत्यु-दर पायी गई । हमारे निष्कर्ष कानिटकर, मूर्ति, गण्डोत्रा, रामानुज, खान, अनुराधा के० जैन, एण्टोनोव, लैथम, हैविचट विनीकाफ के निष्कर्षो के साथ-साथ ब्रे, ब्रैड, महोदेवन के निष्कर्षो से पूर्ण रूप से मेल खाते है।

प्रस्तुत अध्ययन में शिशु मृत्यु-दर से सम्बंधित कुछ ऐसे सामाजिक-सांस्कृतिक तत्वों का सूक्ष्म रूप से विश्लेषण किया गया है जिनके कारण शिशु मृत्यु-दर में विभिन्नतायें पैदा होती है। साथ ही वर्तमान अध्ययन से प्राप्त आँकड़ों से धर्म के आधार पर, परिवार के स्वरूप के आधार पर, जाति के आधार पर, माता-पिता की शिक्षा के आधार पर पिता के व्यवसाय पर के आधार पर, भू-स्वामित्व के आधार पर, विवाह के समय आयु व प्रसव के समय सहायक के साथ ही, नाल काटने के यंत्र एवं जन्म के स्थान के साथ ही साथ, प्रसव के समय माँ की आयु के अतिरिक्त बच्चे के लिंग एवं सामाजिक-आर्थिक स्थिति के आधार पर शिशु मृत्यु सम्बन्धी विभिन्नताओं की विवेचना की गई है।

अध्याय-षष्ठम्
शिशु मृत्यु के कारक

मृत्यु क्या है? क्यों होती है? इसके पीछे किसका हाथ है इत्यादि का पता करने के लिये मानव अपनी प्रारम्भिक अवस्था से ही प्रयास कर रहा है। इस लिए औषधि विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान का विकास हुआ है। जहाँ नित्य नये-नये तरीकों का अनुसंधान हो रहा है, उन कारणों का पता लगाया जा रहा है जिनके कारण मृत्यु होती है।

एक मानव की मृत्यु अनेक जटिलताओं एवं अन्तर्त सम्बन्धों का परिणाम है। इन कारकों का स्तर स्थानीय एवं वैयक्तिक से लेकर राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय भी हो सकता है।[1] स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव। अन्य अनेक कारण भी हो सकते हैं।

जनांकिकी मावन जीवन का संख्यात्मक पहलू है, अतः मृत्यु के केवल उन कारणों की व्याख्या कर पाता है जिनका सम्बन्ध जन्म मृत्यु रजिस्ट्रेशन कार्यालय से जुड़ा होता है। आंकड़ों की उपलब्धता न होने पर मृत्यु के कारणों की जानकारी नहीं हो पाती है। कभी-कभी ऐसी मृत्यु होती है जो कई कारणों से उलझी हुई होती है, जैसे अत्यधिक शराब का सेवन करने के बाद नाले में गिर जाना, गिरने से रीढ़ की हड्डी का टूट जाना और उसके बाद मृत्यु। अब यहाँ पर यह बताना मुश्किल हो जाता है कि मृत्यु का वास्तविक कारण क्या है। कभी-कभी ऐसा होता है कि शिशु को खसरा निकल आता है और उसी समय न्यूमोनिया हो जाता है परिणाम स्वरूप बच्चे की मृत्यु हो जाती है। ऐसी स्थितियों में मृत्यु को वास्तविक कारण की जानकारी कर पाना एक समस्या बन जाती है। कुछ कारण ऐसे होते हैं जो सुलझाये ही नहीं सुलझते क्योंकि मृत्यु का मूल कारण बहुत गहराई मे छिपा होता है। जैसे-बच्चा बीमार है, बीमारी की अवस्था में नर्स ने बच्चे की देखभाल ठीक से नहीं की,

---

1. टिटमस, रिचार्ड, एम० (1959), वर्थ, पावर्टी एण्ड वेल्थ, लन्दन, पेज 25।

डाक्टर को दिखाना है किन्तु वह दूर है, माँ परेशान है। बच्चे को डाक्टर के पास तक नहीं ले जा पाती है। जहाँ पर वह रहती है वहाँ की परिस्थितियां अनुकूल नहीं है, बच्चे की मृत्यु हो जाती है। ऐसी स्थितियों में पता करना मुश्किल हो जाता है कि मृत्यु का कारण किसे माना जाय, नर्स को, माँ को, डाक्टर एवं उसकी दूरी को[1]। ऐसे में कारणों को खोज अनुसंधान कर्ता को उलझा देती है अतः जनांकिकी वेत्ताओं ने मृत्यु के उन्हीं कारणों पर प्रकाश डाला है जो प्रत्यक्ष है, जिसका विवरण निम्नांकित है।

(1) बीमारी/प्रसव सम्बन्धी असावधानियां :

भारत में हर साल लगभग 2 करोड़ 20 लाख बच्चे पैदा होते हैं हर 10 बच्चों में एक शिशु अपना प्रथम जन्म दिन नहीं मना पाता क्योंकि बच्चा किसी न किसी जानलेवा बीमारी का शिकार हो जाता है। बीमारियां फैलने के अनेक कारण हो सकते है। ये कारण सामाजिक आर्थिक, जलवायु सम्बन्धी, संक्रामक एवं सांस्कृतिक आदि हैं।

एक वर्ष से कम आयु के बच्चों की मृत्यु जिन कारणों से होती है वे विशेषकर निम्नलिखित हैं-

(1) गर्भ के अन्दर हारमोनल असंतुलन होने से भ्रूण का विकास क्रम रूक जाता है बच्चे अल्प विकसित पैदा होते हैं जिससे शिशुओं को बचाना मुश्किल हो जाता है।

(2) जन्म के साथ बच्चे में घाव का होना भी शिशु मृत्यु का कारण हो सकता है। कुछ घाव बच्चों में जन्म-जात नहीं होते बल्कि कुछ कारणों से हो जाते हैं जिनका विवरण निम्नांकित है।

(अ) यदि महिला के गर्भाशय का मुंह संकीर्ण होता है तो बच्चे को चोट लग सकती है।

(ब) यदि प्रसव कठिनाई से होता है तो बच्चे को चोट लग सकती है।

---

1. प्रेसैट, रोनाल्ड, (1979), डेमोग्राफिक एनालिसिस, लन्दन, पेज 82।

(स) अस्वभाविक प्रसव से शिशु को चोट लग सकती है।

(द) शल्य यंत्रों से शिशु को चोट आ सकती है।

(च) हांथ के बल से प्रसव कराने पर शिशु को चोट आ सकती है।

यदि लड़कियों का विवाह तथा प्रसव अल्प आयु में होता तो उक्त परिस्थितियों की सम्भावना अधिक रहती है।

(3) जन्मजात अपंगता का कारण गर्भ धारण के समय अनावश्यक दवाओं का प्रयोग माना जाता है। बार-बार एक्स-रे कराना भी जन्मजात अपंगता पैदा करता है। इसके कारण भी शिशु की मृत्यु सम्भावित रहती है।

(4) शिशुओं की मृत्यु का एक प्रमुख कारण हीमोलिटिक रोगों का होना भी है। इसमें लाल रक्त कटिकायें टूट जाती हैं जिसकी वजह से ब्लड कैंसर, न्यूक्रिमीनिया, कैल्शियम की कमी का हो जाना, आर०एच० फैक्टर का न मिलना आदि सम्भव है जिससे शिशु की मृत्यु हो सकती है।

(5) बच्चे की नाल की स्थिति के कारण भी शिशुओं की मृत्यु हो जाती है। कभी-कभी शिशु के गले में नाल उलझ जाता है और कसाव की वजह से शिशु की मृत्यु हो जाती है। नाल कटने में अधिक रक्तसाव हो जाना भी शिशु मृत्यु का कारण हो सकता है। यदि साफ-सुथरे ब्लेड, कैंची आदि यंत्रों से नाल न काटा जाय तो जानलेवा बीमारी टिटनेस हो सकती है जो मृत्यु का बहुत बड़ा कारण है।

(6) माँ के स्तन का गंदा होना, दूध की सफाई न होना, जिस साधन से दूध पिलाया जा रहा है उसका स्वच्छ न होना, निपुल का साफ न होना, आंत्र शोथ एवं अतिसार रोग को जन्म देता है जिससे शिशु मृत्यु सम्भव है।

(7) श्वसनांगों में रोग संक्रमण से शिशु को तमाम तरह के रोग हो सकते हैं। यह रोग वाइरल एवं वैक्टीयल संक्रामकता से होते हैं। कभी-कभी माँ की बीमारियां बच्चों

में आ जाती हैं बच्चे में प्रतिरोधक क्षमता कम होने से वह वाइरल एवं वैक्टीरियल संक्रामकता को रोक नहीं पाता जिससे काली खाँसी हो जाती है, न्यूमोनिया हो सकता है, खसरा हो जाता है अथवा तीव्र ज्वर आ सकता है जो कि प्राण-घातक है।

(2) कुपोषण :

शिशु की अस्वस्थता एवं मृत्यु का एक बड़ा कारण कुपोषण है। कुपोषण दक्षिण एशिया में ज्यादा पाया जाता है। भारत का ग्रामीण अंचल ज्यादातर कुपोषण का शिकार है। कुपोषण संतुलित आहार न मिलना है, भारत सहित अन्य विकासशील देशों में 5 वर्ष से कम आयु के बच्चे ज्यादातर कुपोषण के कारण मर जाते हैं। प्रत्येक समाज के उस भाग में जिसमें आहार की पूर्ति सबसे कम होती है तथा जिसे हम निर्धन वर्ग कहते है, निरन्तर जनसंख्या वृद्धि के कारण कुपोषण की स्थिति देखी गयी है।[1]

शिशु में कुपोषण के कई कारण हो सकते हैं।

(अ) बच्चे को माँ का दूध कम मिलने के कारण शिशु में रोग प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है।

(ब) बाहरी दूध असंतुलित मात्रा में देने से शिशु कुपोषण का शिकार हो जाता है।

(स) पोषक तत्वों के साथ दूध की पर्याप्त मात्रा न देने से शिशु कमजोर हो जाता है।

(द) छः महीने में अन्नप्रासन की क्रिया के साथ लवण तथा अन्य पोषक तत्वों (प्रोटीन आदि) के अभाव में कुपोषणता बढ़ जाती है।

कुपोषण मनुष्य जनित है जिसका कारण दरिद्रता, भोजन सम्बन्धी आदतें, धार्मिक एवं सामाजिक रूढ़िवादिता, अज्ञानता, दुर्व्यसन, गन्दगी आदि होती है।

---

1. चन्द्रशेखर, सी० (1959), सर्वे आफ दि स्टेट्स आफ डेमोग्राफी इन इण्डिया, दि स्टडी आफ पापुलेशन, शिकागो, शिकागो विश्वविद्यालय प्रेस, पेज 249।

(3) पर्यावरणीय परिस्थितियां :

पर्यावरणीय सम्बन्धी परिस्थितियों के के अन्तर्गत जनसंख्या वृद्धि, आवास, व्यवस्था पेयजल, वायु, मल विसर्जन, स्वच्छता सम्बन्धी व्यवस्था सम्मिलित होती है।

जनसंख्या की निरन्तर वृद्धि ने भी पर्यावरण को दूषित कर दिया है, न बैठने-रहने की जगह, न चलने-फिरने की गुंजाइस। भूमि पर बढ़ती जनसंख्या का दबाव, बाढ़ जैसी स्थितियां, भूमि का कटाव, वृक्षो की कटाई आदि सभी कारक प्रदूषण की स्थिति उत्पन्न करते हैं।

भूमि प्रदूषण के कारण कृषि के उन्नत तरीके भी हैं। कृषि के विकास, विस्तार के लिये वैज्ञानिक विधियों से फसलें ली जा रही हैं। कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिये उर्वरकों और फसलों की सुरक्षा के लिये कीट नाशक उपयोग में लाये जाते हैं। इनकी कृषकों को वांछित जानकारी नहीं होती अतः असंतुलित प्रयोग बढ़ता है फलतः खाद्य-पदार्थ शुद्ध नहीं रह पाते। ऐसे पदार्थ भोजन में शामिल होने से स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।

वनों कटाव प्रदूषण को और बढ़ा रहा है। कम जमीन में अधिक लोगों का निवास और हरियाली का दूर-दूर तक न होना प्रदूषण बढ़ानें में सहायक होता है। इनके अतिरिक्त प्राकृतिक विपदायें, लगातार अणु परीक्षण, औद्योगिक प्रसार, नगरीकरण आदि प्रदूषण को जन्म देते हैं।

औद्योगिक नगरों में अधिकतर कार्बनडाई आक्साइड हवायें अधिक मात्रा में रहती है। प्रदूषित पर्यावरण बीमारी का घर है। आवास की गन्दी दशायें, वायु प्रदूषण, गन्दे पानी की आपूर्ति आदि ने नगरीय जीवन में अंधापन, टी०बी०, हैजा, काली खाँसी, डिफ्थीरिया, मलेरिया आदि बीमारियों को विकसित कर दिया है। मल त्याग की अनुचित व्यवस्था संक्रामण रोगों जैसे- हैजा, टी०बी०, पेट के कीड़े, डायरिया आदि को बढ़ाने में सहायक होती है।

(4) उच्च स्तरीय स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव :

शिशु स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव शिशु मृत्यु का एक बड़ा कारण है। भारत में हर वर्ष लगभग 2 करोड़ 20 लाख बच्चे पैदा होते हैं जिसमें से 10 प्रतिशत शिशु अपनी प्रथम वर्षगांठ नहीं मना पाते क्योंकि वे किसी न किसी बीमारी से ग्रस्त हो जाते हैं इनमें से आधे बच्चों को स्वास्थ्य सुविधाओं में प्रगति करके मृत्यु से बचाया जा सकता है। शिशुओं को छः जानलेवा बीमारियों-टिटनेस, पोलियो, डिफ्थीरिया, काली-खाँसी खसरा और तपेदिक से बचने के लिये भारत सरकार ने मुफ्त टीकाकरण की व्यवस्था की है। किन्तु सरकार की नीति का क्रियान्वयन ठीक से न होने के कारण शिशुओं के टीके नहीं लग पाते, गर्भावस्था में माँ के स्वास्थ्य केन्द्र पर न पहुंच पाने, टीकाकरण की उपयोगिता का ज्ञान न होने एवं अशिक्षा के कारण इनका प्रयोग नहीं किया जाता। इसके अतिरिक्त अन्य बीमारियों के इलाज के लिये उत्तम स्वास्थ्य केन्द्र, शिशु कल्याण केन्द्र के अभाव आदि शिशु मृत्यु-दर को बढ़ावा देते है।

(5) सामाजिक-आर्थिक कारक :

शिशुओं की मृत्यु के कारणों में सामाजिक एवं आर्थिक कारण प्रमुख हैं। यदि समाज की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है तो वहाँ निर्धनता, बेरोजगारी, अशिक्षा समुचित इलाज का अभाव रहेगा। ऐसी स्थिति में शिशु को जीवित रख पाना एक कठिन कार्य होता है। दूसरी तरफ हमारे जैसे समाज में स्त्रियों की स्थिति ऐसी है कि वे स्वंय कोई निर्णय नहीं ले सकतीं। साथ ही, उनके पास गृहस्थी के इतने कार्य होते हैं कि वह अपने लिये समय नहीं निकाल पाती । गर्भधारण की अवस्था में अधिकतर महिलायें राष्ट्रीय टीकाकरण कार्यक्रम के अन्तर्गत बहुत कम टीके लगवा पाती हैं। लिंग परहेज के कारण बच्ची के पैदा होने पर उसकी देखभाल ठीक से नहीं करती । अशिक्षा के कारण अनपढ़ दाइयों से प्रसव कराया जाता है जिससे शिशु के जन्म लेते ही मर जाने की सम्भावना अधिक रहती है । अज्ञानता एवं गन्दगी के वातावरण में शिशुओं का जीवन सुरक्षित नहीं है।

(6) दुर्घटनायें :

आज के आधुनिक परिवेश में मृत्यु का कारण दुर्घटनायें भी हैं जो मृत्यु को प्रभावित करने वाले कारकों में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। इनका विवरण निम्न है -

(अ) दूध पिलाते समय यह ध्यान देना कि बच्चा दूध निगल गया है कि नहीं । बच्चा दूध निगलने में देर कर रहा हो और दूध बराबर मुख में डाला जा रहा हो तो ऐसी स्थिति में असावधानी से शिशु का गला घुट सकता है।

(ब) बच्चे को बिस्तर पर लिटा कर दूर चले जाने पर बच्चा घूम सकता है उसकी नाक नीचे बिस्तर पर दब सकती है, इस असावधानी से शिशु मृत्यु सम्भव है ।

(स) चारपाई से नीचे गिर जाने से शिशु की मृत्यु सम्भव है ।

(द) बच्चे का घिसटते-घिसटते पानी इत्यादि के टब के पास चले जाने से मृत्यु हो सकती है ।

(च) अनाज इत्यादि का टुकड़ा गले में फस जाने से मृत्यु सम्भव है ।

उक्त सभी सम्भावनायें दुर्घटनओं से सम्बंधित हैं ।

प्रस्तुत अध्ययन में तथ्य संकलन के समय शिशु मृत्यु के जो प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कारण ज्ञात हो सके उन्हें अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से छः भागों में विभक्त करके निम्न सारणी में प्रस्तुत किया गया है।

सारणी 5.1

शिशु मृत्यु के विविध कारण

क्र0 सं0	शिशु मृत्यु के कारण	मृत शिशुओं की संख्या	प्रतिशत (लगभग)
1.	बीमारी/प्रसव सम्बंधी असावधानी	37	38
2.	कुपोषण	21	22
3.	पर्यावरणीय परिस्थितियां	09	09
4.	उच्च स्तरीय स्वास्थ्य सुविधओं का अभाव	13	14
5.	सामाजिक-आर्थिक कारक	10	10
6.	दुर्घटनायें	07	07
	योग :-	97	100

सारणी के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक (38 प्रतिशत) शिशुओं की मृत्यु बीमारी एवं प्रसव सम्बंधी असवाधनियों के कारण हुई तथा 22 प्रतिशत शिशुओं की मृत्यु कुपोषण से हो गयी। पर्यावरणीयों के कारण मरने वाले शिशुओं की संख्या 9 प्रतिशत एवं उच्चस्तरीय स्वास्थ्य सुविधाओं के अभाव के कारण मरने वाले शिशुओं का प्रतिशत 14 पाया गया इसी प्रकार, 10 प्रतिशत शिशुओं की मृत्यु सामाजिक-आर्थिक कारकों के कारण हुई साथ ही, 7 प्रतिशत शिशु दुर्घटनाओं से मृत हो गये।

शिशु मृत्यु के विविध कारण
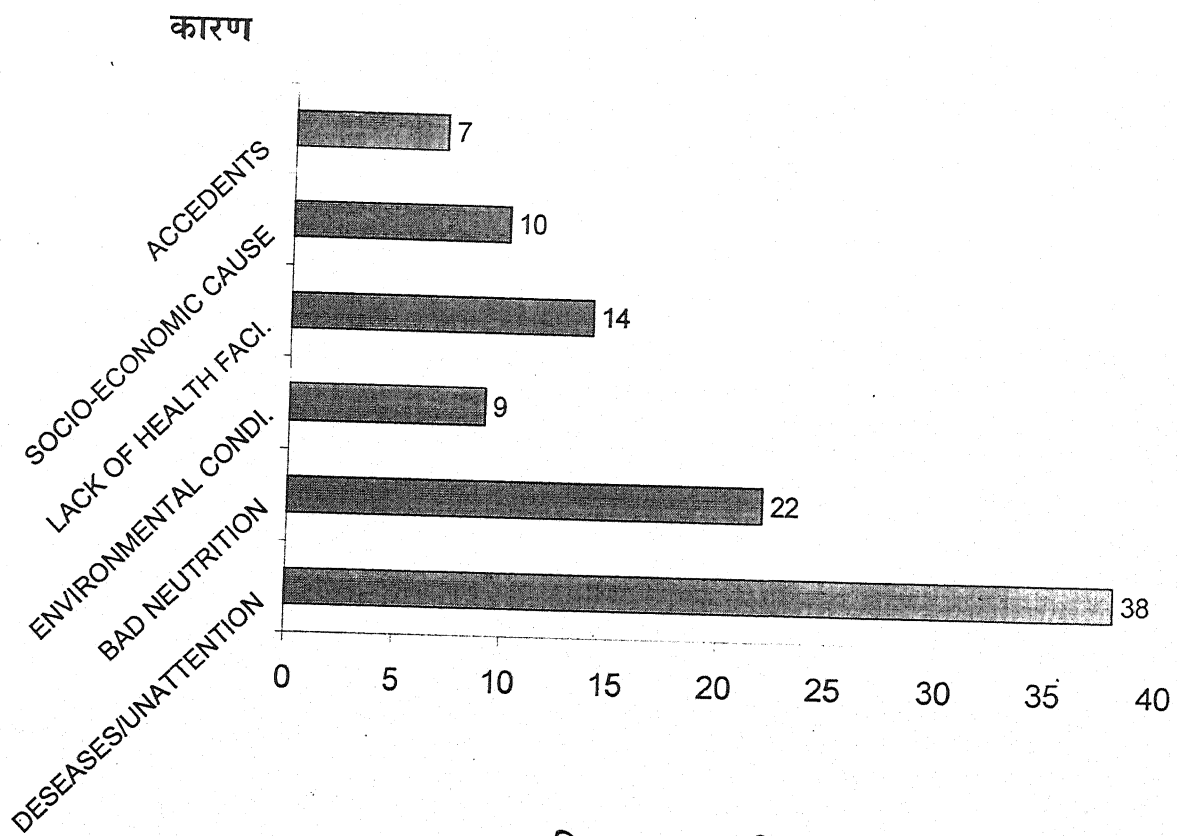
शिशु मृत्यु (प्रतिशत में)

चित्र संख्या-5.1

इस प्रकार तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक शिशुओं की मृत्यु बीमारी एवं प्रसव सम्बंधी असावधानियों के कारण होती है। इसके साथ, कुपोषण से मरने वाले शिशुओं की संख्या भी कम नहीं है । इस प्रकार लगभग 50 प्रतिशत शिशुओं की मृत्यु उक्त दो कारणों से हो जाती है जबकि शेष 50 प्रतिशत शिशुओं की मृत्यु अन्य विभिन्न कारणों से होती है।

शिशु मृत्यु के विभन्न कारणों एवं उनसें होने वाली मृत्यु को ज्ञांत करने के साथ ही साथ हमारा उद्देश्य कारणों के आधार पर शिशु मृत्यु को उच्च, मध्यम एव निम्न जातियों में तुलनात्मक स्थिति को प्रस्तुत करना है। अतः विभिन्न जातियों में शिशु मृत्यु के कारणों के आधार पर मृत्यु सम्बंधी तथ्य एकत्रित किये गये हैं जिन्हें निम्न सारणी में प्रस्तुत किया गया है।

सारणी 5.2

उच्च मध्यम निम्न जातियों में शिशु मृत्यु के कारण

क्र० सं०	कारण	जातियां						योग	प्रतिशत (लगभग)
		उच्च		मध्यम		निम्न			
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत		
1.	बीमारी/प्रसव संबंधी असावधानी	08	21.62	14	37.83	15	40.54	37	38
2.	कुपोषण	05	23.80	07	33.33	09	42.85	21	22
3.	पर्यावरणीय परिस्थितियां	04	44.44	03	33.33	02	22.22	09	09
4.	उच्च स्तरीय स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव	06	46.15	04	30.76	03	21.42	13	14
5.	सामाजिक आर्थिक कारक	01	10	02	20	07	70	10	10
6.	दुर्घटनाएं	00	00	02	28.57	05	71.43	07	07
	योग	24	24.74	32	32.98	41	42.26	97	100

उच्च मध्यम एवं निम्न जातियों में शिशु मृत्यु के कारण
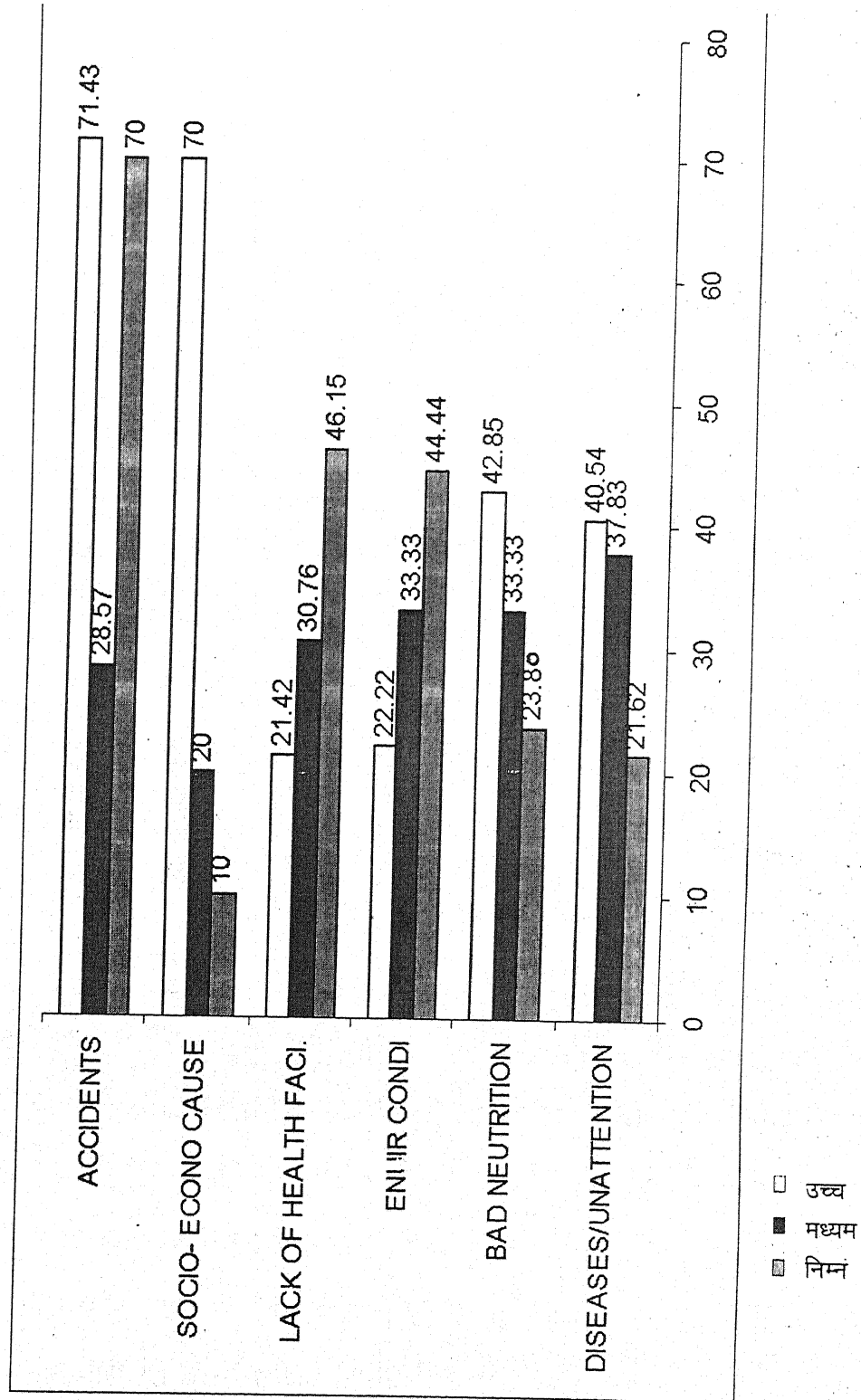
शिशु-मृत्यु (प्रतिशत में)

उपरोक्त सारणी से सं0 5.2 शिशु मृत्यु के कारणों के (1) बीमारी/प्रसव संबंधी असावधानी (2) कुपोषण (3) पर्यावरणीय परिस्थितियां (4) उच्च स्तरीय सुविधाओं को अभाव (5) सामाजिक-आर्थिक कारक तथा (6) दुर्घटनाओं में वर्गीकृत किया गया हैं। इन कारणों के आधार पर उच्च मध्यम एवं निम्न जातियों में शिशु मृत्यु को विश्लेषित किया गया है।

सारणी पर दृष्टिगत करने से स्पष्ट है कि बीमारी/प्रसव संबधी असावधानी से होने वाली कुल शिशु मृत्युए 37 है जो कुल शिशु मृत्युओं का 38.% है। बीमारी एवं प्रसव संबंधी असावधानी से होने वाली शिशु मृत्युओं में 08 या 21.62% शिशु मृत्युयें उच्च जाति के शिशुओं की है। 14 अर्थात 37.83% मध्यम जाति तथा 15 अर्थात 40.54% शिशु मृत्युएं निम्न जाति के शिशुओं की है। इस प्रकार स्पष्ट है कि बीमारी तथा प्रसव संबंधी असावधानी से मध्यम तथा निम्न जातियों में उच्च जातियों की अपेक्षा अधिक शिशु मौते होती है। इसका कारण उच्च जातियों में जागरूकता अधिक होना तथा मध्यम एवं निम्न जातियों में कम होना हो सकता हैं।

शिशु मृत्यु का महत्वपूर्ण कारण कुपोषण है/कुपोषण के कारण कुल शिशु मृत्युओं की संख्या 21 ही जो कुल शिशु मृत्युओं का 22.% है। उच्च जातियों में कुपोषण से होने वाली शिशु मृत्युओं की 23.80% शिशु मृत्युयें होती है जबकि मध्यम में 33.33% तथा निम्न जातियों में 42.85% शिशु मृत्युयें हुई। कुपोषण संपूर्ण भारत की एक गंम्भीर समस्या है। भारत चूंकि एक विकासशील अधिक जनसंख्या वाला देश है । अतः यहां आज भी कुपोषण की समस्या मौजूद है। गाँवों में इस समस्या का विकराल रूप देखने को मिलता है। बहुत से ऐसे परिवार है जहां एक ही समय भोजन बनता है। ऐसे में नवजात शिशुओं को सही पोषण मिल पाना सम्भव नहीं है। यही कारण है कि अध्ययन सत्र में कुपोषण से शिशुओं की मृत्यु का प्रतिशत अन्य कारणों की अपेक्षा अधिक है ।

पर्यावरणीय परिस्थितियां भी शिशु मृत्यु के लिये उत्तरदायी कारक हैं। सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि 97 में से 09% अर्थात 09 शिशुओं की मृत्युओं पर्यावरणीय परिस्थितियों कारण हुई। जिसमें कि 44.44% शिशु मृत्युयें उच्च जाति की 33.33% शिशु मृत्युयें मध्यम जाति की तथा 22.22% शिशु मृत्युयें निम्न जाति के शिशुओं की है।

स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव शिशु मृत्यु के लिए सर्वाधिक उत्तरदायी कारक है। भारत में आज भी बहुत से ऐसे गाँव है जहां स्वास्थ्य सुविधाओं का पूर्वतः अभाव है यदि स्वास्थ्य सुविधाएं है भी तो अत्यत घटिया स्तर की उच्च स्तरीय स्वास्थ्य सुविधाएं कुछ ही प्रतिशत गाँवों में ही अतः ऐसे में नवजात शिशुओं की मृत्यु होना स्वाभाविक है। यही कारण है कि कुल शिशुओं में 13 या 14% शिशु मौते उच्च स्तरीय्र स्वास्थ्य सुविधाओं के कारण हुई। जिसमें से 46.5% उच्च जातियों में, 30.76% मध्यम जाति में तथ्य 21.42% निम्न जातियों के शिशुओं की है।

सामाजिक-आर्थिक कारक भी शिशु मृत्युओं के लिए महत्वपूर्ण उत्तरदायी कारक है। परिवार की सामाजिक-आर्थिक दशाएं उसकी जीवन अवधि को भी निर्धारित करते है। यही कारण है कि 10% शिशुओं की जाति के 20% मध्यम जाति के तथा शेष 70% निम्न जाति के शिशुओं की है।

उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त बहुत से शिशुओं की मृत्यु दुर्घटनाओं के फलस्वरूप भी हो जाती है। इसी लिए 7 शिशुओं की मृत्यु अध्ययन क्षेत्र में दुर्घटना के परिणामस्वरूप हुई जिसमें कि उच्च जाति का कोई भी शिशु दुर्घटनावश नहीं मरा जबकि 28.07% मध्यम जाति के तथा शेष 71.43% निम्न जाति शिशुओं की मृत्यु दुर्घटनावश हुई।

सारणी 5.3

शिशु मृत्यु के कारणों के अनुसार नवजात एवं पश्च-नवजात शिशु मृत्यु का विवरण

क्र० सं०	शिशु मृत्यु के कारण	नवजात अवस्था में शिशु मृत्यु		पश्च-नवजात अवस्था में शिशु मृत्यु		योग	प्रतिशत
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत		
1.	बीमारी/प्रसव सम्बन्धी असावधानियां	15 (40)	37	22 (60)	39	37 (100)	38
2.	कुपोषण	10 (48)	25	11 (52)	19	21 (100)	22
3.	पर्यावरणीय परिस्थितियां	04 (44)	10	05 (56)	09	09 (100)	09
4.	उच्च स्तरीय स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव	05 (38)	13	08 (62)	14	13 (100)	14
5.	सामाजिक-आर्थिक कारक	04 (40)	10	06 (60)	11	10 (100)	10
6.	दुर्घटनाएं	02 (28)	05	05 (72)	09	07 (100)	07
	योग	40 (41)	100	57 (59)	100 100	97 (100)	100

नोट - कोष्ठक में दिए गए अंक संबंधित प्रतिशत को दर्शाते है।

सारिणी से स्पष्ट होता है कि बीमारी एवं प्रसव सम्बन्धी असावधानी के कारण कुल 37 शिशुओं की मृत्यु होती है जिसमें से 40 प्रतिशत शिशु नवजात अवस्था में एवं 60 प्रतिशत पश्च-नवजात अवस्था में मृत होते हैं तथा कुपोषण के कारण मरने वाले शिशुओं की कुल संख्या 21 है जिसमें से 48 प्रतिशत शिशु नवजात अवस्था से व 52 प्रतिशत शिशु पश्च-नवजात अवस्था से सम्बंधित है। पर्यावरणीय परिस्थितियों के कारण मरने वाले शिशुओं की कुल संख्या 09 है जिसमें से नवजात एवं पश्च-नवजात अवस्था में मरनें वाले शिशुओं का प्रतिशत क्रमशः 44 एवं 56 पाया गया।

शिशु मृत्यु के कारणों के अनुसार नवजात एवं पश्च-नवजात शिशु मृत्यु
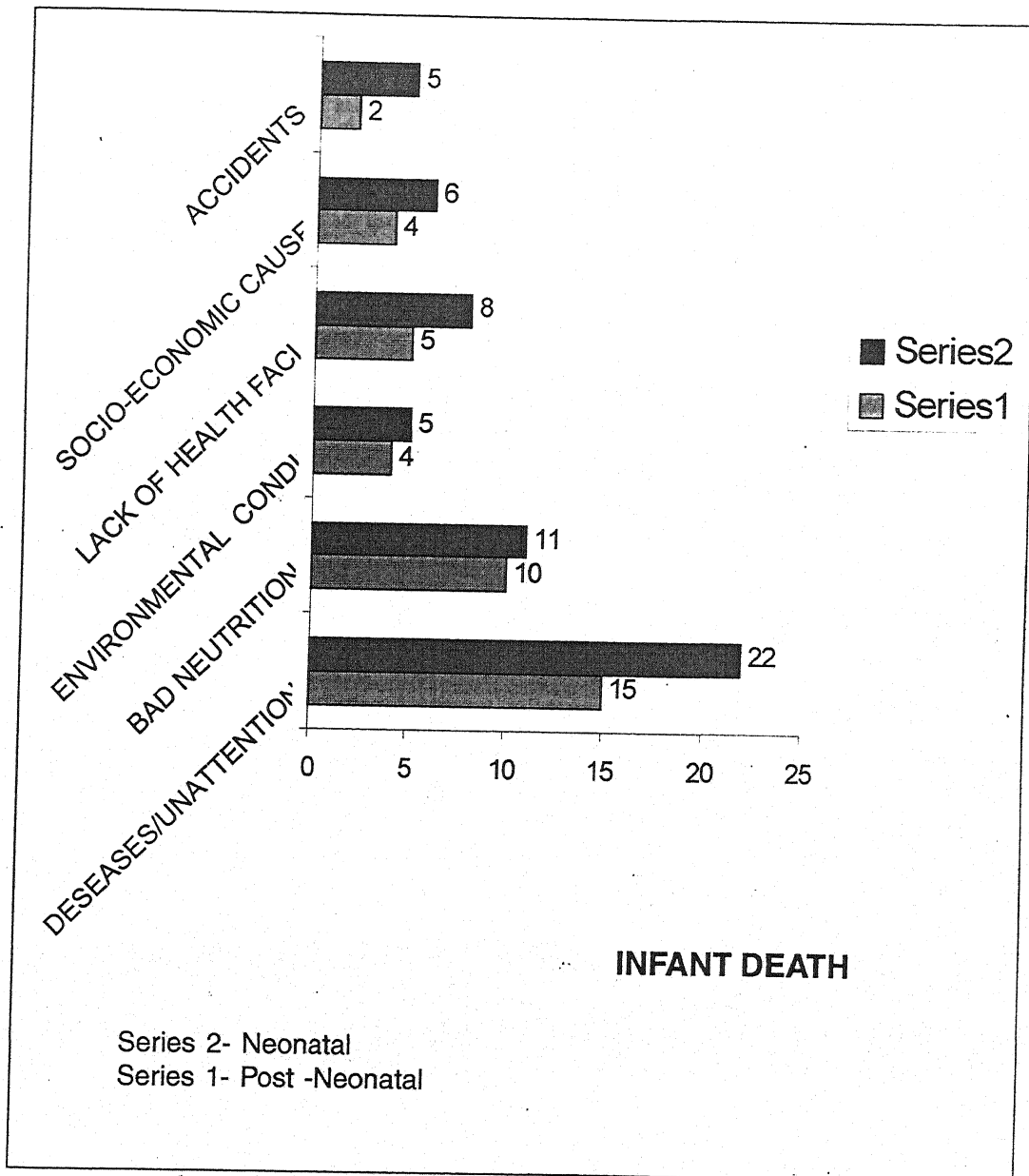
TABLE - -5-3

साथ ही, उच्च-स्तरीय स्वास्थ्य सुविधाओं के अभाव के कारण कुल 13 शिशुओं की मृत्यु हुई जिसमें से 38 प्रतिशत शिशु नवजात अवस्था में व 62 प्रतिशत पश्च-नवजात अवस्था में मृत हो गये । इसी प्रकार, सामाजिक-आर्थिक कारकों के प्रभाव के कारण कुल 10 शिशु मृत हुये जिसमें से 40 प्रतिशत शिशु नवजात अवस्था व 60 प्रतिशत पश्च-नवजात अवस्था से सम्बंधित थे । इसके अतिरिक्त दुर्घटनाओं से कुल 07 शिशु मृत हुये जिसमें नवजात एवं पश्च-नवजात अवस्था में मरने वाले शिशुओं की संख्या क्रमशः 28 एवं 72 प्रतिशत पायी गई ।

साथ ही, अवलोकन से यह भी ज्ञात होता हे कि बीमारी एवं प्रसव सम्बन्धी असावधानी के कारण 37 प्रतिशत शिशु नवजात अवस्था में मृत हो जाते हैं जबकि 39 प्रतिशत शिशुओं की मृत्यु पश्च-नवजात अवस्था में होती है । कुपोषण के कारण नवजात अवस्था में कुल मृत्यु का 25 प्रतिशत की मृत्यु होती है तथा पश्च-नवजात अवस्था में कुल मृत्यु का 19 प्रतिशत की मृत्यु होती है । इसी प्रकार, पर्यावरणीय परिस्थितियों के कारण 10 प्रतिशत की मृत्यु नवजात अवस्था में व 09 प्रतिशत की मृत्यु पश्च-नवजात अवस्था में होती है । साथ ही, उच्च स्तरीय स्वास्थ्य सुविधाओं के अभाव के कारण 13 प्रतिशत की मृत्यु नवजात अवस्था में व 14 प्रतिशत की मृत्यु पश्च-नवजात अवस्था में होती है । इसके अतिरिक्त, सामाजिक-आर्थिक कारकों के कारण नवजात अवस्था में 10 प्रतिशत की मृत्यु एवं 11 प्रतिशत की मृत्यु पश्च-नवजात अवस्था में होती है । तथा दुर्घटनाओं के कारण नवजात अवस्था में 05 प्रतिशत की मृत्यु एवं 09 प्रतिशत की मृत्यु पश्च-नवजात अवस्था में होती है ।

इस प्रकार नवजात अवस्था में कुल 40 शिशुओं की मृत्यु होती है जो कि सम्पूर्ण मृत्यु का 41 प्रतिशत है तथा पश्च-नवजात अवस्था में कुल मृत शिशुओं की संख्या 57 है जो कि कुल मृत्यु 59 प्रतिशत पायी गई ।

सारणी के समग्र विलेषण से स्पष्ट है कि नवजात शिशु मृत्यु की अपेक्षा पश्च-नवजात

शिशु मृत्यु अधिक ही नवजात में जन्म से प्रथम चार सप्ताह के अन्दर मर जाने वाले शिशुओं को लिया जाता है जबकि पश्च-नवजात में शेष 1 वर्ष के भीतर मरने वाले शिशु आते है। शिशु मृत्यु के कारणों के आधार पर नवजात एवं पश्च-नवजात शिशु मृत्यु का विश्लेषण करने हम पाते है कि नवजात अवस्था में सर्वाधिक शिशु बीमारी या प्रसव संबंधी असावधानी तथा कुपोषण के कारण मरते है। साथ ही उच्च स्तरीय स्वास्थ्य सुविधाएं एवं सामाजिक-आर्थिक कारक भी कुछ हद तक नवजात शिशु मृत्यु के लिए उत्तरदायी है।

इसी प्रकार पश्च-नवजात शिशु मृत्यु का विश्लेषण करने पर हम पाते है कि पश्च-नवजात शिशु मृत्यु के प्रमुख कारकों में भी बीमारी या प्रसव संबधी असावधानी तथा कुपोषण है जबकि पश्च-नवजात शिशु मृत्यु में यह देखने में आता है कि उच्च स्तरीय स्वास्थ्य सुविधाओं तथा सामाजिक-आर्थिक कारक भी अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाते है। चूंकि प्रथम चार सप्ताह बीतने के बाद बच्चे की उचित देख-भाल एवं टीकाकरण की आवश्यकता होती है । अतः स्वस्थ शिशु के लिए सामाजिक-आर्थिक कारक एवं उच्च स्वास्थ्य सुविधाओं का महत्व बढ़ जाता है ।

इनके अतिरिक्त नचजात एवं पश्च नवजात शिशु मृत्यु के लिए कुछ हद तक पर्यावरणीय परिस्थितियां एवं दुर्घटानाएं भी जिम्मेदार होती है। जैसा की सारणी से स्पष्ट है।

जैसा कि शिशु मृत्यु के कारणों के सन्दर्भ में प्रस्तुत आंकड़ों से स्पष्ट है कि सर्वाधिक शिशु मृत्यु बीमारियों के कारण होती है। शिशुओं में प्रायः कुछ बीमारियां प्रमुख है जिनमें टिटनेस, डिफथीरिया, काली खांसी, डायरिया, खसरा आदि महत्वपूर्ण है । अध्ययन क्षेत्र में उक्त बीमारियों से होने वाली शिशु मृत्युओं का विवरण निम्न सारणी में दिया गया है -

सारणी सं0 5.4

बीमारियों से होने वाली शिशु मृत्यु

क्र0 सं0	रोगो का नाम	शिशु मृत्यु संख्या	प्रतिशत (लगभग)
1.	टिटनेस	23	24
2.	डिप्थीरिया	07	07
3.	काली खांसी	12	12
4.	डायरिया	29	30
5.	खसरा	11	11
6.	अन्य	15	16
	योग	97	100

सारणी के अवलोकन से स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र या बुंदलेखण्ड क्षेत्र टिटनेस और डायरिया से अत्यधिक शिशु मृत्युयें होती है । अभी हाल में वर्ष 2004-05 में डायरिया के प्रकोप ने बांदा जनपद में सर्वाधिक शिशुओं को लील लिया । अध्ययन क्षेत्र में 24% मौते टिटनेस से तथा सर्वाधिक 30% शिशु मृत्युयें डायरिया के कारण हुई । काली खांसी और खसरा से होने वाली शिशु मृत्युओं का प्रतिशत क्रमशः 12 और 11 है । इसी तरह से डिफ्थीरिया बीमारी से भी 7% शिशुओं की मृत्यु हुई । शेष 16% शिशुओं की मृत्यु अन्य बीमारियों से हुई । जिसमें बुखार, कफ या अन्य बीमारिया हो सकती है । चूंकि बांदा जनपद एक पिछड़ा जिला है और यहाँ उच्च्व स्तरीय चिकित्सीय सुविधाओं का सर्वथा अभाव है अतः यहाँ पर डायरिया जैसी बीमारियों का तत्काल इलाज संभव नही पाता और कई शिशु जिला अस्पताल तक आते-आते ही दम तोड़ देते है । जो आ भी जाते है वे यहाँ की खराब व्यवस्था का शिकार बन जाते है ।

बीमारियों से होने वाली शिशु मृत्यु

चित्र संख्या-5.4
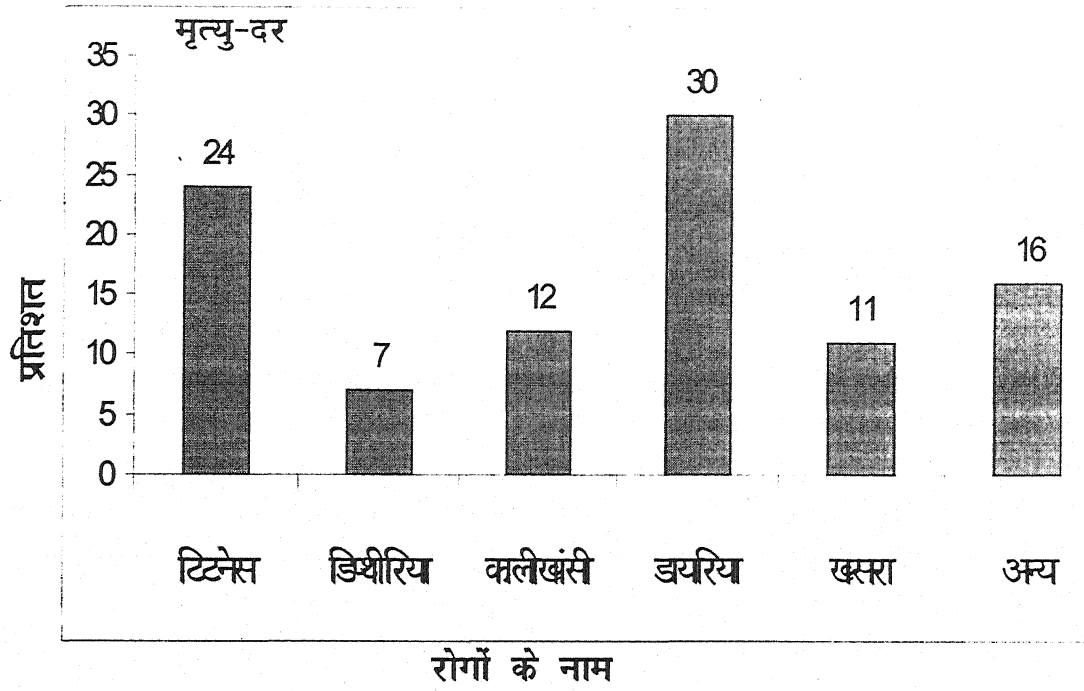
शिशु मृत्यु

सारणी सं० 5.5

विभिन्न जातियों में बीमारियों से होने वाली शिशु मृत्यु

क्र० सं०	रोगो का नाम	उच्च		मध्यम		निम्न		योग	प्रतिशत
		शिशु मृत्यु		शिशु मृत्यु		शिशु मृत्यु			
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत		
1.	टिटनेस	03	13.04	07	30.43	13	56.52	23	24
2.	डिफ्थीरिया	02	28.5	02	28.5	03	42.85	07	07
3.	काली खांसी	02	16.66	04	33.32	06	50	12	12
4.	डायरिया	05	17.24	08	27.58	16	55.17	29	30
5.	खसरा	04	36.36	05	45.45	02	18.18	11	11
6.	अन्य	08	53.33	06	40	01	06	15	16
	योग	24	25	32	33	41	42	97	100

उपरोक्त सारणी सं० 5.5 में विभिन्न जातियों में बीमारियों से होने वाली शिशु मौतो को दर्शाया गया है। चूंकि अध्ययन में जातियों को उच्च, मध्यम और निम्न वर्गो में वगीकृत किया गया है। बीमारियों को टिटनेस, डिफ्थीरिया काली खासी, डायरिया, खसरा और अन्य की श्रेणियों में रखा गया है ।

टिटनेस से होने वाली मृत्यु शिशु मौतों का 13.04% शिशु मौत उच्च जाति समूह के शिशुओं की हैं। 30.43% मध्यम जाति तथा 56.52% शिशु मृत्यु निम्न जाति के समूह के शिशुओं की हैं। इस प्रकार देखने में आता है कि टिटनेस बीमारी से निम्न जाति के शिशुओं की मृत्यु अधिक होती है। इसका कारण जानकारी न होने से उचित औजार से नाल काटने के कारण भी प्रसव के दौरान अनेक शिशुओं की मृत्यु हो जाती है ।

विभिन्न जातियों में बीमारियों से होने वाली शिशु मृत्यु

चित्र संख्या 5.5
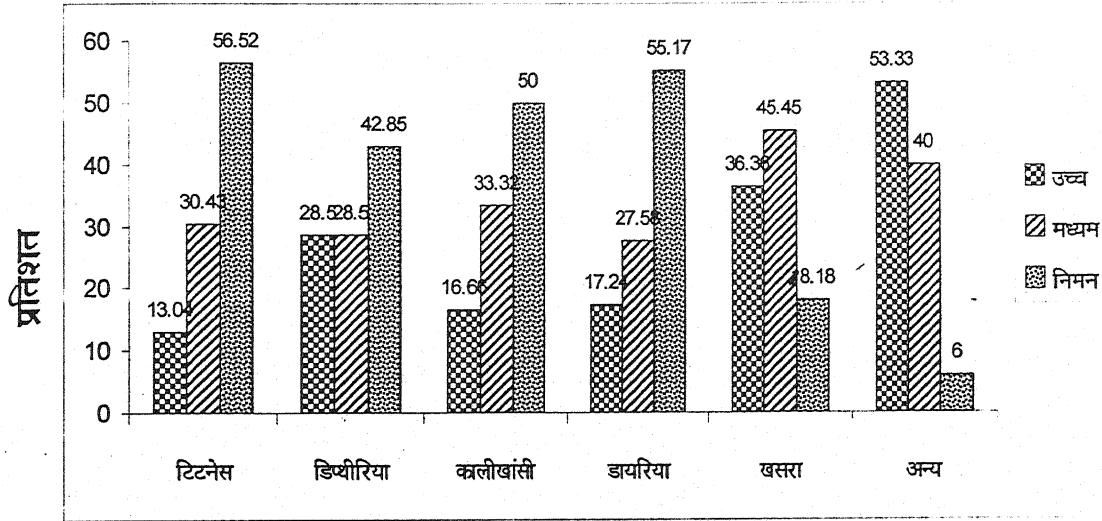
बीमारियाँ

हालांकि डिफ्थीरिया से होने वाली शिशु मृत्युओं का प्रतिशत कम ही है । फिर भी कुछ प्रतिशत मृत्यु डिफ्थीरिया से मरने वाले कुल शिशुओं में से 28.5% उच्च्य जाति के शिशु तथा 28.5% ही मध्यम जाति के शिशु है । जबकि 42.85% निम्न जाति समूह के शिशु है। डिफ्थीरिया से भी निम्न जाति के शिशुओं की मृत्युओं का प्रतिशत अधिक है । इसका कारण गरीबी के कारण उचित इलाज न करा पाना हो सकता है।

एक समय काली खांसी को महामारी के रूप में जाना जाता है । वर्तमान में इस बीमारी पर काफी नियंत्रण पा लिया गया है । परन्तु इसके बावजूद अभी गाँवों में काली खांसी से बहुत अधिर्क शिशुओं की मृत्यु हो जाती है। यही कारण है कि अध्ययन क्षेत्र में कुल मौतों का 12% अभी भी काली खांसी का है । जिसमें कि 16.66% मौते उच्च्य जाति समूह के शिशुओं 23.32% मध्यम जाति समूह के शिशुओं की सर्वाधिक या आधे (50%) निम्न जाति समूह के शिशुओं की मृत्युयें है । इसका कारण निम्न जाति समूहों की जातियों में गंदगी का फैलाव है । साफ-सफाई न रखनें से इस बीमारी के विषाणु अतिशीघ्र फैल जाते है ।

अभी वर्ष 2004-05 में बाँदा जनपद में डायरिया से होने वाली मौते उत्तर प्रदेश में सर्वाधिक थी । यही कारण है कि अध्ययन क्षेत्र में कुल शिशु मृत्युओं का 29% डायरिया द्वारा जनित है । जिसमें कि 17.24% उच्च्व जाति, 27.58% मध्यम जाति, तथा 55.17% निम्न जाति समूहों का है । डायरिया में उल्टी, दस्त से पानी की कमी होने के कारण मृत्यु हो जाती है जिसके तात्कालिक लाभ के लिये, **W.H.O.** प्रमाणित **O.R.S.** ने घोल पिलाना अत्यावश्यक है परन्तु निम्न जातियों में जागरूकता और शिक्षा की कमी के कारण सम्यक् ज्ञान का अभाव है अतः उचित देख-रेख न कर पाने के कारण अधिकांश डायरिया ग्रस्त शिशु मौत की नीद सो जाते है ।

खसरा भी एक प्राचीन बीमारी है, जिससे बहुत अधिक मौते होती रही है । अध्ययन क्षेत्र में भी कुछ प्रतिशत (11%) शिशुओं की मृत्यु खसरा बीमारी के कारण हुई है । जिसमें कि 36.36% उच्च जाति, 45.45% मध्यम जाति, तथा मात्र 18.18% निम्न जाति समूहो के शिशुओं भी मृत्युयें सम्मिलित है।

अन्य बीमारियों जैसे, बुखार, जुकाम, खांसी, से भी उचित इलाज के अभाव में कई शिशुओं की मृत्यु हो जाती है । यही कारण है कि उन शिशुओं की मृत्यु का 15% भाग अन्य बीमारियों का है । जिसमें कि 53.33% हिस्सा उच्च जाति, 40% मध्यम जाति तथा 06% निम्न जाति का है।

सारणी 5.6

बीमारियों से मरने वाले नवजात एवं पश्च-नवजात शिशु मृत्यु का विवरण

क्र० सं०	रोगो का नाम	नवजात अवस्था में शिशु मृत्यु संख्या	प्रतिशत	पश्च-नवजात अवस्था में शिशु मृत्यु सं०	प्रतिशत	योग
1.	टिटनेस	21	(52)	(02)	(03)	(23)
2.	डिफ्थीरिया	04 (57)	(10)	03 (43)	05	07 (100)
3.	काली खांसी	-	-	12 (100)	(21)	12 (100)
3.	डायरिया	13 (44)	(33)	16 (56)	28	29 (100)
4.	खसरा	(02) (20)	(05)	(09) (80)	(16)	11 (100)
5.	अन्य	-	-	15 (100)	27	15 (100)
योग :-		40 (41)	(100)	57 (59)	(100)	97 (100)

टिप्पणी :- कोष्ठक में दिये गये अंक सम्बंधित प्रतिशत को दर्शाते हैं ।

चित्र संख्या-5.6
बीमारियों से मरने वाले नवजात एवं पश्च-नवजात शिशु मृत्यु
OTHERS
KHASRA
DIARIA
KALIKHASNI
DIPTHEREA
15
9
2
16
13
12
3
4
NEONATAL
POST NEONATAL
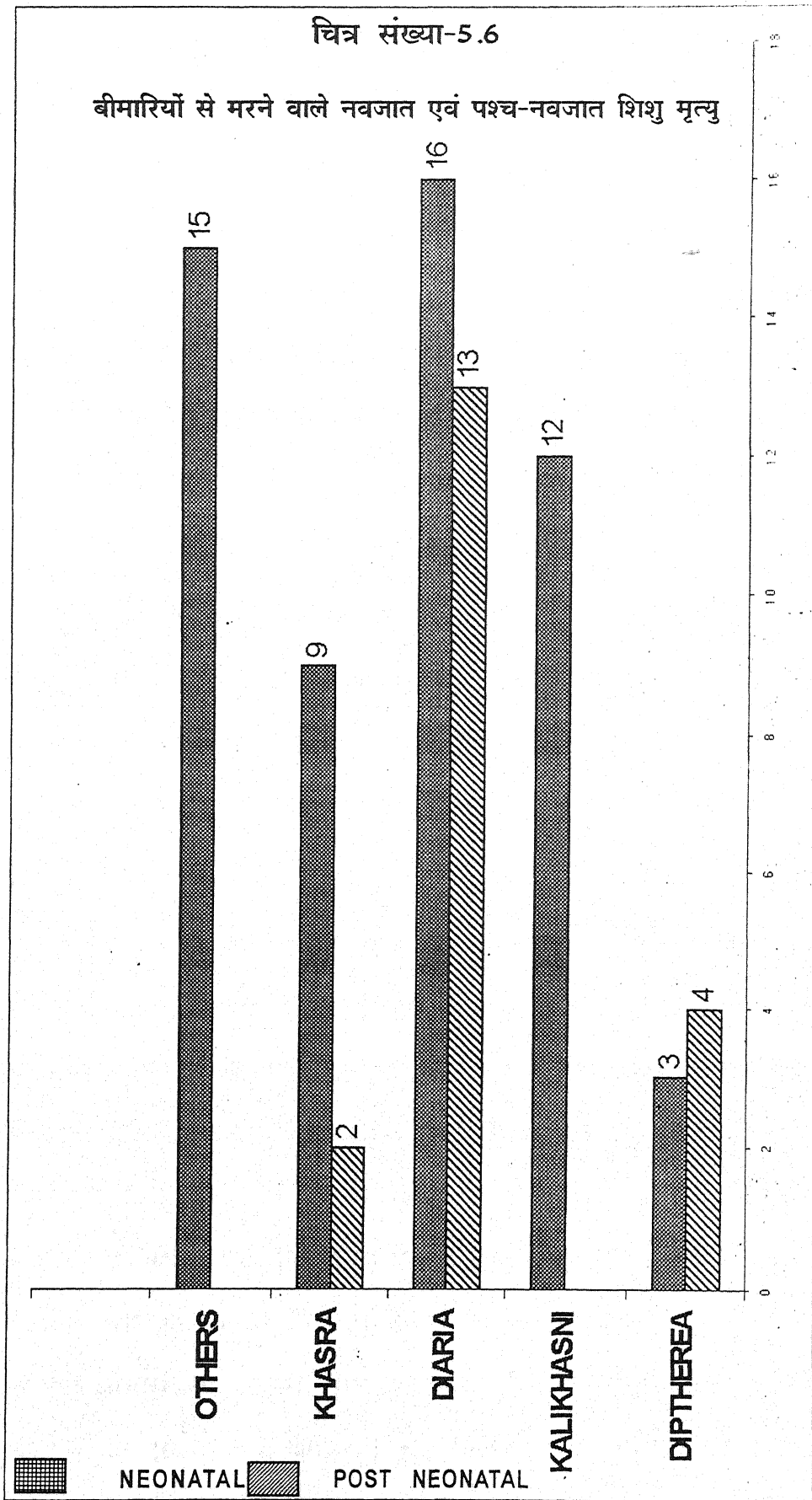
सारणी के अवलोकन से ज्ञात होता है कि टिटनेस से मरने वाले कुल शिशुओं की संख्या 23 है जिसमें से 91 प्रतिशत शिशु नवजात अवस्था में 9 प्रतिशत शिशु पश्च-नवजात अवस्था में मृत हो जाते हैं तथा डिफ्थीरिया से कुल 07 शिशुओं की मृत्यु होती है। जिसमें से 57 प्रतिशत शिशु नवजात एवं 43 प्रतिशत पश्च नवजात अवस्था से संबंधित है। इसी प्रकार, काली खांसी से कुल 12 शिशुओं की मृत्यु होती है। जिसमें से सभी शिशुओं की मृत्यु पश्च नवजात अवस्था में होती है इसके अतिरिक्त डायरिया नामक बीमारी के कारण 29 शिशओं की मृत्यु होती है जिसमें से नवजात एवं पश्च-नवजात अवस्था में मरने वाले शिशुओं का प्रतिशत क्रमशः 44 एवं 56 है । साथ ही खसरा से मरने वाले शिशुओं की संख्या 11 है जिसमें से 20 प्रतिशत शिशु नवजात अवस्था व 80 प्रतिशत शिशु पश्च-नवजात अवस्था में मृत हो गये तथा अन्य बीमारियों के द्वारा कुल 15 शिशुओं की मृत्यु हुई जिसमें से सभी शिशुओं की मृत्यु पश्च-नवजात अवस्था में हुई ।

इस प्रकार विभिन्न रोगों के कारण कुल 97 शिशुओं की मृत्यु होती है जिसमें से 41 प्रतिशत शिशुओं की मृत्यु नवजात अवस्था में एवं 59 प्रतिशत शिशुओं की मृत्यु पश्च-नवजात अवस्था में हुई ।

सारणी के तथ्यों के विश्लेषण के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक मृत्यु टिटनेस नामक बीमारी से होती है । साथ ही, यह भी स्पष्ट है कि इस बीमारी से ज्यादातर शिशु मृत्यु नवाजात अवस्था में ही हो जाती है इसका कारण सम्भवतः यह है कि सम्बंधित क्षेत्र में निरक्षरता अधिक एवं सामाजिक-आर्थिक स्तर अत्यधिक निम्न है शिक्षा की कमी के कारण जागरूकता का न होना एवं धन के अभाव के कारण ज्यादातर प्रसव अप्रशिक्षित दाइयों या परिवार के बड़ी-बुढ़ियों द्वारा व ज्यादातर घरों में कराये जाते हैं जहाँ स्वच्छता का अभाव, आधुनिक यंत्रों का प्रयोग न किया जाना गन्दे व पुराने कपड़ों का प्रयोग किया जाता है व परम्परागत औजारों जैसे- हसियां, खुर्पा, जंग लगा हुआ छुरा आदि का प्रयोग बे-हिचक किया जाता है जो कि इस जानलेवा बीमारी का कारण बनते हैं एवं शिशु मृत्यु-दर को बढ़ाने

में योगदान देते हैं । इसके अतिरिक्त, डिफ्थीरिया, काली खांसी, खसरा आदि से होने वाली मृत्यु को भी टीका आदि लगवाकर रोका जा सकता है ।

सारणी के अवलोकन से यह भी स्पष्ट होता है कि विभिन्न रोगों से नवजात अवस्था में होने वाली कुल शिशु मृत्यु की संख्या 40 है (जो कि सम्पूर्ण बीमारियों से मरने वाली शिशु संख्या का 41 प्रतिशत है) जिसमें से 52 प्रतिशत की मृत्यु टिटनेस से, 10 प्रतिशत की मृत्यु डिफ्थीरिया से 33 प्रतिशत की मृत्यु डायरिया एवं 5 प्रतिशत की मृत्यु खसरा नामक बीमारी से हो जाती है ।

इसी प्रकार पश्च-नवजात अवस्था में कुल शिशु मृत्यु संख्या 57 पायी गई जो कि सम्पूर्ण बीमारियों से मरने वाली संख्या का 59 प्रतिशत है । जिसमें से 3 प्रतिशत की मृत्यु टिटनेस, 05 प्रतिशत डिफ्थीरिया, 21 प्रतिशत काली खांसी, 28 प्रतिशत डायरिया, 16 प्रतिशत खसरा एवं 27 प्रतिशत शिशुओं की मृत्यु अन्य कारणों से हो गई ।

भारत में उच्च शिशु मृत्यु दर के कारण :-

संयुक्त राष्ट्र-संघ ने शिशु मरण दर के सम्बन्ध में प्रकाशित पत्रिका में लिखा है :-

"Statistics based on the experience of different countries show that, apart from the genetic factors, the age of the mother, order of brith, time interval between briths ect. also play signiflcant role in determining the level of infant mortality."

यदि माँ की आयु के आधार पर शिशु मरण-दर को ग्राफ में अंकित किया जाये तो वक्र की आकृति यू (U) की भांति बनती है । जिससे पता चलता है कि जब माँ की आयु कम होती है तो शिशु-मरण अधिक होता है । 20 वर्ष से पूर्व यदि मातायें बच्चों को जन्म देती हैं तो उनमें मृत्यु की संभावनायें अधिक होती है, 25-30 वर्ष की आयु में शिशु मरण न्यूनतम होती है तथा 30 वर्ष के बाद फिर शिशु मरण बढ़ने लगती है। प्रायः प्रथम बच्चे (First order brith) में मरण-दर अधिक होती है, द्वितीय में न्यूनतम। तृतीय व चतुर्थ में धीरे-धीरे बढ़ने

लगती है । पाँचवें बच्चे के बाद मृत्यु-दर तीव्र दर से बढ़ती है । महाराष्ट्र राज्य के एक अध्ययन के अनुसार शिशु मरण के प्रमुख कारण निम्न हैं -

"The leading causes of infant deaths are prematurity, tetanus, broncho pneumonia, asphyxia, nutrition defciency diseaes, diarr hoea, ect."

भारत में शिशु मरण-दर के ऊँचा होने के प्रमुख कारण निम्न है -

(1) बाल-विवाह

(2) गर्भावस्था में माँ के लिए पौष्टिक आहार का अभाव,

(3) अकुशल दवाइयों द्वारा प्रसव ।

(4) चिकित्सा एवं आधुनिक प्रसूति-गृहों का अभाव व अप्रचलन ।

(5) मातृत्व अज्ञानता ।

(6) रूढ़िवादिता एवं अन्ध-विश्वास ।

(7) जघन्य दरिद्रता ।

(8) दो बच्चों के बीच कम अवधि होना, तथा बार-बार प्रसव से माँ के स्वास्थ्य में गिरावट।

(9) पालन-पोषण का दोषपूर्ण ढंग, आदि ।

संक्षेप में शिशु मरण-दर ऊँची होने के लिए भी वही घटक जिम्मेदार है जो कि भारत की समस्त जनसंख्या की मृत्यु-दर को ऊँची बनाये हुये हैं। मृत्यु के विभिन्न कारणों की सापेक्षिक भूमिका का अध्ययन करने के लिए कारण व उसके द्वारा हुई मृत्यु के आँकड़े तो उपलब्ध नहीं होते हैं, किन्तु जो कुछ भी सूचनायें महापजीकार जन-गणना विभाग द्वारा एकत्र व उपलब्ध की गई है उनसे किसी भी निष्कर्ष पर पहुँचना कठिन है। समस्त मृत्यु की घटनाओं में 20.6% का कारण बुखार एवं 24.5% का कारण कफ बताया गया है जबकि केवल कफ या बुखार से इतने व्यक्तियों के मरने की सूचना पर सन्देह होता है । इसका प्रमुख कारण यह है कि अधिकांश

व्यक्ति मृत्यु कारण समझ नहीं पाते है। रोगों से अनभिज्ञ होने के कारण वे कफ या बुखार बता देते हैं ।

शिशु मृत्यु की समस्या के निवारण के लिये सुझाव

प्रस्तुत अध्याय में शिशु मृत्यु के कारणों की सूक्ष्म रूप विवेचना की गई, जिसमें यह ज्ञात हुआ कि वे कारण, जो शिशु मृत्यु को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं वे हैं बीमारी/प्रसव सम्बन्धी असावधानी, कुपोषण, पर्यावरणीय परिस्थितियों, उच्च-स्तरीय स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव के साथ ही समाजिक-आर्थिक कारक एवं दुर्घटनायें आदि । उक्त कारणों के अतिरिक्त कुछ और भी सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियां हैं जो शिशु मृत्यु को प्रभावित करती हैं जैसे-बाल विवाह, पर्दा प्रथा, अशिक्षा, अज्ञानता, रूढ़िवादिता, अधिक संतान, अपौष्टिक भोजन, निर्धनता, माता-पिता की रूग्णता एवं कल्याणकाली संस्थाओं की कमी आदि से सभी कारण एक दूसरे पर अन्योन्याश्रित हैं । अब उक्त कारणों से होने वाली शिशु मृत्यु की समस्या कें निवारण हेतु सुझाव प्रस्तुत किये जायेंगे ताकि समस्या का निराकरण किया जा सके ।

शिशु मृत्यु-दर में कमी करने के लिये एवं समस्या के समाधान हेतु निम्नलिखित ताकि किये जा सकते हैं।

भारत में हर वर्ष लगभग 2 करोड़ 20 लाख बच्चे पैदा होते है । हर 10 बच्चों में एक शिशु अपना पहला जन्म दिन भी नहीं मना पाता, क्योंकि वह किसी न किसी जानलेवा बीमारी का शिकार हो जाता है। इनमें से आधे बच्चों को मौत से बचाया जा सकता है यदि इन्हें समय पर जानलेवा बीमारियों टिटनेस, डिफ्थीरिया, काली खांसी, पोलियों, डायरिया, खसरा आदि के टीके समय से लगवा दिये जायें ।

(1) अध्ययन से स्पष्ट है कि लगभग 62 प्रतिशत प्रसव दाइयों, रिश्तेदारों, या अप्रशिक्षित कार्यकर्ताओं द्वारा कराये जाते हैं। सरकार की ओर सें अप्रशिक्षित दाइयों को प्रशिक्षित करने के लिये कार्यक्रम चल रहे हैं इन दाइयों को यदि प्रशिक्षण दे दिया जाये तो ये अवश्य ही प्रसव के समय सफाई का ध्यान रख सकती हैं । इसमें परिवार के लोगों का सहयोग भी आवश्यक है।

इसी प्रकार लगभग 24 प्रतिशत शिशु टिटनेस की बीमारी से मर जाते हैं जिन्हें कुछ सावधानियां बरत कर बचाया जा सकता है । यदि घर की कोई महिला गर्भवती है तो परिवार वालों को चाहिए कि एक साफ धुली धोती, नया ब्लेड, साफ मजबूत धागा व साबुन से हाँथ धोकर साफ कपड़े पर ही प्रसूता को लिटाये। बच्चे की नाल काटने के लिये ब्लेड या चाकू को गर्म पानी में उबाल लें तथा जिस धागे से नाल को बाधें उसको भी उबाल लें, उबालने से उसके कीटाणु मर जाते हैं । नाल काटने से जो घाव बनता है उस पर तेल, घी, राख आदि लगाना बहुत घातक हो सकता है उस घाव को खुला छोड़ना ही बेहतर होता है । घाव जल्दी ही सूख जाता है ये सावधानियां बरतने से शिशु के शरीर में रोग के कीटाणु आदि प्रवेश कर पाते हैं।

(2) अध्ययन के निष्कर्षो से स्पष्ट हो चुका है कि कुल मृत्यु का लगभग 22 प्रतिशत शिशु कुपोषण के कारण मर जाते हैं । इससे बचने के लिये सामाजिक-आर्थिक प्रगति आवश्यक है। इसके साथ ही, माँ के भोजन एवं स्वास्थ्य पर ध्यान दिया जाये तो इसे आसानी से दूर किया जा सकता है । कुपोषण को दूर करने के लिये भोजन पर इस प्रकार ध्यान दिया जाना चाहिए-

(अ) माँ को गर्भधारण के समय से ही संतुलित भोजन दिया जाये ।

(ब) शिशु के जन्म के बाद उसे पौष्टिक आहार अवश्य दिया जाना चाहिए ।

गर्भधारण के समय माँ को निम्नलिखित मात्रा में पौष्टिक आहार दिया जाना चाहिए -

सेरेलस	50 ग्राम	कैल्सियम	1000 मि0ग्रा0
हरी पत्तियों की सब्जी	25 ग्राम	आयरन विटामिन बी 12	40 मि0ग्रा0
			3.00 ग्राम
दूध	125 ग्राम	विटामिन ए	7.50 ग्राम
चीनी	10 ग्राम	विटामिन डी	4.00 ग्राम
प्रोटीन	55 ग्राम	राइवोप्लेविन	0.55 ग्राम
फालिक एसिड	100 ग्राम	थायामाइन	0.5 ग्राम

उपरोक्त तत्वों को प्राप्त करने के लिये निम्नलिखित सावधानियां बरतनी चाहिए -

(1) ताजी सब्जियां आवयकतानुसार खरीदें एवं काटने से पहले धोयें, क्योंकि काटकर धोने से पोषक तत्वों में कमी आ जाती है। इन सब्जियों के छोटे-छोटे टुकड़े नहीं काटने चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो छिलके बहुत ही पतले उतारने चाहिए।

(2) मूली, गाजर और प्याज की हरी पत्तियों बहुत ही पौष्टिक होती है। पत्ता गोभी की पत्तियों में लोहा, कैल्सियम व विटामिन होते हैं अतः उन्हें सलाद के रूप में खायें।

(3) सब्जियों को जरूरत से ज्यादा न पकायें क्योंकि अधिक समय तक पकने से उनके पौष्टियों तत्वों में कमी आ जाती है।

(4) सब्जियों को गलाने के लिये सोडे का प्रयोग नहीं करना चाहिए, सोडे का प्रयोग करने से विटामिन नष्ट हो जाते हैं।

(5) सब्जियों को ढ़क कर पकाना चाहिए, इससे उनके विटामिन कम मात्रा में नष्ट होते हैं

(6) सब्जियों हमेशा चौड़े बर्तन में पकायें, उन्हें पकाते समय बार-बार न हिलायें क्योकि बार-बार हिलाने के लिये ढक्कन खोलना पड़ता है इससे बर्तन में हवा जाती है और इससे "विटामिन सी" नष्ट हो जाता है।

(7) सब्जियां को कम आँच पर पकायें, प्रेशर कुकर से सब्जियों पकाने से पोषक तत्व बहुत कम नष्ट होते हैं जबकि उबालने के दौरान उनके नष्ट होने की सम्भावना अधिक रहती है।

(8) सब्जियों पकाकर रखने तथा उन्हें बार-बार गरम करने से उसके विटामिन नष्ट हो जाते हैं। अतः इन्हें उसी समय तैयार करना चाहिए जब जरूरत हो ।

(9) चावल को साफ कर एक दो बार धोना चाहिए, उबालते समय चावल में इतना ही पानी डालना चाहिए जो चावल को अच्छी तरह पका सके। यदि पानी अधिक हो जाता है तो चावल के माड़ को कभी भी फेकना नहीं चाहिए क्योंकि उसमें थोड़ा किन्तु अच्छी

किस्म का प्रोटीन होता है जो स्वास्थ्य के लिये अति-लाभकारी होता है ।

(10) रोटी बनाते समय आटे का चोकर निकालने से विटामिन 'बी' काफी मात्रा में कम हो जाती है साथ ही, खनिज तथा लवण जैसे-चूने का आधा भाग, पोटेशियम का तीन चौथाई भाग लोहे तथा फास्फोरस का 4/5 भाग नष्ट हो जाता है। अतः अच्छा होगा कि बिना छने आटे का ही प्रयोग किया जाय और पोषक तत्वों का पूरा उपयोग किया जाय।

(11) जिस पानी में दाल भिगोई जाती है उसका प्रयोग ही उसके पकानें में करना चाहिए। इसे फेकना नहीं चाहिए । इससे पानी में घुलनशील पोषक तत्व नष्ट होने से बचेंगे । दाल भी फेंकना नहीं चाहिए । दाल धीमी आंच पर ही पकायें और उफन कर बाहर न गिरने पाये । इस प्रकार पौष्टिक तत्व बचाये जा सकते हैं ।

उपरोक्त-सावधनियां रखने पर गर्भवती महिला को अच्छा स्वास्थ्य एवं आहार दिया जा सकता है ।

उपरोक्त के अतिरिक्त, शिशु के स्वास्थ्य पर भी ध्यान रखना चाहिए । जब बच्चा एक से छः माह के बीच हो तो उसे उसके शारीरिक वजन के आधार पर पौष्टिक आहार देना चाहिए। 120 कैलोरी एक किलो ग्राम के बच्चे को देना चाहिए साथ ही एक किलो ग्राम के बच्चे को 2.3 ग्राम प्रोटीन ।

छः माह के बाद शिशु को फलों का रस देना चाहिए जिसमें मुख्य रूप से केले का रस, लौकी का पानी, दाल का पानी, चावल का पानी, मिश्रित करके देना चाहिए ।

उपरोक्त बातों पर ध्यान देने से शिशु की कुपोषण स्वतः दूर हो सकती है ।

(3) यौन शिक्षा को प्रोत्साहन किया जाय । इसके साथ ही लड़कियों को बाल मनोविज्ञान, दाम्पत्य जीवन और स्वास्थ्य सुरक्षा सम्बन्धी सुविधायें प्रदान की जानी चाहिए । इससे शिशु मृत्यु में कमी आयेगी ।

(4) लड़कियों को मातृत्व सुरक्षा तथा शिशु पालन के नियमों की जानकारी प्रदान की जाय

और इससे सम्बंधित ज्ञान को सर्व-सुलभ बनाया गया । इससे शिशु मृत्यु-दर में कमी लाई जा सकती है ।

(5) परिवार नियोजन को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए । नगर की आवादी भारत की आवादी की तरह लगातार बढ़ रही है, जिससे अनेक समस्याओं का जन्म हो रहा है, इन पर रोक लगाई जानी चाहिए । धर्म की आड़ में इस नगर का एक समुदाय परिवार नियोजन को अपनाना नहीं चाहता है, जिसके कारण उस समुदाय में महिलायें बार-बार गर्भधारण करती है जो स्वयं उनके स्वास्थ्य के लिये साथ ही साथ, शिशु के स्वास्थ्य के लिये भी हानिकारक है, यदि धर्मान्धता को छोड़कर वर्तमान परिस्थितियों से लड़ने का फैसला सभी लोग कर लें तो परिवार नियोजन उन्हें काफी लाभ दे सकता है, इससे शिशु मृत्यु-दर को कम किया जा सकता है ।

(6) बाल विवाह की प्रथा को पूरी तरह समाप्त कर दिया जाय, जिससे छोटी आयु में विवाह नहीं होगें । छोटी आयु में विवाह न होने से स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ेगा, बच्चे स्वस्थ पैदा होंगे और बाहरी वातावरण में फैले संक्रामक रोगों से लड़ने की क्षमता उनके अन्दर होगी इससे शिशु मृत्यु-दर को रोका जा सकता है।

(7) पर्दा प्रथा का उन्मूलन इस क्षेत्र से कर दिया जाना चाहिए । महिलाओं की समय-समय पर स्वास्थ्य केन्द्रों पर ले जाकर स्वास्थ्य परीक्षण कराना चाहिए इससे इनमें पाई जाने वाली बीमारियों का निदान होगा । जिससे शिशु मृत्यु-दर कम हो सकती है ।

(8) इस क्षेत्र से अज्ञानता, निरक्षरता, रूढ़िवादिता को समाप्त कर देना चाहिए क्योंकि ये सभी समस्याओं के जड़ में होती हैं ।

(9) औरतों के प्रति जो उदासीनता और उपेक्षात्मक दृष्टिकोण है उसे समाप्त किया जाना चाहिए । इससे भी शिशुओं की मृत्यु-दर में कमी आयेगी ।

(10) शिशुओं के कल्याण से सम्बंधित योजनाओं और संस्थाओं का विकसित करना चाहिए। क्योंकि यहाँ मातृ शिशु कल्याण संस्थाओं की कभी है जिसके कारण यहाँ शिशु मृत्यु का दबाव ज्यादा है । इन संस्थाओं का विकास करके शिशु मृत्यु-दर को कम किया जा सकता है ।

(11) उक्त के अतिरिक्त स्वास्थ्य सुविधाओं की व्यवस्था तथा उनका उचित प्रयोग करने के लियें में जागरूकता पैदा की जानी चाहिए जिसके प्रभाव से शिशु मृत्यु को कम किया जा सकेगा।

बच्चे को जन्म देने की प्रक्रिया चाहे जितनी कष्टदायी क्यों न हो, शिशु का जन्म माँ के लिये असीम आनन्द का अवसर होता है लेकिन माँ-बाप यह कल्पना भी नहीं कर सकते कि नवजात शिशु जो कि बिल्कुल स्वस्थ पैदा हुआ है, आने वाले कुछ दिनों में ही किसी घातक रोग से ग्रस्त हो जायेगा और उसकी मृत्यु हो जायेगी, कौन माँ-बाप यह चाहेगें कि उनके शिशु का जीवन अधिक से अधिक 4 हफ्तो तक सीमित हो या किसी तरह से 28 दिन तक अपना जीवन पूरा कर सके ।

शिशु परिवार में पैदा होते हैं, अभिभावकों और सम्बंधियों का भावनात्मक और सुरक्षात्मक स्नेह ही उन्हें पहली बार यह एहसास दिलाता है कि वे किसी के हैं और कोई उनका है यदि बच्चे का जन्म उसका प्राकृतिक अधिकार है तो जन्म पर किये जाने वाले लिंग भेद को अमानवीय सामाजिक व्यवहार समझना चाहिए ।

प्रस्तुत अध्ययन में शिशु मृत्यु के कारणों की सूक्ष्म रूप से विवेचना की गई जिससे यह ज्ञात हो सका कि वे कारण जो शिशु मृत्यु को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं वे बीमारी/प्रसव सम्बन्धी असावधानी, कुपोषण, पर्यावरणीय परिस्थितियां, उच्च्व स्तरीय स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव, के साथ ही सामाजिक-आर्थिक कारक एवं दुर्घटनायें आदि । उक्त के अतिरिक्त कुछ और भी सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियां हैं जो शिशु मृत्यु को प्रभावित करती हैं जैसे - बाल विवाह पर्दा प्रथा, अशिक्षा, रूढ़िवादिता, अधिक संतान, अपौष्टिक भोजन, निर्धनता, माता-पिता की रुग्णता एवं कल्याणकारी संस्थाओं की कमी आदि । साथ ही, उक्त कारणों से होने वाली शिशु मृत्यु, एवं विभिन्न जातियों में शिशु मृत्यु के कारणों का विवरण प्रस्तुत किया गया है । इसी प्रकार, शिशु मृत्यु के कारणों के अनुसार नवजात एवं पश्च-नवजात व विभिन्न जातियों में नवजात एवं पश्च-नवजात शिशु मृत्यु को ज्ञात किया गया है तथा विभिन्न बीमारियों से मरने वाले नवजात एवं पश्च-नवजात शिशु मृत्यु के विवरण के साथ ही विभिन्न जातियों में बीमारियों से होने वाली नवजात एवं पश्च-नवजात शिशु मृत्यु को भी स्पष्ट किया गया है। इसके अतिरिक्त उक्त कारणों से होने वाली शिशु मृत्यु की समस्या के निवारण

अध्याय-सप्तम

निष्कर्ष

पूर्ववर्ती अध्यायों में शिशु मृत्यु की दर, उसकी विभिन्नताओं, उसके कारण तथा निवारण के उपायों का विश्लेषण किया गया है। अब तक का विश्लेषण शिशु मृत्यु के विविध पक्षों में अलग-अलग किया गया है जबकि वास्तविकता यह है कि इन सभी में घनिष्ट सम्बन्ध है । इस अध्याय में अध्ययन के सारांश तथा निष्कर्षो को प्रस्तुत किया जायेगा साथ ही प्राप्त उपलब्धियों को इस प्रकार व्यवस्थित किया जायेगा कि विविध अध्यायों में प्रस्तुत तथ्य एक श्रृंखला में आबद्ध हो सके ।

प्रस्तुत अध्ययन का अभिप्राय सूक्ष्म स्तर पर उच्च शिशु मृत्यु के लिये उत्तरदायी कारकों की खोज करना है । इस अध्ययन को भारतीय समाज के ग्रामीण परिवेश में कुछ विशिष्ट समूहों उच्च, मध्यम एवं निम्न तक सीमित किया गया है । उक्त प्रक्रिया में अध्ययन का उद्‌देश्य है शिशु मृत्यु-दर तथा विभिन्न समूहों में उसकी विभिन्नताओं पर प्रकाश डालना । साथ ही, विभिन्न परिस्थितियों में शिशु मृत्यु-दर पर नियन्त्रण हेतु सुझाव प्रस्तुत करना भी उक्त अध्ययन का उद्‌देश्य है ।

मृत्यु-दर किसी भी राष्ट्र की समृध्दि का सूचक है। उन देशों में जहॉ जनसंख्या का अधिकांश प्रतिशत निर्धनता रेखा के नीचे जीवन यापन करता है, की तुलना में उच्च रहन-सहन के स्तर वाले देशों में मृत्यु-दर कम पायी जाती है । विश्व के अन्य विकास शील देशों की तुलना में भारत में स्वास्थ्य का निम्न स्तर पाया जाता है जो यहॉ के निवासियों की अल्पजीवन अवधि के रूप में परिलक्षित होता है । भारत उन देशों में से एक है । जहॉ शिशु मृत्यु की उच्च दर पायी जाती है । जब सम्पूर्ण विश्व में शिशु मृत्यु-दर प्रति एक हजार जीवित जन्मों पर 75 तथा विकसित देशों में यह (लगभग) 10 है, भारत में यह दर 69 है । पूर्व वर्षो में 1951-61 के दशक में शिशु मृत्यु-दर प्रति एक हजार जीवित जन्मों पर 146 थी तथा 1961-71 में यह लगभग 129 थी। यद्यपि इससे स्पष्ट है कि शिशु मृत्यु-दर में कमी आयी है

तथापि भारत में शिशु मृत्यु वर्तमान दर अन्य विकसित देशों तुलना में बहुत अधिक है । भारत में लगभग 50 प्रतिशत शिशु पोस्ट नियोनेटल अवस्था में ही मर जाते है ।

सम्पूर्ण देश में, ग्रामीण तथा नगरीय क्षेत्रों में शिशु मृत्यु-दर में पर्याप्त भिन्नतायें हैं । इसके अतिरिक्त यह भिन्नतायें विभिन्न प्रान्तों में दृष्टिगोचर होती हैं । भारत में नगरीय क्षेत्रों में शिशु मृत्यु-दर 65 है जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में यह 114 है । जहॉ तक प्रान्तों का प्रश्न है, केरल में यह सबसे कम है (प्रति हजार जीवित जन्मों पर 30) जो कि उस लक्ष्य की भी आधी है जिसे कि भारत इस शताब्दी के अन्त तक प्राप्त करना चाहता है । दूसरी तरफ, उत्तर प्रदेश में यह सबसे अधिक 147 है । इसके पीछे मध्य प्रदेश तथा उड़ीसा है जहॉ पर कि यह क्रमशः 134 तथा 132 है ।

स्वतन्त्र भारत में शिशु मृत्यु की दर को कम करने के लिये बहुत सी नीतियों का प्रतिपादन तथा क्रियान्वयन किया गया है फिर भी उच्च्य शिशु मृत्यु-दर अब भी विद्यमान है । स्वाभाविक रूप से यह सामान्य चिंता का विषय है । यह समस्या इस परिप्रेक्ष्य में और भी महत्वपूर्ण हो जाती है कि जब तक शिशु मृत्यु-दर को व्यापक स्तर पर कम नहीं जाता, प्रजनन दर तथा जनसंख्या वृद्धि में आशानुरूप ह्रास करना सम्भव नहीं है । इससे भी अधिक यह समस्या परिवार नियोजन को स्वीकार करने वाले दम्पत्तियों के दृष्टिकोण के कारण और भी जटिल हो पाती है । सामान्य तौर पर वे अपने परिवार को सीमित करने की तभी सोंचते हैं जब उनके अधिक बच्चे हो जाते हैं । इस दृष्टिकोण के पीछे कौन से कारण है, इस पर वैज्ञानिक अनुसंधान की आवश्यकता है ।

मृत्यु-दर के अन्वेषण में साख्यकीय कारक़ों की भी महत्वपूर्ण भूमिका है । जिन देशों में जन्म एवं मृत्यु के पंजीकरण की विकसित व्यवस्था है वहॉ पर शिशु मृत्यु का प्रत्यक्ष मापन करना अत्यधिक सरल है परन्तु भारत सहित विश्व के अधिकांश विकासशील देशों में जहॉ पर पंजीकरण की विकसित व्यवस्था नहीं है, पर्याप्त तथा सही आँकड़ों का अभाव है । इस परिप्रेक्ष्य में सूक्ष्म स्तरीय अध्ययनों के अधिक सही तथा उपयोगी होने की सम्भावना है ।

उपर्युक्त तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में तथा योजनाओं की सफलता के दृष्टिकोण से शिशु मृत्यु-दर तथा सूक्ष्म स्तर पर उसके कारणों की सही जानकारी प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है । भारत एक विशाल देश है जहॉ पर कि सामाजिक-सॉंस्कृतिक तथा आर्थिक विभिन्नतायें अधिक हैं । इस दृष्टि से भी सूक्ष्म स्तरीय अध्ययन अत्यधिक महत्वपूर्ण है । साथ ही, जनसंख्या से सम्बंधित विभिन्न तथ्यों के बीच अन्तर्क्रिया की प्रकृति को समझने के लिये यह आवश्यक है कि विभिन्न तथ्यों का सूक्ष्म स्तर पर अध्ययन किया जाये। वर्तमान अध्ययन उक्त संदर्भ में किया गया एक प्रयास है।

वर्तमान अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य हैं -

(1) शिशु मृत्यु-दर का ऑकलन ।

(2) शिशु मृत्यु की विभिन्नताओं का ज्ञात करना ।

(3) शिशु मृत्यु के स्तर को प्रभावित तथा निर्धारित करने वाले सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक कारकों का पता लगाना तथा ।

(4) शिशु मृत्यु पर नियन्त्रण पाने के लिये सुझाव प्रस्तुत करना ।

उपर्युक्त विवरण के संदर्भ में, प्रस्तुत शोध का अभिकल्प अन्वेपणात्मक, वर्णनात्मक तथा निदानान्त्मक है। इसका मुख्य उद्देश्य ग्रामीण परिवेश में शिशु मृत्यु के स्तर तथा विभिन्नताओं का अन्वेषणात्मक अध्ययन करना है । साथ ही, कुछ परिकल्पनाओं, जिनका निर्माण भारतीय समाज में प्रचलित दशाओं तथा उपलब्ध अनुसंधान सामग्री पर आधारित है, का परीक्षण भी करना है। इसके अतिरिक्त, अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षो के आधार पर समस्या के समाधान के लिये सुझाव प्रस्तुत करना भी वर्तमान अध्ययन का उद्देश्य है ।

पूर्व अध्ययनों के निष्कर्षो तथा शिशु मृत्यु की प्रचलित दर के आधार पर हमारी विशिष्ट परिकल्पनाएं निम्नलिखित हैं :-

1. शिशु मृत्यु-दर ह्रास की ओर उन्मुख है परन्तु फिर भी यह अधिक है ।

2. नवजात शिशुओं की मृत्यु-दर की तुलना में पश्च-नवजात शिशुओं की मृत्यु-दर अधिक है।

3. जनांकिकीय कारकों, जैसे प्रसव के समय माँ की आयु आदि का शिशु मृत्यु से सकारात्मक सह-सम्बन्ध है।

4. सामाजिक-सांस्कृतिक कारक, जैसे कि माता-पिता का साक्षरता स्तर, उनकी जाति, धर्म, परिवार का स्वरूप, तथा सामाजिक-आर्थिक स्तर शिशु मृत्यु के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं ।

5. प्रसव तथा शिशुओं के देख-रेख सम्बन्धी कारक, जैसे-प्रशिक्षित अथवा अप्रशिक्षित प्रसव सहायक, नाल काटने के लिये प्रयुक्त किये गये यंत्र का प्रकार तथा लड़कियों की तुलना में लड़कों को अधिक तथा शीघ्र औषधीय सुविधा प्रदान करना आदि शिशु मृत्यु से घनिष्ठ रूप में सम्बंधित है ।

द्वितीय अध्याय में अध्ययन अभिकल्प, अध्ययन क्षेत्र एवं प्रतिचयन को स्पष्ट किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन का अभिकल्प अन्वेषणात्मक तथा वर्णनात्मक है। इसका मुख्य उद्देश्य ग्रामीण परिवेश में शिशु मृत्यु के स्तर तथा विभिन्नताओं का अन्वेषणात्मक अध्ययन करना है साथ ही कुछ परिकल्पनाओं, जिनका कि निर्माण भारतीय ग्रामीण समाज में प्रचलित दशाओं तथा उपलब्ध अनुसंधान सामग्री पर आधारित है का परीक्षण करना भी है।

प्रस्तुत अध्ययन उत्तर प्रदेश के सर्वाधिक पिछड़े क्षेत्र चित्रकूट धाम मंडल के सर्वाधिक पिछड़े जनपद बांदा में स्थित बडोखर विकास खण्ड के अन्तर्गत आने वाले ग्रामीण परिवेश में आयोजित किया गया है। अध्ययन में हिन्दू जातियों (उच्च, मध्यम एवं निम्न) में शिशु मृत्यु का तुलनात्मक स्वरूप प्रस्तुत कियां गया है। उक्त सन्दर्भ में बडोखर विकास खण्ड ऐसा क्षेत्र है, जहाँ

सभी जातियों का एक ही परिवेश में पाया जाना अध्ययन के उद्देश्यों को प्राप्त करने में अत्यधिक सहयोगी है।

बडोखर विकास खण्ड बांदा से 5 किमी. की दूरी पर बॉदा-इलाहाबाद मार्ग पर स्थित है। साथ ही शहर से निकट होने के कारण आवागमन की अच्छी सुविधा है। 1991 की जनगणना के अनुसार बडोखर विकास खण्ड का कुल क्षेत्रफल 6.7 वर्ग किमी० तथा जनसंख्या 132949 है। जिसमें से 74117 पुरुष एवं 58832 स्त्रियां है। यहॉ अनुसूचित जातियों की कुल जनसंख्या 30047 है जिसमें 16439 पुरुष एवं 13608 महिलाएं। यहॉ का कुल साक्षरता प्रतिशत 37.3 है।

यहां लगभग सभी जातियों के लोग निवास करते है। यहॉ वर्ष 1996-97 के अनुसार प्राथमिक विद्यालयों की संख्या 93 तथा सीनियर प्राथमिक विद्यालयों की संख्या 22 है जिनमें 5 बालिका विद्यालय है। इसके अतिरिक्त 2 हायर सेकेण्डरी स्कूल हैं। ब्लाक मुख्यालय से 5 किमी० दूरी पर बांदा शहर में दो महाविद्यालय है जिनमें एक महिला महा विद्यालय है।

विकास खंड क्षेत्र में सस्ते गल्ले की 73 दुकाने है । विकास खण्ड के अन्तर्गत 6 एलोपैथिक चिकित्सालय, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र 2 परिवार एवं मात्र शिशु कल्याण केन्द्र व 22 परिवार एवं मात्र शिशु कल्याण उपकेन्द्र है । इनके अतिरिक्त बैक, डाकखाना एवं पुलिस स्टेशन भी है ।

प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र में 73 ग्राम सभाओं में कुल 21789 परिवार निवास करते है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टिकोण से अध्ययन क्षेत्र के 10% गॉवो का दैव निदर्शन विधि से चयन किया गया । इस प्रकार बड़ोखर विकास खंड के 7 गॉव क्रमशः बड़ोखर, गुरेह, चहितारा, पल्हरी, अरबई, पिपरी, भवानीपुरवा अध्ययन के केन्द्र बिन्दु है । चयनित गॉवो के कुल परिवारों की संख्या में से उच्च, मध्यम एवं निम्न जाति के 10 प्रतिशत परिवारों का चयन करके उनमें से प्रत्येक परिवार में पायी जाने वाली 15-45 आयु वर्ग की वे महिलाएं जो विवाहित है और जिनके बच्चे पैदा हो रहे है का अध्ययन उनके 1997,1998, व 1999 में होने वाले जीवित जन्मो

के आधार पर शिशु मृत्यु का आंकलन किया गया व समग्र में विभिन्न आधारों पर पायी जाने वाली विभिन्नताओं के स्वरूप के आधार पर शिशु मृत्यु को प्रस्तुत किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र से संबंधित अधिकांश स्त्रियां या तो अनपढ़ अथवा बहुत कम पढ़ी लिखी है अतः वांछित सूचना का संग्रह साक्षात्कार, अनुसूची प्रविधि का उपयोग कर किया गया है। तथ्यों के संग्रह के पश्चात आंकड़ों का वर्गीकरण, तथा सारणीय किया गया तत्पश्चात श्रेणीबद्ध आंकड़ों का विश्लेषण कर निष्कर्ष तक पहुँचने का प्रयास किया गया है।

अध्याय तीन में शिशु मृत्यु का विवरण प्रस्तुत किया गया है । शिशु मृत्यु से आशय उन बच्चो की मृत्यु से है जिनकी मृत्यु प्रथम जन्म दिवस से पूर्व हो जाती है । शिशु मृत्यु दर को प्रथम वर्षगांठ से पूर्व कुल मृत शिशुओं की संख्या को उसी वर्ष में कुल जीवित प्रसवो की संख्या से भाग देने पर प्राप्त अंक कर 1000 से गुणा कर प्राप्त करते है । चूंकि जनसंख्या के आंकड़ों से स्पष्ट है कि मृत्यु का दबाव प्रारम्भिक वर्षो में अत्यधिक होता है अतः बच्चों की मृत्यु-दर बहुत अधिक होती है । यद्यपि विश्व ने मृत्यु दर को पर्याप्त स्तर तक नीचे ला दिया है किन्तु आज तक भी शिशु मृत्यु दर बहुत अधिक बनी हुई है । विकसित और विकासशील देशों के मध्य शिशु मृत्यु दर में बहुत अधिक अन्तर है । विकसित देशों में यह औसतन 10-33 प्रति हजार जबकि विकासशील देशों में 45-135 प्रति हजार के बीच है। यह अन्तर विकासशील या अविकसित देशों में पर्याप्त स्वास्थ्य एवं जन सुविधाओं के अभाव के साथ-साथ शिक्षा एवं जागरूकता की कमी को भी प्रदर्शित करता है।

भारत में शिशु मृत्यु के आंकड़ों से स्पष्ट है कि भारत में भी शिशु मृत्यु दर में कमी आयी है परन्तु तुलनात्मक रूप से यह अभी भी विकसित देशों से बहुत पीछे है। भारत में जहां 1901-1911 के दशक में शिशु मृत्यु दर 287 थी वही आज 2001-02 में यह 69 है। भारत में ग्रामीण एवं नगरीय परिवेश के क्रम में भी शिशु मृत्यु में बहुत अधिक अन्तर देखने को मिलता है 2001-02 में गॉवों में शिशु मृत्यु दर औसतन 126 है जबकि शहरों में 60 है।

विद्धानों के मतानुसार एवं अध्ययनों के निष्कर्ष स्वरूप भारत में ऊँची शिशु मृत्यु दर के प्रमुख कारणों में प्रसव से संबंधित कारण दरिद्रता, माता-पिता की अज्ञानता, स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव आदि प्रमुख्स कारण है। अध्ययन क्षेत्र में अध्ययन के दौरान शिशु मृत्यु दर देश के अन्य भागो की अपेक्षा काफी अधिक पाई गई जो 130-180 तक है। अध्ययन क्षेत्र में तीन क्रमिक वर्षो 1997,1998 एवं 1999 के आंकड़ों के आधार पर निम्न तथ्य प्राप्त हुए -

* वर्ष 1997 में कुल जीवित जन्मो की संख्या 211, कुल मृत शिशुओं की संख्या 37 और इस प्रकार शिशु मृत्यु दर 175.3 रही इसी प्रकार वर्ष 1998 में शिशु मृत्यु दर 162.5 जबकि 1999 में गिरकर 137.7 हो गई । इस प्रकार तीनो वर्षो में कुल जीवित जन्मों की संख्या 610 तथा कुल मृत शिशुओं की संख्या 97 तथा शिशु मृत्यु दर 159.01 रही ।

● तीनो क्रमागत वर्षो में उच्च जातियों में जीवित जन्मों की संख्या 185 तथा मृत शिशुओ की संख्या 24 और शिशु मृत्यु दर 129.72 रही मध्यम जाति में दर 167.53 तथा निम्न जाति में तीनो क्रमागत वर्षो में शिशु मृत्यु दर 175.21 रही।

● शिशु मृत्यु को विद्धानो ने दो भागों में बांटा है। नवजात एवं पश्च नवजात शिशु मृत्यु नवजात के अन्तर्गत जन्म से चार सप्ताह के भीतर मृत शिशुओं को तथा पश्च नवजात में शेष शिशु मृत्युए आती है। इस प्रकार अध्ययन क्षेत्र में नवजात शिशु मृत्यु दर 65.91 तथा पश्च नवजात शिशु मृत्यु दर 93.44 रही। और इस प्रकार नवजात एवं पश्च नवजात शिशु मृत्यु अनुपात 1:42 रहा।

● अध्ययन से प्राप्त शिशु मृत्यु दर की उत्तर प्रदेश एवं भारत की शिशु मृत्यु दर से तुलना करने पर हम पाते है कि 1997 में अध्ययन क्षेत्र में शिशु मृत्यु दर 175.3 थी जबकि उसी वर्ष उत्तर प्रदेश में 111 तथा भारत में 77 थी। वर्ष 1998 में 100 तथा भारत में 74 थी। इसी प्रकार 1999 में अध्ययन क्षेत्र में यह दर 137.7 थी जबकि उत्तर प्रदेश में 88 तथा भारत में 70 रही। इस प्रकार औसतन अध्ययन क्षेत्र में शिशु मृत्यु दर 159.01 है जबकि उत्तर प्रदेश में 99.66 एवं भारत में यह दर 73.66 है।

अध्याय चार में शिशु मृत्यु से संबंधित कुछ ऐसे सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों का सूक्ष्म रूप से विश्लेषण किया गया है जिसके कारण शिशु मृत्यु में विभिन्नताएं उत्पन्न हो जाती है। ऐसे विभिन्न सामाजिक कारक जो शिशु मृत्यु को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते है उनका विवरण निम्न है -

- धर्म के आधार पर शिशु मृत्यु की विभिन्नताएं देखने पर स्पष्ट होता है कि हिन्दू धर्म के शिशु मृत्यु पर 146.34 है तो इस्लाम धर्म में शिशु मृत्यु दर 185.00 है।
- परिवार के स्वरूप का शिशु मृत्यु पर प्रभाव पड़ता है। अध्ययन क्षेत्र में संयुक्त परिवार को शिशु मृत्यु दर-168.70 है जबकि एकांकी परिवार की 139.30 है।
- जाति के क्रम पर देखने से हम पाते हैं कि उच्च जातियों में शिशु मृत्यु दर 129.72 है, मध्यम जातियों में 167.53 और निम्न जातियों में सर्वाधिक 175.21 है।
- मॉ के शैक्षिक स्तर का भी शिशु मृत्यु से सकारात्मक संबंध हैं अध्ययन के दौरान निरक्षर महिलाओं में शिशु मृत्यु दर 177.63, हाईस्कूल से कम शिक्षित महिलाओं में शिशु मृत्यु दर 165.80 जबकि हाईस्कूल या उससे अधिक शिक्षित महिलाओं में शिशु मृत्यु दर काफी कम 97.34 है।
- माँ की शिक्षा के साथ-साथ पिता की शिक्षा का भी शिशु मृत्यु से घनिष्ठ संबंध है। निरक्षर पिताओं की शिशु मृत्यु दर 191.63, हाईस्कूल से कम पढ़े पिताओं की शिशु मृत्यु 159.51 जबकि हाईस्कूल या उससे अधिक पढ़े पिताओं की शिशु मृत्यु दर 100.00 पाई गयी।
- पिता के व्यवसाय के आधार पर शिशु मृत्यु का आंकलन करने पर पाया गया कि कृषि करने वाले पिताओं में शिशु मृत्यु दर 173.51 तथा कृषि के अतिरिक्त कार्यो में संलग्न पिताओं की शिशु मृत्यु दर 122.09 है।
- भू-स्वामियों के आधार पर विभिन्नताओं का विश्लेषण करने पर पाया गया कि

भूमिहीन परिवारों की शिशु मृत्यु दर 175.32 है, 0-10 एकड भूमि स्वामित्व रखने वाले परिवारों की शिशु मृत्यु दर 160.88 तथा 10-20 एकड़ वाले परिवारों की शिशु मृत्यु दर 139.69 है।

- विवाह के समय मां की आयु का सर्वाधिक प्रभाव शिशु मृत्यु पर देखने को आया है। 10-15 वर्ष की आयु में विवाह करने वाली मांओं की शिशु मृत्यु दर 224.48 पाई गई। 16-21 वर्ष की उम्र में विवाह बंधन में बधने वाली महिलाओं की शिशु मृत्यु दर 169.81 पाई गई। जबकि 21 वर्ष से ऊपर की आयु में विवाहित महिलाओं मे शिशु मृत्यु दर 131.68 पाई गई।

- प्रसव सहायकों का भी शिशु मृत्यु से घनिष्ठ संबंध है। प्रशिक्षित प्रसव सहायकों का प्रयोग करने वाली उत्तरदात्रियों में शिशु मृत्यु दर 117.26 पाई गई। जबकि अप्रशिक्षित सहायकों का प्रयोग करने वाली उत्तरदात्रियों के शिशु मृत्यु दर 201.32 रही।

- नाल काटने का यंत्र भी शिशु मृतयु का कारण पूर्ण कारक है। परम्परागत यंत्रों से नाल काटने वाली जन्मों में शिशु मृत्यु का 184.90 रही। जबकि आधुनिक यंत्रों के प्रयोग से जन्मों मे शिशु मृत्यु दर 139.13 पाई गई।

- घर पर जन्म लेने वाले शिशुओं मे शिशु मृत्यु दर 164.28 रही जबकि अस्पताल में जन्म लेने वाले शिशुओं मे शिशु मृत्यु दर 147.36 पाई गई।

- प्रसव के समय मॉ की मृत्यु के आधार पर देखा गया कि 15-24 वर्ष की आयु में प्रसव करने वाली मांओं में शिशु मृत्यु दर 197.08 पाई गई। 25-34 वर्ष आयु वाली मांओं में 145-34 जबकि 35-44 आयु वर्ग वाली मांओं मे शिशु मृत्यु दर 155.03 पाई गई।

- लड़का और लड़की के शिशु मृत्यु का ऑकलन करने पर पाया गया कि लड़कों के जन्मों में शिशु मृत्यु दर 141.97 जबकि लड़की के जन्मों में शिशु मृतयु दर 178.32 पाई गई।

- सामाजिक-आर्थिक स्थिति के आधार पर विभिन्नताएं देखने पर पाया गया कि उच्च सामाजिक आर्थिक स्थिति वाले परिवारों मे शिशु मृत्यु दर 113.04 रही, मध्य सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले परिवारो में 140.49 जबकि निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले परिवारों मे शिशु मृत्यु दर 197.62 पाई गई।

अध्याय पॉच में शिशु मृत्यु के उन कारणों की सूक्ष्म रूप से विवेचना की गई है कि जिनके कारण यह होती है। वे कारण जो शिशु-मृत्यु को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं वे है- बीमारी/प्रसव सम्बन्धी असावधानी, कुपोषण, पर्यावरणीय परिस्थितियां, उच्च स्तरीय स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव, सामाजिक-आर्थिक कारक एवं दुर्घटनाएं आदि। शिशु मृत्यु के कारणों या कारकों के अध्ययन के परिणामस्वरूप निम्न तथ्य प्राप्त हुए -

- शिशु मृत्यु के विविध कारणों में वर्ष 1997, 1998 एवं 1999 तीनों वर्षो में बीमारी/प्रसव सम्बन्धी असावधानी के कारण सर्वाधिक 38% शिशु मृत्यु हुई। जबकि कुपोषण के कारण 22%, पर्यावरणीय परिस्थितियों के कारण 09%, उच्च स्तरीय स्वास्थ्य सुविधाओं के अभाव के कारण 14% सामाजिक-आर्थिक कारकों के कारण 10% जबकि 07% शिशु मृत्यु दुर्घटनाओं के कारण होती है।
- उच्च, मध्यम एवं निम्न जातियों में शिशु मृत्यु के कारणों विवेचना करने पर पाया गया कि मध्य एवं निम्न जातियों में बीमारी/प्रसव संवंधी असावधानी तथा सामाजिक-आर्थिक कारकों के कारण शिशु मृत्यु अधिक होती है।
- नवजात एवं पश्च नवजात अवस्था में शिशु मृत्यु के कारणों का विवेचन करने पर पाया गया कि नवजात अवस्था में बीमारी/प्रसव संबंधी असावधानी के कारण जबकि पश्च नवजात अवस्था में सामाजिक-आर्थिक कारण एवं कुपोषण के कारण शिशु मृत्यु अधिक पाई गई।

- बीमारियों से होने वाली शिशु मृत्यु के विवेचन से स्पष्ट हुआ कि अध्ययन क्षेत्र मे डायरिया से सर्वाधिक 30% शिशु मौते होती है जबकि टिटनेस के कारण 24%, डिफ्थीरिया के कारण 07%, काली खांसी के कारण 12% शिशु मौते होती है।

- उपरोक्त बीमारियों का उच्च, मध्यम और निम्न जातियों के क्रम में विश्लेषण करने पर ज्ञात हुआ कि उच्च, मध्यम एवं निम्न तीनों जातियों में अध्ययन क्षेत्र में डायरिया एवं टिटनेस से सर्वाधिक शिशु मौते हुई।

- बीमारियों से होने वाली शिशु मृत्यु और पश्च नवजात तथा नवजात अवस्था में होने वाली शिशु मृत्यु का विश्लेषण करने पर पाया गया कि नवजात अवस्था में सर्वाधिक टिटनेस डायरिया के कारण जबकि पश्च नवजात अवस्था में डायरिया एवं अन्य कारणों से सर्वाधिक शिशु मौते होती है।

<u>शिशु मृत्यु की समस्या के निवारण हेतु सुझाव</u> -

(1) सर्व प्रथम शिशुओं जन्म होने के बाद समय-समय पर टिटनेस, डिफ्थीरिया, कालीखॉसी, डायरिया, खसरा आदि के टीके लगवाने चाहिए ।

(2) प्रसव प्रशिक्षित कार्यकर्ता से कराया जाना चाहिए व अप्रशिक्षित कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।

(3) कुपोषण के कारण होने वाली शिशु मृत्यु से बचने के लिये मॉ के भोजन एवं स्वास्थ्य पर ध्यान रखने के साथ ही साथ, शिशुओं को 6 माह के बाद फलों का रस देना चाहिए जिसमें मुख्य रूप से केले का रस, लौकी का पानी, दाल का पानी, चावल का पानी मिश्रित करके देना चाहिए।

(4) यौन शिक्षा को प्रोत्साहित किया जाये ।

(5) लड़कियों को मातृत्व सुरक्षा तथा शिशु पालन की जानकारी प्रदान की जाये ।

(6) परिवार नियोजन को अपनाने के लिये लोगों को प्रोत्साहित किया जाय।

(7) बाल विवाह प्रथा को बिल्कुल समाप्त किया जाये।

(8) पर्दा-प्रथा का उन्मूलन कर दिया जाना चाहिए ।

(9) अज्ञानता, निरक्षरता, रूढ़िवादिता को समाप्त कर साक्षरता का स्तर उच्च्व किया जाये।

(10) औरतों के प्रति उदासीनता और उपेक्षात्मक दृष्टिकोण समाप्त किया जाना चाहिए।

(11) शिशु कल्याण से सम्बंधित योजनाओं और संस्थाओं को विकसित किया जाना चाहिए।

उक्त के अतिरिक्त स्वास्थ्य सुविधाओं की व्यवस्था तथा उनका उचित प्रयोग करने के लिये लोगों में जागरूकता पैदा की जानी चाहिए जिसके प्रभाव से शिशु मृत्यु को रोका जा सकेगा।

इस प्रकार के अध्ययन यदि व्यापक स्तर पर किये जायें तो और अधिक रोचक परिणाम उपलब्ध होंगे। विभिन्न समुदायों तथा सम्प्रदायों में शिशु मृत्यु का तुलनात्मक अध्ययन करने पर स्थितियां और भी अधिक स्पष्ट होंगी तथा राष्ट्रीय स्तर पर शिशु मृत्यु तथा उससे घनिष्ठ रूप में सम्बंधित जन्म-दर एवं जनसंख्या वृद्धि की समस्या को भी समझनें में सहायता मिलेगी जो कि आधुनिक समय में कही अधिक महत्वपूर्ण है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

अग्रवाल, एस०एन० 1981, इण्डियाज पापुलेशन प्राब्लम्स, नई दिल्ली टाटा मैक ग्रा-हिल पब्लिसिंग कम्पनी लि० ।

अग्रवाल, आर०डी० " इन्फ्ल्यूयेन्स आफ इन्फेन्ट एण्ड चाइल्ड मारटेलिटी इन इण्डिया" इन कमेटी फार इण्टरनेशनल कोआर्डिनेशन आफ रिसर्च इन डेमोग्राफी, सेमिनार आन इन्फेन्ट मारटेलिटी इन रिलेशन टू दि लेविल आफ फर्टीलिटी, बैंकाक, मई 6-12, 1975 पेरिस, सी०आई० सी०आर०ई०ड़ी० 1975 ।

अरोरा, वाई०एल०, 1979, "इन्फेन्ट मारटेलिटी एण्ड कोरिलेट्स इन ग्रेटर बाम्बे," हेल्थ एण्ड पापुलेशन, प्रासपेक्टिव एण्ड इसूज, 12 (4) अक्टूबर ।

अमीन, आर० मरियम, ए०जी० एण्ड फारूकी, आर० 1986, इन्फेन्ट एण्ड चाइल्ड मारटेलिटी इन बांगलादेश 1959-1976, डेमोग्राफी इण्डिया वाल्यूम 15 नं० 1, पेज 35 ।

अशरफ, के०एम० 1932, लाइफ एण्ड कण्डीशन आफ दि पीपुल्स आफ हिन्दुस्तान लन्दन, पेज 107। अहमद, इम्तियाज, 1966 दि इण्डियन इकोनोमिक्स एण्ड सोशल हिस्ट्री रिब्यू, सितम्बर, वाल्यूम नं० 3, पेज 268 ।

अनुराधा, के० जैन, एण्ड विसारिया, प्रवीन इन्फेन्ट मारटेलिटी इन इण्डिया, लन्दन, पेज 229-30।

अदलाख, ए०एल०, 1970, ए स्टडी आफ इन्फेन्ट मारटेलिटी इन तुर्की, पी-एच०डी० थीसिस, यूनीवर्सिटी आफ मिचिधा, पेज 318 ।

अनुराधा, के० जैन, 1984 "इन्फेन्ट मारटेलिटी आफ रीजनल वैरियेशन" इन इन्फेन्ट मारटेलिटी इन रूरल इण्डियाः इन्फेन्ट मारटेलिटी इन इण्डिया डिफरेन्सेस एण्ड डिटरमिनेन्ट्स 1988, लन्दन।

एण्टोनोव, ए० 1947, चिल्ड्रेन बार्न ड्यूरिंग दि सीज इन लेनिनगार्ड इन 1942, जनरल आफ पौडियाट्रिक, 30 ।

भाटिया, पी०एस० एण्ड राय, एस०, 1983, प्रासपेविटव फार मारटेलिटी डिक्लाइन इन इण्डिया, इन दि नेक्स्ट टू डिकेड्स, इन पापुलेशन पालिसी प्रास्पेक्टिव इन डेवलपिंग कन्ट्री, एडीटेड वाई नारायन, बी० एण्ड प्रकाशन सी०पी० बाम्बे, दि हिमालयन, पब्लिसिंग हाउस ।

बर्कले, जी० डब्लू 1958, टेविनक्स आफ पापुलेशन इनलिसिस, न्ययार्क, जानवैली एण्ड सन्स।

ब्रोकिंगटन, सी०एफ०, 1967, वर्ड हेल्थ चर्चिल, लन्दन ।

(2) ब्लण्ट, ई०ए०आर० 1931, दि कास्ट सिस्टम आफ नार्दन इण्डिया, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस ।

(1) बेबन, जोन्स, बी०आर० इत्यादि, 1914, वीमेन इन इस्लाम, लखनऊ पब्लिसिंग हाउस।

बेनेडिक्ट, स्थ, 1938, कान्टीन्यूटीज एण्ड डिसकान्टीन्यूटीज इन कल्चरल कण्डीसनिंग, साइकिट्री वाल्यूम ।

भाटिया, जे०सी०, 1983 एज ऐट मैरिज एण्ड फर्टीलिटी इन घाना, वेस्ट अफ्रीका, डेमोग्रफी इण्डिया, वाल्यूम 12, नं 1।

भट्टाचार्य जी, जी०जे० "एन इनालिसिस ऑफ नियो-नेटल मारटेलिटी" डी०सी०ए०आर०सी० इन्स्टीट्यूट आफ सोशल एण्ड इकोनोमिक चेन्ज, बंगलौर, एन०डी० ।

बोगी, डोनाल्ड, 1961, प्रिंसिपल आफ डेमोग्राफी, जान वैली एण्ड सन्स न्ययार्क ।

भट्टचार्य जी, पी०जे० 1979, फैवट्रस इन्फल्यूवेशिंग इन्फेन्ट मारटेलिटी के० श्रीनिवासन, पी०सी० सक्सेनाा तारा कानिटकर, डेमोग्राफी एण्ड सोशल इकानोमिक्स आफ दि चाइल्ड इन इण्डिया, बाम्बे, हिमालयन, पब्लिसिंग हाउस ।

बेकर, हुग, डी0आर0, 1979, इपीडिमिलोजिक पैटर्न ओवर टाइम इन डी0एम0 टीड एण्ड एफ0जे0 स्टैण्डली, दि इपीडिमियोलाजी आफ प्रि मेच्योरिटी, वाल्टीमोर, स्वजनवर्ग।

ब्रे, डी0जी0 1977, मैटर्नल न्यूट्रीशन ब्रेस्ट फीडिंग एण्ड इन्फेन्ट सरवाइवल, इन न्यूट्रीशन एण्ड ह्यू मैन रिप्रोडक्शन, न्यूयार्क, प्लेनू प्रेस ।

ब्रेड सर डूगाल्ड, 1977, इपीडिमियोलाजी पैटर्न ओवर टाइम, इन डी0एम0 रीड एण्ड एफ0जे0 स्टैण्डली, दि इपीडिमियोलाजी आफ प्रिमेच्योरिटी, वाल्टीमोर, स्वजनवर्ग ।

सेन्सस आफ इण्डिया, 1961-71 लाइफ टेबिल, आफिस आफ रजिस्ट्रर जनरल, नई दिल्ली एस0आर0 1, इण्डिया पेपर । आफ 1977 ।

चौधरी, ए0आई0, फिलिप्स जे0एफ0 एण्ड शेख, ए0के0, 1986 दि ट्रेण्ड्स इन नियोनेटल, इन्फेन्ट एण्ड चाइल्ड मारटेलिटी इन मतलब प्रोजेक्ट पीरिएड, डेमोग्राफी इण्डिया, वाल्यूम 15 नं0।

चन्ना, एच0बी0 " ए स्टडी आफ इन्फेन्ट मारटेलिटी इन रूरल दिल्ली," डेमोग्राफी इण्डिया, 8 (1-2), दिसम्बर-जनवरी, 1979, 217-225 ।

चन्द्रशेखर, एस0, 1959, एशियाज पापुलेशन प्राब्लम, शिकागो विश्व विद्यालय शिकागो प्रेस ।

चैपिन, एफ0एस0, 1947, इक्सपेरीमेन्टल डिजाइन इन सोशियोलाजिकल रिसर्च, न्यूयार्क हारपर एवं रो पब्लिसर्स ।

चौधरी, ए0के0एम0, 1982, दि कान्सेप्ट आफ इन्टरमीडिएट लेविल वैरियोबिल इन मारटेलिटी स्टडीज, इन वी0 एडमान्सटन एण्ड आर0 वैरागी, इन्फेन्ट एण्ड चाइल्ड मारटेलिटी इन बांगलादेश ढाका, यूनीवर्सिटी आफ ढाका ।

चन्द्रशेखर, सी0, 1959 सर्वे आफ दि स्ट्टेस आफ डेमोग्राफी इन इण्डिया, दि स्टडी आफ पापुलेशन शिकागो, शिकागो यूनीवर्सिटी प्रेस ।

दास वर्मा, जी0एल0, 1986 इन्फेन्ट मारटेलिटी इन इण्डोनेशिया, ए रिब्यू आफ रीसेन्ट एवीडेन्स, डेमोग्राफी इण्डिया, बाल्यूम 15 नं0।

ईएस0 बोगार्डस, 1957, सोशियोलाजी।

फिशर, आर0, 1951, दि डिजाइन आफ इक्सपेरीमेन्ट, हाफनर।

गण्डोत्रा, एम0ए0 एण्ड एन0दास, 1984, इन्फेन्ट माइटेलिटी एन एनालिसिस आफ रीसेन्ट वर्कस इन गुजरात, इन्फेन्ट मारटेलिटी इन इण्डिया, डिफरेन्सस एण्ड डिटरमिनेन्ट्स, 1988 लन्दन।

गोयल, डा0 रमेश एण्ड माथुर, डा0 सरला, 1991, हेल्थ एण्ड फेमिली बेलफेयर प्रोग्राम इन सेवेन्थ फाइव ईयर प्लान, डिपार्टमेन्ट आफ पीडियाट्रिक, जी0एस0बी0एम0 मेडिकल कालेज, कानपुर।

गुभाजू, भक्त बी0, 1986, लेविल एण्ड ट्रेण्ड आफ इन्फेन्ट मारटेलिटी इन नेपाल, डेमोग्राफी इण्डिया, वाल्यूम 15 नं0।

गुप्ता, के0सी0 एण्ड राव, आर0के0 ''चाइल्ड लास इक्सपीरियन्स इन ए रूरल एरिया'' जनरल आफ फेमिली वेलफेयर, 23 (1) सितम्बर, 1976, 27-35।

गुनाशेषरन, एस0 1984 डिटरमिनेन्ट आफ इन्फेन्ट मारटेलिटी इन रूरल एरिया आफ तमिलनाडु, पेपर सबमिटेड टू ए सेमिनार आन ''डिटरमिनेन्ट्स आफ इन्फेन्ट मारटेलिटी इन इण्डिया'' इस्पान्सर्ड बाई दि गुजरात इन्स्टीट्यूट आफ एरिया प्लानिंग एण्ड पापुलेशन कौन्सिल (न्यूयार्क) अहमदाबाद, अक्टूबर, 1-4।

गुनाशेषरन, एस0 1974, '' ए नोट आन इन्फेन्ट मारटेलिटी इन अथूर ब्लाक, 1964-69'' सी0ए0आर0सी0 गॉधीग्राम।

गार्सिया, बाई, गारमा, एण्ड इरमा, ओलाया, 1983, सम फैक्ट्स एसोसिएटेड विथ इन्फेन्ट मारटेलिटी इन द वर्ड।

गुडे, डब्लू, जे० एण्ड हाट, पी०एफ०, 1952, मैथड इन सोशल रिसर्च, न्यूयार्क, मैक ग्रेव-हिल पब्लिशिंग कम्पनी।

ग्रीनउड अर्नस्ट, 1945, इक्सपेरीमेन्टल सोशियोलाजी, ए स्टडी इन मैथड, न्यूयार्क कोलम्बिया यूनीवर्सिटी प्रेस।

घुरिये, जी०एस०, 1957, कास्ट एण्ड क्लास इन इण्डिया, पापुलर प्रकाशन, बम्बई।

गुहा, उमा, 1965, कास्ट एमंग रूरल बंगाल मुस्लिम मैन इन इण्डिया, रॉची ।

गण्डोत्रा, एम०एम० दास एण्ड भट्ट, आर०वी, 1980, फैक्टर्स इन्फ्ल्यूवेशिंग नियोनेटल मारटेलिटी इन ऐन इण्डिया, कम्युनिटी डेमोग्राफी इण्डिया, 9 (182) ।

दि हिन्दुस्तान टाइम्स, 1987, सर्वे आन दि इन्फेन्ट मारटेलिटी नई दिल्ली, फरवरी 8।

हाउजर, फिलिप एम० एण्ड डंकन, ओरिस टूडले, 1959, दि स्टडी आफ पापुलेशन, ऐन इन्वेन्ट्री एण्ड ए प्राइजल, शिकागो विश्वविद्यालय, शिकागो प्रेस।

हेंस मिकाइल, आर०, एण्ड एम०टी० रोजर, सी०, 1982 डिफरेन्सियल इन्फेन्ट एण्ड चाइल्ड मारटेलिटी इन कास्टरिका, 1968-1973, पापुलेशन स्टडी, 36 (1) ।

हैवीचट, जे०पी० लेच टीग, सी वार्ग वर्ग एण्ड आर०ई० क्लेन, 1976, मैटर्नल न्यूट्रीशन, बर्थवेट, एण्ड इन्फेन्ट मारटेलिटी इन के०ई० इलिएट एण्ड नाइट, साइज एट बर्थ, एसोसिएट साइंटिफिक पब्लिशर ।

इण्डिया रजिस्ट्रार जनरल, 1983, ए।

इस्लाम एम०एस०, 1982, इन्फेन्ट मारटेलिटी इन रूरल बांगलादेश, ऐन एनलिसिस आफ काजेज ड्यूरिंग नियोनेटल एण्ड पोस्ट नियोनेटल पीरिएड, जनरल आफ ट्रापिकल पैडियाट्रिक, दिसम्बर, 28 (6)।

जकरिया, के०सी० एण्ड पटेल, एस०, 1983, टेण्ड्स आफ डिटरमिनेन्ट्स आफ इन्फेन्ट एण्ड चाइल्ड मारटेलिटी इन केरल, जनसंख्या वाल्यूम 1, नं० 2 ।

करमाकर, आर०, 1982, "टाइम सिरीज कैजुवल्टी बिटवीन इन्फेन्ट मारटेलिटी एण्ड फर्टीलिटी इन लेस डेवलप्ड कन्ट्रीज, " डाक्टोरल डेजरटेशन, सबमिटेड टू सिटी यूनीवर्सिटी आफ न्यूयार्क। कार्ल एन, लेलवेलिन, 1953, लीगल ट्रेडीशन एण्ड सोशल साइंस मेथड, इन बुकिंग इन्स्टीट्यूशन, कमेटी आन ट्रेनिंग एसाइन रिसर्च मेथड इन दी सोसल साइंस।

क्रुक डब्लू 1986, ट्राइबल्स एण्ड कास्ट्स आफ नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज आफ आगरा एण्ड अवध, लन्दन।

कपाड़िया, के०एम०, 1972, मैरिज एण्ड फेमिली इन इण्डिया, कलकत्ता, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस।

कर्वे, आई०, 1965, किंगशिप ऑनाइजेशन इन इण्डिया, बाम्बे एशिया पब्लिशिंग हाउस।

कारकल, मालिनी, 1980, "इन्फेन्ट एण्ड चाइल्ड मारटेलिटी इन महाराष्ट्र, इण्डिया" पेपर प्रेजेन्टेड एट दि एनुवल मीटिंग आफ दि पापुलेशन एसोसिएशन आफ अमेरिका, डेनवर, कोलोराडो, अप्रैल 10-12।

खान, एम०ई० 1980, इन्फेन्ट मारटेलिटी इन उत्तर प्रदेश, ए माइक्रोलेविल स्टडी, इन इन्फेन्ट मारटेलिटी इन इण्डिया, अनुराधा के० जैन एण्ड विसारिया प्रवीन, लन्दन।

कैडवेल, जान०सी० एण्ड मैक्डोनल, पी०, 1981, इन्फ्ल्यूवेंश आफ मैटर्नल एजूकेशन आन इन्फेन्ट चाइल्ड मारटेलिटी लेविल एण्ड काजेज, इन इण्टरनेशनल पापुलेशन कान्फ्रेन्स प्रोसीडिंग एण्ड सेलेक्टेड पेपर, मनीला, 1981, लीज आई०यू०एस०एस०पी० 2।

कास्टीलो एम० फ्रेसिया, एफ० सोसिल एण्ड ग्रेसिला, एम०ए०, 1983, इन्फ्लूवेशिया डिल सेक्टर स्लाइडेन लांस निवेलेस, इन सिसरेड, इनफेन्ट, इनफेन्ट एण्ड चाइल्ड मारटेलिटी इन दि थर्ड वर्ड पेरिस।

खनजंन स्थिति, पी0 एण्ड बेंचाकरन, बिलाई बेंचाकर, 1983 हेल्थ प्राब्लम इन पेरीनेटल पीरिएड एण्ड इन्फ्रन्ट इन ए रुरल डिस्ट्रिक आफ थाईलैण्ड, इन सिसरेड, इन्फेन्ट एण्ड चाइल्ड मारटेलिटी इन दि थर्ड वर्ड, पेरिस।

कबीर, एम0 एण्ड ए0ए0 हाउलडर, 1980, सोशल इकोनोमिक्स डिटरमिनेन्ट्स आफ मारटेलिटी इन बांगलादेश रूरल, लन्दन, डेमोग्राफी 7 (12) (1-13) ।

कानिटकर, तारा एण्ड मूर्ती, वी0एन0, 1984, फैक्टर्स एसोसिएट्स विथ इन्फेन्ट मारटेलिटी इन राजस्थान एण्ड उड़ीसा इन इन्फेन्ट मारटेलिटी इन इण्डिया, डिफरेन्सेस एण्ड डिटरमिनेन्ट्स 1988, लन्दन।

लिण्ड क्वीस्ट, जी0, 1953, डिजाइन एण्ड एनालिसिस आफ इक्सपेरीमेंट इन साइकोलाजी एण्ड एजूकेशन हंगसन।

लैथम, सी0मिचेल, 1968, सांइस इन एन0एस0 स्कीमसा, सी0ई0टेलर, जे0ई0 गार्डेन, मोनोग्राफ सिरीज नं0 57।

महादेवन महादेवन के0, 1984, मारटेलिटी बाइलोजी एण्ड सोसाइटी, एनालिटिकल फ्रेमवर्क एण्ड कान्सेप्च्युवल मॉडल।

मरटन, आर0के0, 1949 सोशल थियरी एण्ड सोशल स्ट्रक्चर, टू वर्ड कोडिफिकेशन आफ थियरी एण्ड रिसर्च कोलम्बिया यूनीवर्सिटी प्रेस।

मैकडोनल, एवं कीथ, 1935, वैदिक इण्डेक्स, वाल्यूम 1, लन्दन, चेप्टर XX 11।

मेरियट, मैकिम, 1960, कास्ट रैकिंग एण्ड कम्यूनिटी स्ट्रक्चर इन फाइव रीजन्स आफ इण्डिया एण्ड पाक्सितान, पूना ।

मिश्रा, ए0सी0 1995 : 128, नगरीय परिवेश में शिशु मृत्यु की दर : विभिन्नताऐं, कारण तथा निवारण,

मिश्र, सतीश, 1961 मुस्लिम कम्यूनिटीज इन गुजरात, बाम्बे ।

मजूमदार, एवं मदान, रेसेज एण्ड कल्चर इन इण्डिया ।

मुकर्जी, आर०के०, 1957, दि डायनामिक्स आफ रूरल सोसाइटी, बरलिन ऐकेडमिक विरलाज।

महादेवन, के० एण्ड नाम बोथोरी, नारायनन, डी०, 972 ''कास्ट स्टेट्स एण्ड फर्टीलिटी इन ए रूरल एरिया आफ तमिलनाडु'', बुलेटिन आफ दि गॉधीग्राम इन्स्टीट्यूट आफ रूरल हेल्थ एण्ड फेमिली प्लानिंग, जुलाई 7 (1)।

मुथियाह, ए०, 1980, रिप्रोडक्शन इन फोर कल्चरल ग्रुप इन रूरल एरिया आफ तमिलनाडु, इण्डिया, चण्डीगढ़।

महादेवन, के०, 1981, कल्चर, न्यूट्रीशन एण्ड इन्फेन्ट एण्ड चाइल्ड मारटेलिटी, ए स्टडी इन साउथ सेन्ट्रल, इण्डिया, न्यूयार्क मेमियो।

महादेवन, के० रेड्डी, पी०आर०, मूर्ती, एम०एस०आर० रेड्डी, पी०जे० गौरी, वी० एण्ड शिवरासू, एस०, 1986, कल्चर न्यूट्रीशन एण्ड इन्फेन्ट एण्ड चाइल्ड मारटेलिट, इन फर्टीलिटी एण्ट मारटेलिटी, एडीटेड बाई के० महादेवन, संज पब्लिकेशन, लन्दन।

मिगमा, एस०ए०, 1980, सोशियो इकोनोमिक्स डिटरमिनेन्ट्स आफ इन्फेन्ट एण्ड चाइल्ड मारटेलिटी इन श्रीलंका, बर्थ फर्टीलिटी सर्वे, 8, 1980।

नाम, सी०वी०, एण्ड हरिंगटन, टी०एम०, 1983, फक्टर्स सेपिंग दि मारवेलिटी एण्ड मारटेलिटी एक्सेप्टेशन आफ यूथ, ए सोशियोलाइजेशन मॉडल, मेमियो।

ओमरान, ए०आर० एण्ड स्टैण्लडी, 1976, ''चाइल्ड लास एण्ड फेमिली फारमेशन'' फेमिली फार्मेशन पैटर्न एण्ड हेल्थ इन इण्टरनेशनल कोलेबरेशन स्टडी इन इण्डिया, ईरान, लेबनान, फिलीपीन्स एण्ड तुर्की, जनेवा, डब्लू०एच०ओ० ।

पार्क, जे०ई० एण्ड पार्क, के०, 1991, पार्क्स टेक्स्ट बुक आफ प्रिवेन्टीव एण्ड सोसल मेडिसन, बनारसीदास भनार पब्लिसर्स जबलपुर, तेरवॉ संस्करण ।

पाठक, के0वी0 एण्ड मूर्ती, पी0के0, 1985, सोशियो, इकोनोमिक्स कोरिलेट्स आफ फर्टीलिटी एण्ड मारटेलिटी डिक्लाइन इन इण्डिया, डमोग्राफी इण्डिया, वाल्यूम 14 नं0 1, 12 नं0 1।

पाठक, के0वी0 एण्ड मूर्ती पी0के0, 1983, लेविल एण्ड ट्रेण्ड्स आफ मारटेलिटी इन सम सेलेक्टेड कन्ट्रीज आफ एशिया, इन श्रीनिवासन, के0 मुखर्जी एस0 (एडीटेड), डायनमिक्स आफ पापुलेशन एण्ड फेमिली वेलफेयर, 1983, बाम्बे, हिमालयन पब्लिसिंग हाउस, 246-277।

परमार, एस0बी0सिंह, 1987, स्त्रियों की प्रजनन-दर निर्धारण में शिशु एवं बाल मृत्यु की भूमिका, मानव, वर्ष 15, अंक ।

प्रभाकर, एन0आर0, 1983, मारटेलिटी वर्सेस, पब्लिक हेल्थ प्रोग्राम हारपोथोसिस डमोग्राफी इण्डिया, वाल्यूम 12 अंक 1।

पारसन्स, टाल्कट, 1942, एज एण्ड सेक्स इन दि सोशल स्ट्रक्चर आफ दि यूनाइटेड स्टेट्स, अमेरिकन सोशियोलाजिकल रिब्यू, 7 अक्टूबर ।

पारसन्स; टाल्कट, रिलीजियस पर्सपिक्टव आफ कालेज टीचिंग इन सोशियालाजी एण्ड साइकोलाजी, न्यू हेवेन दि हैजन फाउडेशन, 1952।

प्रभु पी0एन0, 1985, हिन्दु सोशल आर्गनाईजेशन, बाम्बे, पापुलर बुक डिपो।

पानिक्कर, के0एम0, 1956, हिन्दु सोसाइटी एट दि क्रास रोड, न्यूर्याक इन्स्टीट्यूट आफ पेसफिक रिलेशन।

पेथी ब्राइड, 1974 एण्ड, ए0एम0 फैरहा, चाइल्ड मारटेलिटी एण्ड इट्स कोरिलेट्स इन सूडान, डाक्टोरल थीसिस।

प्रेसट, रोनाल्ड, 1979, डमोग्राफी इनलासिस, लन्दन।

दि रजिस्ट्रार जनरल, 1981, सर्वे आन इन्फेन्ट एण्ड चाइल्ड मारटेलिटी, 1979, नई दिल्ली, मिनिस्ट्री आफ होम एफेयर्स ।

रूजिका, एल0टी0 एण्ड कानिटकर, टी0, "इन्फेन्ट मारटेलिटी इन ग्रेटर बाम्बे" डेमोग्राफी-इण्डिया, 2 (1) जून, 1973, 41-55।

राज, डा0 हंस, 1978, फण्डामेन्टल्स आफ दि डमोग्राफी, पापुलेशन स्टडीज विथ स्पेशल रिफरेन्स टू इण्डिया 1 समरजीत पब्लिकेशलन, नई दिल्ली।

रास, ए0डी0, दि हिन्दु फेमली इन इट्स अरबन सेटिंग, यू0एस0ए0, यूनीवर्सिटी आफ टोरन्टो प्रेस 1961 ।

रूजिका, एल0टी0 एण्ड कानिटकर टी0, 1972, इन्फेन्ट मारटेलिटी इन ऐन अरबन सेटिंग, दि केश स्टडी आफ ग्रेटर बाम्बे।

राय, यू0एन0 एण्ड कोआजी, बानो, 1988, कोरिलेट्स आफ इन्फेन्ट सरवाइवल एकार्डिग टू कोहरोट स्टडी इन वधू रूरल, हेल्थ प्रोजेक्ट, इन इन्फेन्ट मारटेलिटी इन इण्डिया, डिफरेन्सेज एण्ड डिटरमिनेन्ट्स, एडीटेड बाई अनुराधा के0 जैन, एण्ड प्रवीन विसारिया, लन्दन।

रामानुज सी, 1984 कोरिलेटस आफ इन्फेन्ट मारटेलिटी इन ए रुरल एरिया आफ तमिलनाडु इन्फेन्ट मारटेलिटी इन इण्डिया, डिफरेन्सेस एण्ड डिटरमिनेन्टस, अनुराधा के0जैन नं0 3 प्रवीन विसारिया, लंदन।

संध्या, एस0, 1986 सोशियो कल्चरल एण्ड इकोमोमिक्स कोरिलेट्स आफ इनफेन्ट मारटेलिटी, ए केश स्टडी आफ आन्ध्र प्रदेश, डेमोग्राफी इण्डिया, वाल्यूम 15 नं0 ।

सक्सेना, डी0एन0, श्रीवास्तव, जे0एन0, 1980, बायो-सोशल कोरिलेट्स आफ पेरीनेटल मारटेलिटी इक्सपीरिएन्स आफ ऐन इण्डियन हास्पिटल, जनरल आफ वायो-सोशल साइसंसेज 12,69।

श्रीवास्तव, जे०एन० एण्ड सेक्सेना, डी०एन०, इन्फेन्ट मारटेलिटी डिफरेन्सियल इन इण्डियन सेटिंग, ''फालोअप आफ हास्पिटल डिलेवरीज'' जनरल आफ बायो सोशल साइंस, 13 (4) अक्टूबर 1981, 467-478।

सिंह, के०पी०, ''चाइल्ड मारटेलिटी, सोशल स्टेट्स एण्ड फर्टीलिटी इन इण्डिया,'' सोशल बाइलोजी 24 (4) 1974, 385-88 ।

स्वामी, अमृतलाल एण्ड मंगोल, सुदर्शन, इकोमोमिक इम्प्लीकेशन आफ इन्फेन्ट मारटेलिटी, दि जनरल फेमिली वेलफेयर 7 (4), जून 1961, 35-39।

सोलेमन, आर०, 1949, एन इक्सटेन्सन आफ कन्ट्रोल ग्रुप डिजाइन, साइक्लोजिकल बुलोटिन